विद्या एवं विनय के मनीषी

★

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

लेखक : डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़

विद्या एवं विनय के मनीषी
प्रो० बी० एन० जुयाल

डॉ० अम्बिका प्रसाद गौड़

-: प्रकाशक :-
प्रो० बी० एन० जुयाल ऐजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट (रजि०)
१, महामनापुरी विस्तार
पो० ऑ० - बी० एच० यू०
वाराणसी

विद्या एवं विनय के मनीषी
प्रो० बी० एन० जुयाल

लेखक/सम्पादक
डॉ० अम्बिका प्रसाद गौड़

सर्वाधिकार @ लेखक/सम्पादक
प्रथम संस्करण - २०१७
मूल्य - रू.२००/-

-: प्रकाशक :-
प्रो० बी० एन० जुयाल ऐजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट (रजि०)
१, महामनापुरी विस्तार, पो० ऑ० - बी० एच० यू०, वाराणसी
फोन नं. : 0542-2570881, 9415261366

[25.08.1931 - 27.09.2013]

प्राक्कथन

जीवन और मरण तो आने जाने वाली वस्तुएँ हैं। निःसन्देह! जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु निश्चित है। हाँ, ये अलग बात है कि नश्वर होने के बावजूद मनुष्य में अमरत्व की चाह भी सनातन सत्य है। यक्ष द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर से यह पूछे जाने पर कि इस सृष्टि का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, उन्होंने उत्तर दिया कि संसार में हर पल, हर क्षण मृत्यु निरन्तर स्थावर एवं जंगम प्राणियों के प्राण हर रही है किन्तु फिर भी सभी अमरत्व की चाह पाले हुए हैं। वास्तव में संसार का इससे बड़ा आश्चर्य दूसरा हो ही नहीं सकता।

अब यदि हम सिर्फ मनुष्य जाति की ही बात करें तो प्रत्येक मनुष्य के अन्दर सौ वर्षों तक जीने की लालसा, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा रूप, अच्छा यौवन, धन एवं यश प्राप्ति की प्रबल इच्छाएं तो रहती ही हैं जिसके लिए वह असंख्य देवी देवताओं के समक्ष विनती करता रहता है और इस बात के लिए हमेशा प्रयासरत रहता है कि मृत्यु के पश्चात भी उसका नाम व यश चलता रहे, उसे सदैव याद किया जाता रहे। मनुष्य की यही वह लालसा है, जिसके लिए इस जीवन में वह कुछ ऐसा कर गुजरना चाहता है जिसके कारण भावी पीढ़ियाँ उसे याद करती रहें। यही बातें प्रत्येक पीढ़ी के महत्वाकांक्षी अनुचरों को प्रेरित करती हैं, अलग कुछ कर गुजरने को। इसका एक दूसरा पहलू भी है। यह जरूरी नहीं कि जिस भी मनुष्य ने अपनी भावी पीढ़ियों के लिए उच्च आदर्श स्थापित किये हों, वह भावी पीढ़ी उस मनुष्य को चिरकाल तक अमरत्व देने के लिए लालायित दिखे। इसे प्रारब्ध कहें या भाग्य, कुछ महान मानव, अपने उत्कृष्ट कार्यों के बावजूद भी, भावी पीढ़ियों के हृदयों में वह स्थान नहीं ले पाते, जिसके वे हकदार थे। सम्भवतः अपनी हठधर्मिता, अपना डंका न पीट पाने के कारण या भावी पीढ़ियों की अज्ञानता या अल्पज्ञता की वजह से।

अस्तु, महान मानवों की अगली पीढ़ी का यह दायित्व बनना है कि वह अपने उन आदर्श पुरुषों के कृतित्व को प्रसारित एवं प्रचारित करने में कोताही न बरते, जिन्होंने लोक कल्याण के असंख्य कार्य करके भी अपने कृत्यों का डंका बजाना उचित नहीं समझा।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल एक ऐसा नाम है, जिसे युग – युगान्तरों तक जीवित रखना हम सभी का दायित्व है। यह एक ऐसा सूर्य है, जिसका अभ्युदय तो उत्तराखण्ड के पौड़ी जनपद के एक छोटे से गाँव में हुआ, किन्तु जिसकी राश्मियों ने पूरे हिन्दुस्तान एवं विश्व के कई अन्य देशों में भी अपनी छटा बिखेरी। इसे प्रो0 जुयाल के उच्च आदर्शो की संज्ञा ही दी जाएगी कि उन्होंने मानव कल्याण हेतु अनेकों अविस्मरणीय कार्य करते हुए भी किसी पुरस्कार या प्रशंसा की अपेक्षा नहीं की। सम्भवतः उनके कई चेलों (अक्सर उन्हें 'गुरुजी' कहकर पुकारने वाले) में से जो कि राष्ट्रीय राजनीति में भी अपनी गहरी पकड़ रखते थे, यह चाहते होंगे कि प्रो0 जुयाल अपने मुँह से उनसे कुछ अपेक्षा की बात करें, किन्तु शायद वे लोग प्रो0 जुयाल को पहचानने में भूल कर रहे थे। अपने कतिपय 'चेलो' को सत्ता के सिंहासनों पर आरुढ़ होने, उनकी 'समाजसेवा' चमकाने या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार प्राप्त कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रो0 बी0 एन0 जुयाल कभी किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखे। निष्काम भाव से अपना काम करने वाले प्रो0 जुयाल सिर्फ मानव कल्याण में विश्वास रखते थे, अपने निजी स्वार्थो में नहीं। ऐसे दैवीय पुरुष की अगली पीढ़ी के संवाहक के रूप में मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उनके नाम एवं कृतित्व के साथ वह न्याय कर सकूँ जिसके वे हकदार थे। हालांकि मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा पूर्णतः सम्भव नहीं। किन्तु प्रयास करने में हर्ज ही क्या है? इन्हीं निहितार्थ प्रयासों के प्रथम चरण में मैंने, प्रो0 जुयाल के कुछ

आत्मीयजनों के साथ मिलकर, ''प्रो0 बी0 एन0 जुयाल एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट'' की स्थापना की तथा दूसरे चरण में ट्रस्ट द्वारा संचालित प्रकाशन से उनके संकलित लेखों एवं आम्मीयजनों के संस्मरणों को जुटाकर इस पुस्तक का प्रकाशन किया है।

इस पुस्तक के लिए सामग्री जुटा पाना काफी मुश्किलों से संभव हो पाया है। पहला कारण, प्रो0 जुयाल अपने लेखों को कभी भी सम्भालकर नहीं रखते थे और गाँधी विद्या संस्थान, जहाँ उन्होंने अपने महत्वपूर्ण शोध कार्यो के दम पर उस संस्थान को जीवित रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई, वही संस्थान उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात्, उनके लेखों एवं शोध कार्यो तक को सहेज कर न रख पाया। बंदी के कगार पर पहुँच चुके संस्थान के विशाल पुस्तकालय की सभी पुस्तके दीमक चट कर गये। कुछ एक लेख मैं उनके आवास पर बिखरी कुछ पुरानी फाइलों से जुटा पाया, कुछ लेख ''उत्तर प्रदेश वॉलेन्टरी हेल्थ ऐसोसिएशन'' के लखनऊ मुख्यालय एवं अन्य कुछ लेख ''लोक गंगा'' पत्रिका से एकत्रित कर पाया हूँ। दूसरा कारण, प्रो0 जुयाल अधिकांशतः अंग्रेजी में ही लिखे हैं। उनके लेखों का हिन्दी अनुवाद कर पाना बहुत बड़ी चुनौती रहा किन्तु अपने सहयोगियों एवं मित्रों के अथक प्रयासों के कारण मैं इस चुनौती का सामना कर पाने में समर्थ रहा।

इस पुस्तक को वर्तमान रूप में लाने पर हुई देरी का एक कारण ''लोक गंगा'' के सरक्षकों द्वारा दिये गये कुछ आश्वासन भी रहे। लोक गंगा, देहरादून द्वारा प्रो0 जुयाल के जीवन पर एक विशेषांक लाने की तैयारी थी किन्तु किन्हीं विशेष कारणों से उस प्रतिष्ठित पत्रिका का प्रकाशन लगभग बन्द हो चुका है। खैर समय, समाज और साहित्य अपनी अनवरत गति से प्रवाहमान रहते हैं। इन तीनों को किसी उपालम्ब की अधिक आवश्यकता नहीं होती। प्रो0 बी0 एन0

जुयाल के जीवन एवं कृतित्व पर आधारित प्रथम पुस्तक ''प्रो0 बी0 एन0 जुयाल एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट'' के प्रकाशन विभाग की ओर से आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

रसास्वादन कीजिएगा।

आशीर्वचनाकांक्षी

डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़
अध्यक्ष, प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट (रजि0)
वाराणसी (उ0 प्र0)
मई, 2017

विषय–सूची

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	प्रो0 बासवानन्द जुयाल : संक्षिप्त जीवन परिचय	01
2.	प्रो0 बी0 एन0 जुयाल : कार्य अनुभव एवं कृतित्व	23
3.	उत्तराखण्ड में नशाबंदी (मद्यनिषेध) आन्दोलन	31
4.	झारखण्ड की पहाड़िया जनजाति	50
5.	संस्कृति की राजनीति	59
6.	दलित समस्या और गांधी	66
7.	नई शिक्षा नीति का सामाजिक परिप्रेक्ष्य	70
8.	ढाई सेर लाल चींटी का तेल – एक ऐतिहासिक कथा	85
9.	प्रथम उत्तर प्रदेश समाजशास्त्र सम्मेलन	87
10.	उत्तराखण्ड का 'चिपको' आन्दोलन – एक संक्षिप्त रूपरेखा	98
11.	संथाल परगना	103
12.	शेरपुर नरसंहार – शोषण के विरुद्ध 'ना' कहने की कीमत	106
13.	बाल–अधिकार कार्यशाला	115
14.	एक पत्र सरदार खुशवन्त सिंह के नाम	124
15.	तराई की प्रगति के पीड़ित : थारू–बुक्सा जनजातियाँ	128
16.	जे0 पी0 के सम्मुख बागियों का आत्मसमर्पण	135

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
17.	कोलः पहचान व अधिकार के लिये संघर्ष	139
18.	गांधी विद्या संस्थान की वर्तमान दुर्दशा	144
19.	गांधी विद्या संस्थान की वर्तमान स्थिति दर्शाता प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का मुख्यमंत्री के नाम पत्र	147
20.	जया जी का विचार–निखार	153
21.	कमलापति त्रिपाठी और वह इमरजेंसी की दोपहर	157
22.	आदिवासी जनस्वास्थ्य और मानव अधिकार आयोग : एक निराशाजनक अनुभव	162
23.	टिहरी बांध के विरुद्ध रिपोर्टों को सरकार ने दबाया	170
	संस्मरण	
24.	प्रो0 बी0 एन0 "जुझारू" (प्रो0 एस0 सुन्दरम)	178
25.	एक सहृदय व सक्षम व्यक्तित्व (डॉ0 बी0 पी0 मैठाणी)	183
26.	इक्कीसवीं सदी का कबीर (प्रो0 दीपक मलिक)	188
27.	जुयाल जी (प्रो0 आर0 एस0 शर्मा)	194
28.	वह बहु–विषयक ज्ञाता (प्रो0 शिव शारद सिंह)	196
29.	महापण्डित प्रो0 बी0 एन0 जुयाल (प्रो0 सुनील सहस्त्रबुद्धे)	198
30.	प्रो. जुयाल : अनूठा, आडम्बर रहित, अविस्मरणीय व्यक्तित्व (प्रो0 अरविन्द कुमार जोशी)	200

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
31.	प्रो0 बी.एन. जुयाल; एक कार्यभौम प्रासंगिक व्यक्तित्व (डॉ0 रमाकान्त राय)	211
32.	प्रो० बी० एन० जुयालः एक अलग व्यक्तित्व (डॉ0 गिरिजा सतीश)	215
33.	वे एक अपने से (प्रो0 मुकुल राज मेहता)	217
34.	प्रो0 जुयाल—जैसा देखा, समझा "एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व" (डॉ0 लक्ष्मण विश्वनाथ भावे)	219
35.	विद्या और विनय के मनीषी : प्रो0 बी0 एन0 जुयाल (डॉ0 देवेन्द्र कुमार सिंह)	224
36.	श्रद्धेय जुयाल जी : जैसा मैंने जाना (प्रो0 जितेन्द्र नाथ मिश्र)	226
37.	वह बहुआयामी व्यक्तित्व(प्रो0 धर्मराज यादव)	230
38.	मेरे पापा (डॉ0 रूपाली जुयाल गौड़ "पाली")	232
39.	जिन्दगी के कुछ यादगार पल : प्रो0 जुयाल के साथ (डॉ0 अनिल कुमार तिवारी)	238
40.	मेरे प्यारे नानू (तन्मय गौड़ "काकू")	244
	"लोक गंगा" के पृष्ठों से	
41.	हरबर्ट मारकूज उत्तरांचल में	246
42.	गाँधीजी के दाँत : एक संस्मरण यह भी	248
43.	संस्कृति आकाश बेल नहीं होती	249
44.	ऐसे हैं उत्तर प्रदेश के 'हार्डकोर' नक्सली गाँव!	252
45.	तेरा मार्क्स तेरा गाँधी	255
46.	उत्तरांचल के जन जीवन का दर्पण (पुस्तक परिचय)	257
47.	एकदा उत्तरांचले (पुस्तक परिचय)	258
48.	**स्मृति शेष**	259—273

प्रो0 बासवानन्द जुयाल : संक्षिप्त जीवन परिचय

डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़
अध्यक्ष, प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च निरग्निर्न चाक्रियः।।

आत्मौपम्येन सर्वत्रं समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुखं सयोगी परमो मतः।।

अर्थात – हे अर्जुन, सन्यासी वह नहीं जिसने पवित्र अग्नि (गृहस्थ आश्रम) का त्याग कर दिया हो व योगी वह नहीं जिसने अपनी सारी कामनाओं का त्याग कर दिया हो बल्कि सही अर्थ में सन्यासी व योगी वह है जो कर्म के फलों पर बिना आशक्त हुए, निरन्तर कर्म करता जाता है।

और – वही वास्तव में परम योगी है, जो सभी प्राणियों को समभाव से देखता है, सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करता है और दुख व सुख में एक समान आचरण करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता की उपरोक्त पंक्तियाँ यदि किसी एक मनुष्य का वर्णन करती प्रतीत हो रही हैं, तो वह मनुष्य हैं – प्रो0 बी0 एन0 जुयाल।

न सुख है, न दुख है; न अपना है, न पराया है
न मित्र है, न शत्रु है, न धनी है, न निर्धन है...

समभाव, समत्व, एकात्मकता, एकनिष्ठता ––– कहीं कोई दिखावा नहीं, कोई छल नहीं, कोई कपट नहीं, किसी से कोई अपेक्षा नहीं ––– जो भी शरण में आया, उसे अपना लिया, उसे अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया ––– कई बार तो ये

जानते हुए भी कि सामने वाला छद्मभेषी है, स्वार्थी है ––– सिर्फ अपना स्वार्थ साधने के लिए ही इर्द–गिर्द मंडरा रहा है!

प्रो0 बासवानन्द जुयाल कई सांसारिक झमेलों से बहुत ऊपर उठ चुके एक ऐसी दिव्यात्मा थे, जो हजारों वर्षों में एक बार जन्म लिया करती है ––– सम्भवतः कुछ प्रारब्धों के प्रायश्चित स्वरूप या कुछ संतप्तों के कुछ 'काम' आ जाने के लिए।

जहाँ आडम्बरतापूर्ण इस दुनिया में जरा सी उपलब्धि को साधारण मनुष्य कई गुना बढ़ा–चढ़ाकर व्याख्यान्वित करते हैं, वहीं प्रो0 बी0 एन0 जुयाल एक ऐसी शख्सियत थे जिन्होंने हजारों उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बावजूद किसी से भी अपने बारे में कभी कोई चर्चा नहीं की ––– अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्री और दामाद (अर्थात मैं) से भी नहीं। यह आश्चर्य की बात है कि उनकी पत्नी को भी उनके विवाह–पूर्व जीवन के बारे में कुछ नहीं पता ––– उनके माँ–बाप, भाई–बहिन, पढ़ाई–लिखाई, प्रारम्भिक संघर्ष आदि के बारे में भी नहीं, कभी किसी से स्वयं के बारे में वे कोई बात किये ही नहीं ––– केवल दूसरों की ही सुनते रहे, दूसरों के लिये ही करते रहे, ताउम्र (और मृत्युपर्यन्त भी)

काफी मुश्किलों से उनके बारे में मैं विभिन्न श्रोतों से जो जानकारी प्राप्त कर पाया हूँ, उसके आधार पर उनकी जीवन–यात्रा को सं{ाप में निम्नवत प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का जन्म 25 अगस्त सन् 1931 को उत्तराखण्ड में पौड़ी गढ़वाल जनपद की बिचला ढाँगू पट्टी के नैरूल गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री अमरदेव जुयाल एवं माता का नाम श्रीमती गायत्री देवी था। श्री अमरदेव जुयाल एवं श्रीमती गायत्री देवी की चार सन्तानें क्रमशः सुन्दरलाल, भंवरी, मोहनलाल एवं कौशल्या हुईं। यही

सुन्दरलाल बाद में बासवानन्द जुयाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। बचपन में ही माता–पिता के देहावसान के बाद चारों भाई–बहनों की जिम्मेदारी बूढ़े दादा हंसराज जी के कन्धे पर आ गई। कुछ समय बाद बासवानन्द, अपने ननिहाल मत्रगाँव चले गये, यहाँ रहकर इन्होंने जूनियर हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। यह बात सन् 1947 के आस–पास की होगी।

जूनियर हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करना तब कोई मामूली बात नहीं थी, अतः प्रो0 बी0 एन0 जुयाल को उतिन्डा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में अस्थायी शिक्षक के तौर पर नौकरी मिल गई। किन्तु प्रो0 जुयाल का महत्वाकांक्षी मन इतने से सन्तुष्ट नहीं होने वाला था। वे भाग्य द्वारा प्रदत्त सभी विषमताओं एवं सीमाओं का उल्लंघन कर उच्च शिक्षा एवं उच्च जीवन पद्धति की कामना से अपना गाँव व परिवार छोड़, देहरादून चले आये और क्लीमेंट टाउन स्थित वायु सेना चयन बोर्ड (Air Force Selection Board) में सन् 1949 में क्लर्क के तौर पर कार्य करने लगे। वहीं से उन्होंने बतौर व्यक्तिगत छात्र, राजकीय इन्टरमीडिएट कॉलेज लैंसडाउन से सन् 1950 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। वायु सेना चयन बोर्ड में बतौर क्लर्क प्रो0 बी0 एन0 जुयाल वहाँ की फुटबॉल टीम के सक्रिय खिलाड़ी रहे तथा देखते ही देखते सभी अधिकारियों के चहेते बन गये। इसी दौरान इन्होंने सन् 1953 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी0 ए0 ऑनर्स एवं 1956 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य रत्न की डिग्रियाँ भी हासिल कर लीं। हरफनमौला व्यक्तित्व के धनी प्रो0 बी0 एन0 जुयाल ने वायु सेना चयन बोर्ड में कार्यरत रहते हुए एक अच्छे कर्मचारी, अच्छे खिलाड़ी एवं महत्वाकांक्षी विद्यार्थी होने के साथ–साथ कुछ साम्यवादियों के सम्पर्क में आने के बाद 'ट्रेड यूनियन' में भाग लेना शुरू कर दिया, जो कि वायु सेना के कुछ अधिकारियों को अच्छा नहीं लगा। सन् 1957 में जब उन्हें

वायुसेना कार्यालय, हैदराबाद स्थानान्तरित किया जाने लगा तो इन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और पूरी तरह ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में कूद पड़े। अपना अधिकाँश समय कम्यूनिस्ट पार्टी दफ्तर में देने के साथ–साथ प्रो0 बी0 एन0 जुयाल ने लगभग दो वर्ष तक राजपुर रोड स्थित 'करेंट ईवेन्ट्स' पत्रिका के कार्यालय में सम्पादकीय सहायक के तौर पर अस्थाई (Part Time) नौकरी भी की। प्रो0 जुयाल ने आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध डी0 ए0 वी0 कॉलेज से 1957 में एम0 ए0 अंग्रेजी एवं 1962 में एम0 ए0 समाजशास्त्र की परीक्षाएं भी उत्तीर्ण की।

वर्ष 1959 से 1964 तक इन्होंने मसूरी स्थित राष्ट्रीय सामुदायिक विकास संस्थान में बतौर हिन्दी अनुवादक कार्य किया और संस्थान के अतिरिक्त निदेशक प्रो0 सुगाता दासगुप्ता के करीबियों में शुमार हो गये। यही प्रो0 दासगुप्ता जब सन् 1964 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित, गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी के निदेशक नियुक्त हुए तो उन्होंने प्रो0 बी0 एन0 जुयाल को पत्र लिखकर अपने पास बुला लिया। यहाँ प्रो0 बी0 एन0 जुयाल की नियुक्ति सहायक शोधकर्ता के रूप में सन् 1964 में हुई।

गाँधी विद्या संस्थान में नियुक्ति, प्रो0 जुयाल के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बदलाव का क्षण था। हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दक्षता, कार्य के प्रति समर्पण, शोधपूर्ण एवं तार्किक बुद्धिमत्ता, व्यवहार कुशल एवं भौमिकता प्रेम आदि गुणों से युक्त प्रो0 बी0 एन0 जुयाल शीघ्र ही श्री जयप्रकाश नारायण जी के चहेतों में शुमार हो गये और दोनों का एक–दूसरे के प्रति प्रेम एवं निर्भरता जयप्रकाश जी की मृत्यु तक चलता रहा। जयप्रकाश नारायणजी का प्रो0 जुयाल पर कितना दृढ़ विश्वास था, यह बात दो–तीन प्रकरणों से सिद्ध हो जाती है। पहली बात सन् 1966 की है, जब बिहार में

भयंकर सूखा पड़ा था और भयंकर अकाल की स्थिति थी। जयप्रकाश जी ने सूखा राहत अभियान में अपने साथ प्रो0 जुयाल को लिया जहाँ वे सितम्बर 1966 से अप्रैल 1967 तक अभियान में सक्रिय रहे।

दूसरा प्रकरण चम्बल के दुर्दान्त डाकुओं के सन् 1972 में आत्मसमर्पण का है। जब श्री जयप्रकाश नारायण ने श्री सुब्बाराव के नेतृत्व में चम्बल के दुर्दान्त दस्युओं, विशेषतया, माधोसिंह, सेवरन सिंह व लखन सिंह, के हृदय परिवर्तन के लिए एक दल को चम्बल घाटी में भेजा तो उन्होंने गाँधी विद्या संस्थान से प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का चयन किया और उन्हें शोधकार्य, अध्ययन एवं दस्युओं से सीधा संवाद करने की महत्पूर्ण जिम्मेदारी सौंपी, जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूर्ण किया।

तीसरा उदाहरण 1975–76 में सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन का है। एक तरफ नितिश कुमार, लालू प्रसाद यादव, सुशील मोदी जैसे युवा जे0 पी0 के आह्वाहन पर आन्दोलन को सफल बनाने में जुटे थे, वहीं दूसरी ओर जयप्रकाश नारायण जी के साथ प्रो0 बी0 एन0 जुयाल उनके 'मीडिया मैनेजर' के बतौर, साये की तरह उनके साथ लगे थे।

अब बात प्रो0 बी0 एन0 जुयाल के जीवन के अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन की करते हैं। बात जुलाई 1967 की है जब प्रो0 जुयाल ने प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी श्री आद्या प्रसाद श्रीवास्तव व श्रीमती रमा देवी की सुपुत्री शीला श्रीवास्तव (बिट्टो जी) के साथ दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। अब तक परिवार के बंधनों से मुक्त, स्वच्छंद घूमने वाले प्रो0 जुयाल आखिरकार पारिवारिक बंधन में बंध ही गये। इस शादी से प्रो0 जुयाल के एक पुत्र अमित व पुत्री रूपाली हुए, जिनका भरा–पूरा परिवार प्रो0 जुयाल की विरासत को आगे बढ़ाने के लिए तत्पर हैं।

इसी वर्ष (सन् 1967) में प्रो0 बी0 एन0 जुयाल की प्रोन्नति गाँधी विद्या संस्थान में बतौर मुख्य शोधकर्ता हुई और तदुपरान्त वे प्रोफेसर नियुक्त किये गये। कुछ वर्ष उपरान्त उन्हें सामाजिक एवं ग्रामीण विकास अध्ययन केन्द्र का विभागाध्यक्ष बनाया गया। अगस्त, 1991 में सेवानिवृति से पहले प्रो0 बी0 एन0 जुयाल दो बार गाँधी विद्या संस्थान के कार्यवाहक निदेशक भी रहे।

इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि अपने देहरादून में व्यतीत किये हुए दिनों से ही प्रो0 जुयाल ट्रेड यूनियन व साम्यवादी आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी करने लगे थे। उनका यह शौक आजीवन चलता रहा। संघर्ष के शुरुआती दिनों में ही मानव कल्याण, कमजोर व जरूरतमंदों, समाज के दबे–कुचले तबके के प्रति संवेदनशीलता, उनके हितों के लिए संघर्ष आदि कार्यों की शपथ जो प्रो0 जुयाल ने ली थी, उसका वे आजीवन पालन करते रहे। चाहे उत्तराखण्ड में टिहरी बाँध के विस्थापितों के लिए संघर्ष हो, झारखण्ड में संथालों के उत्थान के लिए आन्दोलन हो या कालीन उद्योग में बाल एवं बन्धुआ मजदूरों के उन्मूलन हेतु संघर्ष हो, प्रो0 बी0 एन0 जुयाल अपनी लेखनी, जुझारूपन, निर्भीकता एवं लोक कल्याण की भावना का पूरा इस्तेमाल करते हुए आजीवन प्रयत्नशील रहे।

उत्तराखण्ड के अन्य महत्वपूर्ण आन्दोलनों यथा नशामुक्ति अभियान, चिपको आन्दोलन, टिहरी बाँध विरोधी अभियान, भोटिया एवं बुक्सा जातियों का पुनरुत्थान आदि में भी प्रो0 बी0 एन0 जुयाल ने सराहनीय योगदान दिया।

गाँधी विद्या संस्थान से जुड़ने से लेकर अपने अंतिम समय तक प्रो0 बी0 एन0 जुयाल अनगिनत संस्थाओं (एन0 जी0 ओ0, ट्रस्ट, धर्मार्थ संस्थानों, स्वास्थ्य सेवी संस्थाओं) से जुड़े रहे। भारत के लगभग सभी राज्यों की संस्थाओं व

व समाजसेवियों से उनका येन–केन–प्रकारेण सम्बन्ध रहा। कई संस्थाओं के वे पदेन अध्यक्ष रहे तथा कई संस्थाओं के साथ व्यावसायिक रूप से भी जुड़े रहे – एक सलाहकार के रूप में। उनके कुछ सहयोगियों एवं शिष्यों के माध्यम से प्रो0 जुयाल की कुछ शोध रिपोर्टों का अवलोकन करने को मिला जो आज भी किसी तेज–दिमाग रिपोर्ट–लेखक के लिए प्रेरणादायक है। गाजीपुर स्थित, एशिया के सबसे बड़े गाँव, शेरपुर में भूमिहारों द्वारा दलितों का दमन (1975), 1970 के दशक का उत्तराखण्ड नशामुक्ति आन्दोलन, सुब्बाराव के साथ चम्बल के डाकुओं का आत्मसमर्पण, तथा श्री कैलाश सत्यार्थी (अब नोबेल पुरस्कार विजेता) के प्रारम्भिक संघर्ष के दौर का शोध–सहयोग ––– सभी कुछ अविस्मरणीय एवं अनुकरणीय है।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल वॉलेन्टरी हेल्थ एसोसिएशन के उपक्रम उत्तर प्रदेश वॉलेन्टरी हेल्थ एसोसिएशन (यू0 पी0 वी0 एच0 ए0) के लगातार छः वर्षों तक उपाध्यक्ष तथा अगले छः वर्षों तक अध्यक्ष रहे, जो कि उनकी लोकप्रियता एवं स्वीकार्यता को दर्शाता है।

प्रो0 जुयाल एक अच्छा वक्ता होने के साथ–साथ एक अच्छे लेखक भी थे। बाल–श्रम, बन्धुआ मजदूरी, महिला सशक्तिकरण, जाति–लिंग भेदभाव, ग्रामीण विकास, जमींदारी प्रथा, सामंतवाद, दलित उत्थान, अनुसूचित जाति – जनजाति आदि विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर प्रो0 जुयाल ने 05 पुस्तकें एवं 125 शोध पत्र लिखे हैं। उनकी प्रतिभा का प्रसाद सिर्फ भारत को ही नहीं, दुनिया के कुछ अन्य देशों को भी मिला। ट्रेड यूनियन, सामाजिक समरसता, वैश्विक सद्भाव आदि कई सदा–ज्वलंत मुद्दों पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए प्रो0 जुयाल को थाइलैण्ड, फ्रांस, पाकिस्तान, जर्मनी, अमेरिका,

सोवियत संघ व चीन आदि देशों में आमंत्रित किया जाता रहा।

कहते हैं कि मनुष्यों के रिश्ते स्वर्ग में स्थापित होते हैं और निभाए मृत्युलोक में जाते हैं। और यहाँ इन रिश्तों को निभाने के सिवा अन्य विकल्प मनुष्यों के पास नहीं होता। सब कुछ दैवीय परिकल्पना के वशीभूत होता है। बात 1997–98 की है। मैं ग्रेटर नोएडा स्थित एक मैनेजमेन्ट कॉलेज में डीन के पद पर नियुक्त था। मेरी उम्र 29–30 वर्ष की थी और मैं स्वयं ही अपने विवाह के लिए प्रयासरत था। मैनें हिन्दी एवं अंग्रेजी समाचारपत्रों में इस बावत विज्ञापन भी दिये थे। कई उत्तर मुझे डाक से प्राप्त हुए थे, जिनमें से एक पत्र वाराणसी से प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का भी था, अपनी पुत्री डॉ0 रूपाली जुयाल के विवाह के सम्बन्ध में। चूँकि मेरा विचार दिल्ली, गाजियाबाद या नोएडा के आसपास (या यों कहिये कि उत्तराखण्ड के आसपास) ही विवाह करने का था सो मैंने उस पत्र का तब कोई जवाब नहीं दिया था। आसपास से मिले कई पत्रों के उत्तर मैंने डाक द्वारा या फोन पर दिये। कई जगह मैं प्रस्तावित दुल्हनों को देखने गया और कई प्रस्तावक मुझे देखने मेरे कॉलेज भी आये किन्तु कोई बात नहीं बनी। एक–दो साल और बीते ––– वैवाहिक प्रस्तावों के आने का सिलसिला जारी रहा। कुछ रिश्ते तो गैर–बिरादरी और गैर–जातियों से भी आये किन्तु मेरी यह दृढ़ इच्छा थी कि शादी अपनी बिरादरी (गढ़वाली ब्राह्मणों) में ही करूँगा। कम से कम लड़की ब्राह्मण तो होनी चाहिए। इसी बीच 17 जनवरी 1999 की वो शाम आई। मैं शाम लगभग 5 बजे अपने ऑफिस में बैठा हुआ था कि मेरे फोन की घंटी घनघनाई। उधर से एक जादुई आवाज गूँजी ––– "मैं बी0 एन0 जुयाल बोल रहा हूँ। मैं बनारस से अपने मित्र, शम्भू प्रसाद सिंह के पास मयूर विहार आया हुआ हूँ। आपके मामाजी से आपका नम्बर मिला था। अगर समय निकाल सको तो मिलने आ जाइये। मैं यहाँ दो दिन तक हूँ।"

उस आवाज का आकर्षण मेरे मस्तिष्क पटल पर आज भी अंकित है। वो आवाज ऐसी थी जैसे कई तलवारें आपस में टकरा रही हों। (प्रो0 जुयाल के कुछ मित्र उनकी आवाज को 'मेटेलिक व्वाइस' कहते थे)। शब्दों में इतना आकर्षण कि कोई उनकी बात को अनसुना न कर सके। मैं भी नहीं कर सका था।

शाम लगभग सात बजे मैं अपने शिष्य, रोहित गहलोत, के साथ श्री शम्भू प्रसाद सिंह के मयूर विहार स्थित आवास (सुप्रीम एन्क्लेव) पर पहुँच गया था। शम्भू अंकल उन दिनों सुप्रीम कोर्ट में वकील थे और बड़े मिलनसार स्वभाव के आदमी। उनकी पत्नी, नूतनजी भी जानी–मानी सामाजिक महिला थीं। अतः उनके घर का पता लगाना कोई मुश्किल कार्य नहीं था। प्रो0 जुयाल से मुलाकात होते ही लगा जैसे हमारा वर्षों और जन्मों का नाता हो। वे ज्यादा कुछ नहीं कह रहे थे किन्तु जो कुछ भी कह रहे थे उसका तीव्रगामी असर हो रहा था। कुछ ही देर में मेरी मुलाकात मेरी भावी पत्नी से भी हो गयी। उनसे मुलाकात होने से ऐन पहले तक मुझे यह भी नहीं पता था कि प्रो0 जुयाल के साथ उनकी सुपुत्री भी आयी हुई हैं। बातों का सिलसिला आगे बढ़ता चला गया और कमान संभाली थीं, नूतन जी ने। बातों ही बातों में शंभू प्रसाद बोले थे ––– "देखो भाई, मुझे ज्यादा बात करना पसन्द नहीं। तुम दोनों अगर एक–दूसरे को पसन्द करते हो तो सगाई कर लेते हैं।" ऐसा कहते हुए उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैं बोल पड़ा था ––– "ठीक है, सगाई ही क्यों, शादी की तारीख भी तय कर लेते हैं।"

बस, उसी क्षण हमारी शादी की तारीख भी तय कर दी गई ––– 14 फरवरी, 1999 (महाशिवरात्रि दिवस)।

रात लगभग 10 बजे जब मैं शंभू जी के घर से निकल रहा था, उन्होंने कहा था ––– "आज का दिन आपके जीवन

में बड़ा ऐतिहासिक दिन है। आज आपका सम्बन्ध एक ऐसे आदमी के साथ जुड़ गया है जिससे सम्पर्क बनाना भी बड़े सौभाग्य की बात है।"

वास्तव में वह ऐतिहासिक दिन था जो मेरे कर्म–फल के परिणाम से नहीं, दैवयोग या किसी प्रारब्ध के फलस्वरूप मुझे प्राप्त हुआ था। शंभू जी के आवास से मेरे कॉलेज की दूरी लगभग 35 कि0मी0 रही होगी। मैं और रोहित गहलोत मोटरसाइकिल से लगभग 11 बजे पहुँचे होंगे। कॉलेज के गेट के अन्दर मैंने प्रवेश करते हुए उससे कहा था ––– "रोहित, यह बात तुम्हारे और मेरे अलावा और किसी को भी पता न चले, समझे!" रोहित ने सिर हिला दिया था। रात को मैं बड़े चैन की नींद सो गया था किन्तु जब सुबह नींद खुली तो कई शंकाओं ने मेरे मन में डेरा जमा दिया था ––– मैं कैसे अपनी माँ, नानी, मामाओं व अन्य रिश्तेदारों को बताऊँ? ––– मैंने तो बिना किसी से सलाह लिए विवाह की तिथि भी घोषित कर ली थी! बारात कहाँ से उठेगी? बाराती कौन होंगे? विवाह के बाद पत्नी को कहाँ रखूँगा? देहरादून और गढ़वाल से आने वाले मेरे रिश्तेदार (अगर आयेंगे तो) कहाँ ठहरेंगे? शादी के कार्ड छपवाना, दूल्हा–दुल्हन के कपड़े, गहने, पण्डित और न जाने क्या–क्या? ––– शादी है, कोई गुड्डा–गुड़िया का खेल नहीं!

मेरा सशंकित मन कई उधेड़बुनों में उलझा था कि इतने में प्रो0 जुयाल का फोन आया ––– "बेटा, मैं सोचता हूँ कि आपकी माँ, नानी व मामा लोगों से मिल के आ जाऊँ। उन लोगों को बुरा न लगे, उन्हें पूछना भी जरूरी है।"

ये बात प्रो0 जुयाल जैसे सुलझे हुए व्यक्ति ही कर सकते थे ––– निःसन्देह।

मेरा उत्तर था ––– "नहीं, मुझे नहीं लगता, आपको उनसे मिलने जाना चाहिए। शादी तो मुझे करनी है।"

मैंने विवेकहीन, अनुभवहीन एवं दम्भपूर्ण बुद्धि का परिचय दिया था। अपरिपक्वता कभी भी अच्छे निर्णय नहीं लेने देती। हाँ, त्वरित निर्णय लेने में कारगर भूमिका निभाती है।

यह शास्वत सत्य है कि यदि आपने किसी कार्य को पूर्ण करने की ठान ली है तो कालचक्र या सम्पूर्ण प्रकृति उस कार्य को सम्पादित करने के लिए आपके साथ खड़े हो जाते हैं। मेरे मन की सारी आशंकाएं निराधार थीं। मैं अपनी माँ, नानी, मामाओं व अन्य रिश्तेदारों को मेरे विवाह में सम्मिलित होने के लिए मना पाने में समर्थ हो गया था। मैंने अपने कॉलेज के विद्यार्थियों की सहायता से खरीददारी भी कर ली, शादी के कार्ड भी छपवा लिए और नोएडा में 4 दिनों के लिए एक गेस्ट हाउस भी बुक करा दिया था, जहाँ मेरे रिश्तेदार आकर रह सकें। कुछ रिश्तेदार मेरे मौसेरे भाई, सूर्यप्रकाश नौटियाल (प्रकाश भाई) के बृज विहार आवास पर भी इकट्ठे हुए थे। नियत तिथि को इसी गेस्ट हाउस से बारात शंभू जी के मयूर विहार आवास के समीप वाटिका में गयी और सभी कुछ, एक दैवयोग के परिणामस्वरूप सम्पन्न हो गया था।

विवाह के एक हफ्ते बाद मैं अपनी पत्नी, रूपाली को लेकर बनारस आया था ——— काशी विश्वनाथ एक्सप्रेस से। ससुराल पहुँचते ही मुझे यह ऐहसास सा हुआ कि जैसे मैं उस घर से सदियों से जुड़ा हुआ हूँ। वही प्रथम अनुभूति आज तक बनी हुई है।

अगले ही दिन हमारी शादी का रिसेप्शन था और उसमें प्रो0 जुयाल के सभी गाँधीवादी, सर्वोदयी, समाजसेवी वर्ग के साथ–साथ समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों से मुझे एक ही शाम, एक ही छत के नीचे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। प्रो0 जुयाल किसी बड़े धनाढ्य, शिक्षित या समाज में उच्च स्थान प्राप्त व्यक्ति हो, सामान्य नागरिक हो या एक निम्नवर्गीय व्यक्ति हो, हर एक के साथ समभाव से बातचीत

कर रहे थे ––– पूरे मन से, किसी दिखावे या छलावे के साथ नहीं। उनका वह व्यवहार मेरे मन को छू गया था। मैनें सम्भवतः अपने जीवन में ऐसा पहली बार देखा था कि कोई व्यक्ति इतना सरल, सहज एवं निश्छल भी हो सकता है। कहते हैं कि घर के मुखिया का जो आचरण होता है, वही आचरण पूरे घर के सदस्यों का होता है। ठीक वही बात उस घर के प्रत्येक सदस्य पर लागू होती थी। प्रो0 जुयाल उन दिनों उत्तर प्रदेश वॉलेन्टरी हेल्थ एशोसियेशन (यू0 पी0 वी0 एच0 ए0) के उपाध्यक्ष हुआ करते थे और उनके ऑफिस के ड्राइवर, चपरासी, चौकीदार आदि सभी उनके घर में परिवार के सदस्यों की तरह ही आया–जाया करते थे। यहाँ तक कि प्रो0 जुयाल के साथ ही सभी लोग एक ही डाइनिंग टेबल पर बैठकर भोजन किया करते थे। ये सारी बातें मुझे अब तक कहीं भी देखने को नहीं मिली थी ––– सच्ची सहिष्णुता, सच्चा समाजवाद ––– दिखावे के लिए नहीं।

एक ओर मैं, प्रो0 जुयाल के साथ नाता जुड़ने से गद्गद था, वहीं दूसरी ओर एक समस्या भी खड़ी हो गयी थी। मेरी पत्नी, बी0 एच0 यू0 से भूगोल विषय में पी0 एच0 डी0 कर रही थी और मुझे अपने मैनेजमेन्ट कॉलेज (नोएडा) में भी अपनी जिम्मेदारियों का वहन करना था। मैं दोनों के बीच सामन्जस्य स्थापित नहीं कर पाया और अन्ततः मुझे कॉलेज को छोड़ना पड़ा। पापाजी के कहने पर मैंने श्री कैलाश सत्यार्थी के संगठन साउथ ऐशियन कोलिएशन ऑन चाइल्ड सर्विट्यूड (SACCS) में बतौर रिसर्च कन्सलटेंट एक प्रोजेक्ट में नौकरी शुरू कर दी। यह जनवरी, 2000 की बात है। इस प्रोजेक्ट के अन्तर्गत मुझे कुछ चुनिन्दा निर्यातोन्मुख ;मगचवतज वतपमदजमकद्ध उद्योगों में बाल श्रमिकों के शोषण पर शोध करने का कार्य मिला था। मैंने इस कार्य के लिए वाराणसी–मिर्जापुर–भदोही क्षेत्र में कालीन उद्योग का

चयन किया और लगभग वर्ष भर का शोध मैंने बनारस में ही रहकर किया। कालीन उद्योग पर उस समय किये गये शोध कार्य का भरपूर उपयोग मैंने वर्ष 2007–08 में भी किया जब मैंने अपनी पी0 एच0 डी0 के लिये भी कालीन उद्योग को ही चुना। प्रो0 जुयाल द्वारा बताई गयी बारीकियों एवं उनके द्वारा कालीन उद्योग में बाल श्रमिकों पर किये गये अनेकों शोध–कार्यों की सहायता से ही मेरे वह दोनों कार्य भली–भाँति पूर्ण हो पाये थे।

दिसम्बर, 2000 में कैलाश सत्यार्थी के साथ प्रोजेक्ट पूरा होने पर पापाजी ने मुझे बनारस बुला लिया और जनवरी 2001 से मार्च 2003 तक मैंने मिर्जापुर में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा वित्तपोषित एक प्रोजेक्ट में कार्य किया और अन्ततः अप्रैल 2003 से वाराणसी में ही मुझे प्रो0 जुयाल के साथ ही रहने का अवसर मिल गया।

अप्रैल 2003 से लेकर सितम्बर 2013 तक की समयावधि में मैं और पापाजी एक ही छत के नीचे रहे ––– रात्रि–दिवस, पल–क्षण, सुख–दुख के हमसफर। इस काल में मुझे पापा के साथ कई सेमिनार, गोष्ठियों, परिचर्चाओं में सम्मिलित होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ ––– दिल्ली, उत्तराखण्ड, मिर्जापुर, वाराणसी आदि कई स्थानों पर। और मुझे प्रत्येक अवसर पर यह देखने को मिला कि लोग उनकी हर बात को बड़ी संजीदगी के साथ सुनते थे ––– सहज भाव से। ऐसा नहीं कि उन्होंने कभी अपने विचारों को किसी के उपर थोपने का प्रयत्न किया हो या अत्यधिक उत्तेजना में किसी दूसरे की जुबान को दबाने की कोशिश की हो किन्तु फिर भी मुझे उनके समक्ष भाषा या तर्कों की कसौटी पर टिक, मुकाबला कर पाने में समर्थ, कोई नहीं दिखाई दिया। दरअसल हमारे समय के बुद्धिजीवियों की एक बड़ी विडम्बना यह है कि हम तकनीकि रूप से जितना सशक्त हुए हैं, बौद्धिक

रूप से उतने ही अशक्त होने लगे हैं। हमारा अधिकांश समय तथ्यों एवं तर्कों को ढूंढने में व्यतीत होता है, उनका सृजन करने में नहीं। प्रो0 बी0 एन0 जुयाल जैसे बुद्धिजीवियों के साथ बात बिल्कुल उलट थी। अकाट्य तर्कों के सृजन की क्षमता एवं भाषा की परिपक्वता उनकी लेखनी एवं वाणी के मुख्य अस्त्र थे। मैंने सुना (और देखा भी) कि सरकारी या अन्य संस्थाओं से अनुदान के इच्छुक गैर–सरकारी संस्थानों (एन0जी0ओ0) के संचालक अपने प्रोजेक्ट–प्रपोजल तैयार करने के लिए प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का आश्रय लिया करते थे क्योंकि उनका बनाया कोई भी प्रपोजल कभी निरस्त नहीं होता था। दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और यहाँ तक कि बैंगलोर में गैर–सरकारी संस्था रूपी दुकानें चलाने वाले, तथाकथित समाजसेवी, येन–केन–प्रकारेण प्रो0 बी0 एन0 जुयाल के नाम को अपने साथ जोड़ना, सफलता की गारण्टी मानते थे। यहाँ एक महत्वपूर्ण सत्य को उजागर कर देना भी जरूरी समझता हूँ कि भारतीय उद्योगों (विशेषतया कालीन उद्योग) में बालश्रम का दुनिया भर में डंका पीटकर विश्व–पटल पर छा जाने वाले, दिल्ली में एन0 जी0 ओ0 चलाने वाले एक सुप्रसिद्ध 'समाजसेवी' ने जब किसी दात्री संस्थान (Donor Agency) को 80,000 बालश्रमिकों को छुड़ा देने का दावा किया तो उनके खिलाफ जाँच होना स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति में उनको प्रो0 बी0 एन0 जुयाल की शरण में आना पड़ा और उम्मीदों के मुताबिक प्रो0 जुयाल ने अपनी लेखनी का कमाल दिखाते हुए एक ऐसी रिपोर्ट तैयार की जिससे यह साबित हो गया कि उस एन0 जी0 ओ0 व उसकी सहयोगी संस्थाओं ने 80,000 से कहीं ज्यादा बालश्रमिकों के जीवन में प्रकाश की किरणें बिखेर दी हैं।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का यह करिश्मा ही था (और

साथ ही साथ भलमनसाहत भी) कि आये दिन हमारे घर पर वाराणसी ही नहीं, गाजीपुर, जौनपुर, गोसाईगंज, मिर्जापुर, इलाहाबाद, उत्तराखण्ड, बिहार आदि कई स्थानों से 2–4 लोग आते–जाते रहते और कुछ तो 2–4 दिन घर में ही ठहर जाते थे ––– सिर्फ प्रो0 जुयाल से एक अदद प्रोजेक्ट प्रोपोजल बनवाने के लिये। यह सिलसिला लगभग तभी तक चलता था जबतक कि प्रो0 जुयाल प्रोजेक्ट प्रोपोजलों या प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार कर उनलोगों के हाथों में सौंप न देते। उसके बाद आने–जाने का सिलसिला एक–दो सालों के लिए रूक जाता और फिर तभी शुरू होता जब दूसरे प्रोजेक्ट को तैयार कर के भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मजेदार बात तो यह है कि पापा अपने चेलों (जो उनको गुरुजी कहकर पुकारते थे) के प्रोजेक्ट प्रोपोजल, समीक्षा रिपोर्ट आदि बनाने में व्यस्त रहते वहीं मम्मीजी उन चेलों के खान–पान, चाय–नाश्ता आदि में व्यस्त रहतीं ––– बिना किसी अपेक्षा के, बिना किसी गुस्से के। लोक सेवा को समर्पित, एक आदर्श युगल थे ––– पापा–मम्मी।

लेखन–शैली के साथ–साथ उनकी वाकपटुता, मित्भाषिता एवं मृदुभाषिता भी सराहनीय थी। हर प्रश्न का सटीक उत्तर और कम शब्दों में ज्यादा परिभाषित कर देने वाली भाषा शैली थी उनकी। मुझे वह दिन आज भी याद है जब 11 सितम्बर 2001 को मुझे तन्मय (काकू) के रूप में पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई। पापा उन दिनों एक प्रोजेक्ट के मूल्यांकन के लिए उड़ीसा गये हुए थे। मैं और मेरी धर्मपत्नी काकू के साथ ही बी0 एच0 यू0 हॉस्पिटल में थे और 12 तारीख शाम को जैसे ही पापाजी हमें मिलने अस्पताल पहुँचे तो काकू के पास बैठते ही बोले थे ––– "He is a very live child." बच्चा बड़ा जीवन्त है। दरअसल काकू जन्म के पहले दिन से ही काफी ऊर्जावान है। और पापाजी अगले 13 वर्षों तक काकू की

परवरिश में ही व्यस्त रहे और अपने कुछ खास लोगों से कहा भी करते ––– "आज तक हजारों प्रोजेक्ट्स मिले पर इससे (काकू से) अच्छा प्रोजेक्ट नहीं मिला।" सम्भवतः काकू से ही वे सर्वाधिक प्यार किया करते थे। बचपन में हम काकू को छूने को भी कई बार तरसते थे क्योंकि जब देखो तब वह अपने नानाजी के कन्धों पर चढ़ा रहता था।

उनके सुलझे हुए व्यक्तित्व एवं सकारात्मक दृष्टिकोण पर तो मैं एक पुस्तक लिखने की सोच रहा हूँ। फिलहाल दो–तीन वाकये बता देना आवश्यक समझता हूँ।

सन् 2002–2003 में मैं जब पूर्वांचल में उनके सबसे परम शिष्य (जैसा कि वह सज्जन सभी से कहा करते थे) के साथ संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू0 एन0 डी0 पी0) द्वारा वित्तपोषित एक प्रोजेक्ट में कार्य कर रहा था तो मैंने पापाजी से प्रोजेक्ट में वित्तीय व अन्य अनियमितताओं के बारे में शिकायत की। साथ ही मैंने कहा कि मैं यू0 एन0 डी0 पी0 में शिकायत करने जा रहा हूँ तो उनका संक्षिप्त सा जवाब था ––– "Don't waste your energy on negative thoughts." वहाँ से बाहर निकलने का प्रयास करो।" और उनके कहने के अनुसार मैं वापस शिक्षा के क्षेत्र में आ गया।

उन्हीं दिनों की बात है, पापाजी को उन्हीं सज्जन ने अपने एक प्रोजेक्ट के मूल्यांकन के लिए परामर्शदाता (Consultant) नियुक्त किया था और पापाजी उस दिन उनके ऑफिस में ही रिपोर्ट्स तैयार कर रहे थे। प्रो0 जुयाल ऐसे अवसर पर भोजन उनके आवास पर की करते थे किन्तु एक दिन पति–पत्नी के मनमुटाव के कारण उन्हें भोजन से वंचित रहना पड़ा। दरअसल पति को इस बात का डर था कि पत्नी कहीं प्रो0 जुयाल से उनके किसी कारनामे के बारे में शिकायत न कर दे। अतः इज्जत के डर से उन्हें भोजन पर आमंत्रित न कर सके थे।

शाम को जब मैं, उनके साथ लौट रहा था तो उन्होंने जीप रूकवाकर मुझसे कुछ केले लाने के लिए कहा।

केले उन्हें पकड़ाते हुए मैं झुंझलाहट में बोला था कि उन लोगों ने आज आपको भूखा रखा। मैं विचलित था किन्तु पापा शान्त और गम्भीर स्वर में बोले थे ——— "जरूरत हमारी है।"

उनकी बात का पूरा अर्थ मेरी समझ में आ गया था ——— जरूरत, आवश्यकता, सामंजस्य!

इसी सन्दर्भ में एक किस्सा उनके दूसरे 'परम शिष्य', जो दिल्ली में एन0 जी0 ओ0 चलाते हैं (अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त) से सम्बन्धित भी बता देना उचित समझता हूँ। अपने शुरुआती संघर्ष के दिनों में पापाजी के नाम व लेखनी का भरपूर फायदा उठाने वाले वे शिष्य अंत में पापाजी के पत्रों का उत्तर देना भी मुनासिब नहीं समझते थे। आमतौर पर अपनी व्यथा किसी को भी न बताने वाले पापाजी ने ये बात मुझसे अकस्मात कही थी। ऐसे उदाहरण असंख्य हैं, जिनका जिक्र मैं अपनी पुस्तक में अवश्य करूँगा। कृतघ्न लोगों के कृत्यों को 'समाजसेवा' में उजागर करना भी आवश्यक समझता हूँ।

प्रो0 बी0 एन0 जुयालके बारे में एक शिकायतपूर्ण बात का उल्लेख भी कर देना चाहता हूँ। दुनियावी हथकंडों को न अपनाने के कारण वे उस यश (पुरस्कार आदि) को प्राप्त न कर पाये, जिसके वे हकदार थे। कारण, सिर्फ और सिर्फ उनका अपने स्वयं के बारे में लापरवाहीपूर्ण व्यवहार था।

सन् 2003–04 की बात है। हमारे घर के फोन की घंटी घनघनाई तो वहाँ से किसी बड़े केन्द्रीय मंत्री के पी0 ए0 बात कर रहे थे। मंत्रीजी 'गुरुजी' से बात करना चाहते थे। मैंने पापाजी को फोन थमाया। फोन पर उन मंत्रीजी को पापाजी के जवाब देने के अंदाज से मैं अचम्भित हुआ था ——— "चलिये,

ठीक है! धन्यवाद! आपने मुझे याद तो किया, वर्षों बाद ही सही! वैसे आप लोगों के पुरस्कारों को अब कोई संजीदगी से कहाँ लेता है!"

सम्भवतः वे मंत्री महोदय प्रो0 जुयाल को कोई पुरस्कार दिलवाने की पेशकश कर रहे थे जिसे उन्होंने नकार दिया था।

उसी दौरान श्रम आयुक्त कार्यालय से पापाजी के नाम एक पत्र आया था जिसमें उनसे स्वयं को पद्मश्री पुरस्कार के लिए नामित करने के लिए संलग्न फॉर्म भरने के लिए कहा गया था।

पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने उसे अपनी टेबल पर रख दिया था। लगभग एक हफ्ते के बाद भी उन्होंने वह नामांकन प्रपत्र नहीं भरा तो मैंने व मेरी धर्मपत्नी ने उनका ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और न ही अपना नामांकन पद्मश्री पुरस्कार के लिए भेजा। न जाने क्यों?

पापाजी काफी संवेदनशील प्रवृत्ति के थे। कहीं पर यदि उन्हें कुछ कमी दिखती तो स्पष्ट बता देने में नहीं चूकते थे। यही कारण रहा होगा कि उनके कुछ करीबी लोग उन्हें 'नीम का पेड़' की उपाधि दिया करते थे। जैसे नीम कड़वा तो होता है किन्तु हर किसी रोग का समूल नाश कर देता है। दूसरी तरफ, इतने सरल और दयावान कि बड़े से बड़े विरोधी द्वारा भी यदि उनके चरण स्पर्श कर लिये जाते तो सारी गलतियाँ माफ कर देते थे। सम्भवतः यही कारण रहा होगा कि कुछ लोग उन्हें 'भोलेनाथ' की उपाधि भी देते थे। विशेषतया उनके यू0पी0वी0एच0ए0 के सहयोगी। हालाँकि उनकी सर्वप्रचालित उपाधि 'गुरुजी' ही थी और है भी।

गाँधी विद्या संस्थान से 1991 में सेवानिवृत्ति के बाद भी वे जुड़े रहे। जब–जब उन्हें याद किया गया, वे संस्थान की हर तरह की सहायता करने को तत्पर रहते थे।

14 जनवरी, 2013 को संस्थान की दुर्दशा/दुर्व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने के लिए वे वहाँ के कई पदाधिकारियों/शुभचिन्तकों के साथ लखनऊ गये थे। भीषण सर्दी के मौसम को ध्यान में रखते हुए उनकी पुत्री (मेरी धर्मपत्नी) भी उनके साथ गयी थी ताकि वे ब्लड प्रेशर, हाईपरटेन्शन आदि की दवाएं (जो वे वर्षों से नियमित रूप से लिया करते थे) सही समय पर ले सकें और भोजन में नमक का बिल्कुल प्रयोग न करें। यह भी उनकी जिजीविषा की पराकाष्ठा थी कि वे अपनी उम्र के अन्तिम 5–6 वर्षों में बिना नमक के भोजन किया करते थे। यह भी किसी साधारण व्यक्तित्व के मनुष्य के लिए सम्भव न था। खैर, पापा 17 जनवरी की सुबह घर वापस भी चले आये थे किन्तु 19 जनवरी की रात 11 बजे नींद की गोली खाकर सोने गये पापाजी के मुँह से हम आखिरी बार 'गुड नाइट' सुन पाये क्योंकि 20 जनवरी की सुबह लगभग 3 बजे मैं और मेरी पत्नी मम्मी के चीखने पर उनके कमरे की तरफ भागे थे और देखा कि पापा उस कमरे की दहलीज पर बैठे हुए थे। उनके शरीर का पूरा दायां हिस्सा पक्षाघात से ग्रसित हो गया था और उनकी करिश्माई आवाज भी उनका साथ छोड़ चुकी थी। पापा पिछली रात को मम्मी और काकू के साथ ही सोये थे किन्तु रात में किसी वक्त उठकर बगल वाले कमरे में सोने चले गये थे। और, जब उन्हें पक्षाघात होने का आभास हुआ होगा तो वे घिसटते हुए मम्मी व काकू के पास चलकर बायें हाथ से उनके दरवाजे को पीटने लगे थे। मैंने उन्हें जमीन से उठाकर बिस्तर पर लिटाया था। वे पूरे होशोहवास में थे और उनके चेहरे पर घबराहट का कोई निशान नहीं था। हाँ, थोड़ा आश्चर्य उन्हें अवश्य हो रहा था। मैं, पाली (रूपाली), डा0 भावे और उनके पुत्र (अंकित) पापाजी को बी0 एच0 यू0 हॉस्पिटल ले गये जहाँ उन्हें 5–6 दिनों तक रखा गया और फिर हम उन्हें एक प्राइवेट

हॉस्पिटल, संतुष्टि मेडिकल, ले गये, जहाँ वे लगभग एक हफ्ते तक उपचार कराके लगभग स्वस्थ हो गये। इस बीच जब कभी मैं हॉस्पिटल से थोड़ा आराम करने घर आता तो काकू का एक ही प्रश्न होता ––– "पापा, नानू कब घर आ रहे हैं?" खैर, पापा जल्दी ही घर आ गये थे और कुछ ही दिनों में अपने पैरों पर खड़ा होकर चलने भी लगे थे, हालाँकि उनकी जुबान उनका साथ नहीं दे पा रही थी। यह उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और जिजीविषा ही थी कि 82 वर्ष की अवस्था में पक्षाघात होने के बावजूद भी फिर से चलने लगे थे, बिना किसी सहारे के।

वे चल भी रहे थे, बाँयें हाथ से ही भोजन भी करने लगे थे और यदा–कदा, बाँयें हाथ से ही घर के चारों तरफ पेड़ों से बिखरी हुई सूखी पत्तियों को झाड़ू लगाकर इकट्ठा भी करने लगे थे। वे सब कुछ करने का प्रयत्न कर रहे थे ताकि अपने–आप को व्यस्त रख सकें किन्तु बोल पाने व लिख पाने में अशक्त हो जाने का दंश तो वह झेल नहीं पा रहे थे। इस बात से पूरी तरह भिज्ञ कि पापाजी हमेशा साफ–सुथरे, इस्तरी किये हुए कपड़े ही पहनते हैं और हमेशा शेव करते हैं, मैं हर सुबह की शुरुआत पापाजी की शेव करके करता था और यकीनन, शेव करने के बाद उनके गोरे–चिट्टे चेहरे का निखार देखते ही बनता था। मुझे लगता है कि उन्हें मुझसे 'शेव करवाना' बहुत अच्छा नहीं लगता था। वे शायद यह सोचकर अन्दर ही अन्दर घुटने लगे थे कि वे हम लोगों पर निर्भर रहने लगे हैं ––– आत्मनिर्भर नहीं।

बहुत सरल, सौम्य एवं सदाचारी स्वभाव होने के साथ–साथ पापाजी में स्वाभिमान कूट–कूट कर भरा हुआ था। सबकी सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहने वाले प्रो0 जुयाल, अपने व अपने परिवार के किसी भी सदस्य की पैरवी करने के लिए कभी भी तैयार न थे। भले ही किसी अन्य की सहायता करने के लिए किसी के यहाँ पच्चीसों बार पैरवी किये हों।

मुझे याद है, वर्ष 2006 में जब मैंने महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ में पी0 एच0 डी0 में प्रवेश के लिए आवेदन किया था तो उन दिनों डा0 सुरेन्द्र सिंह वहाँ के कुलपति थे। वे पापा के अच्छे मित्रों में थे और उनका हमारे घर आना–जाना था। मैं जब प्रबन्धन एवं वाणिज्य विभाग में पी0 एच0 डी0 के इन्टरव्यू के लिए गया तो वहाँ के विभागाध्यक्ष ने मुझे लगभग साफ शब्दों में मना कर दिया था क्योंकि मैंने पी0 एच0 डी0 उनके साथ नहीं, किसी दूसरे प्राध्यापक के साथ करने में दिलचस्पी दिखाई थी। ऐसी स्थिति में जब मेरी पत्नी ने पापाजी से बात करने के लिए कहा तो उन्होंने इस सन्दर्भ में चुप्पी साध ली। दैवयोग से जब मेरा दूसरा इन्टरव्यू डा0 सुरेन्द्र सिंह के कार्यालय में हुआ तो मेरे दस्तावेजों में उन्हें मेरा पत्र–व्यवहार का पता दिखाई दिया। उन्होंने स्वयं ही मुझसे मेरे द्वारा पी0 एच0 डी0 किये जाने के उद्देश्यों एवं मेरे द्वारा चयनित टॉपिक (शीर्षक) के बारे में प्रश्न पूछे और संतुष्ट होकर, मेरी पी0 एच0 डी0 में एडमिशन के लिए संस्तुति दे दी। ऐसे थे, हमारे पापाजी! हमें और उनके सभी चाहने वालों को उनपर गर्व है।

पापाजी किसी तरह 20 सितम्बर तक हमारे साथ सकुशल रहे किन्तु उसके बाद अचेतनावस्था (कॉमा) में चले गये व 27 सितम्बर, 2013 को बी0 एच0 यू0 अस्पताल के आई0 सी0 यू0 विभाग में जीवनरक्षण प्रणाली (वेन्टिलेटर) पर ही उन्होंने आखिरी सांस ली। जीवन भर दूसरों के लिए जीवित रहने वाला जुझारू योद्धा, अपने लिए जीवित न रह सका। उस समय उनकी आयु 82 वर्ष 1 महीना व दो दिन थी।

हालाँकि अब वे हमारे साथ मानव देह में विद्यमान नहीं हैं किन्तु उनके द्वारा बनाये गये भव्य आवास में मैं अपनी पत्नी, मम्मीजी (प्रो0 जुयाल की धर्मपत्नी), एवं पुत्र (तन्मय गौड़) के साथ उनकी यादों के साथ रह रहे हैं। हर दिन, हर पल यह

ऐहसास रहता है कि वे हमारे इर्द–गिर्द ही हैं। आज भी सुबह की शुरुआत हमलोग पापाजी के निमित्त चाय का कप रख लेने के बाद ही चाय पीना शुरू करते हैं। मानव–जीवन निःसन्देह एक अनवरत यात्रा क्रम है। जन्म, मरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु कुछ मनुष्यों का जन्म सिर्फ और सिर्फ अन्य मानवों के जीवन में खुशियाँ बिखेरने के लिए या उनका मार्ग–दर्शन करने के लिए होता है। प्रो0 जुयाल का जन्म ऐसे ही एक विशिष्ट जीवन के रूप में सदियों तक याद किया जायेगा।

1967 – शादी के दुर्लभ चित्र

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल : कार्य अनुभव एवं कृतित्व

कार्य अनुभव

1. लिपिक – 1948 – 56, वायु सेना कार्यालय, देहरादून
2. सम्पादकीय सहायक, करेंट अफेयर्स पत्रिका (1956–59), देहरादून
3. हिन्दी अनुवादक/अनुसन्धान जाँचकर्ता, राष्ट्रीय सामुदायिक विकास संस्थान, मसूरी, देहरादून (1959 – 64)
4. अनुसन्धान अध्येता/प्राध्यापक, मुख्याध्यापक, सामाजिक एवं ग्रामीण विकास केन्द्र तथा कार्यकारी निदेशक गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी (1964 – 91)

इन वर्षों में 20 वृहद् अनुसन्धानों का अध्ययन या तो सहायक के रूप में या निर्देशित कर पूर्ण कराया। मुख्य मुद्दे – ग्रामीण विकास एवं परिवर्तन, विकास केन्द्र/क्षेत्र नियोजन, ग्रामीण श्रम, किसान प्रतिवाद, बाल/बन्धुआ श्रम, सामाजिक क्रिया/आन्दोलन जैसे विषयों पर 5 पुस्तकों और 125 से अधिक अनुसन्धान/लोकप्रिय लेखों को प्रकाशित किया।

प्रमुख अनुसन्धान/अध्ययन रिपोर्ट्स

1. शेरपुर, गाजीपुर में कृषि सम्बन्धी द्वंद्व एवं परिवर्तन (1975 – 80)
2. बँधुआ श्रमिकों का उद्धार, संगठनात्मक रूप से वर्गीकृत वादकरण के माध्यम से झारखण्ड के सन्थाल परगना में 1984 – 1992 के मध्य मुक्ति से लेकर पुनर्वास तक।
3. बालश्रम उन्मूलन अनुसन्धान (1985 तक), वाराणसी और सीमावर्ती जिलों में कालीन और रेशम उद्योग पर पूर्णतया केन्द्रित रिपोर्ट्स और बाल दासता पर बने दक्षिण एशियाई गठबन्धन तथा अन्य तन्त्रों को सहयोग।

4. 1970 तथा 1980 के दशकों में उत्तरांचल में मद्यनिषेध, चिपको और टिहरी बाँध आन्दोलनों में, साथ ही टिहरी बाँध परियोजना में निष्कासित लोगों के पुनर्वास पर रिपोर्ट्स।
5. उत्तर प्रदेश स्वैच्छिक स्वास्थ्य संगठन के अध्यक्ष के रूप में उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश में आदिवासियों के अनुसन्धान प्रलेखन में सक्रिय रूप से जुड़कर नेतृत्व किया और एक वादकारी कार्यक्रम को हल के रूप में प्रस्तुत किया।

परामर्शदाता पूर्ण परियोजनाएँ
(अधिकतर 1991 में सेवानिवृत्ति के बाद की)
Consultancy Assignments

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
1994	परामर्शदाता कार्यालय लखनऊ/ बेंगलूर	निको, लखनऊ (NICO)	बालश्रम पर देश की नीतियों पर विशेष प्रेरक सभा।
1995	परिगणन सेवादल सदस्य	जे0एस0के0, कलकत्ता	कृषि श्रमिक संगठन
1997	परिगणन सेवादल	लघु उद्यम प्रगति संस्था, मद्रास	तमिलनाडु में कृषि श्रमिक आन्दोलन
1998	परिगणन सेवादल	प्रदान, लखनऊ	चर्म छिलक सहकारी संगठन

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
1998	वृत्तलेख समर्थन	प्रदान, लखनऊ	चर्म छिलक सहकारी संगठन
1998	अनुसन्धान प्रलेखन	दक्षिण एशियाई बाल दासता गठबन्धन, नई दिल्ली	बन्धुआ श्रमिकों का उद्धार तथा पुनर्वास (1980 – 81, 1997 – 98)
1998	परिगणन सेवादल	दक्षिण एशियाई बाल दासता गठबन्धन, नई दिल्ली, व्यवसायिक प्रशासनिक स्नातक	बन्धुआ श्रमिकों का उद्धार तथा पुनर्वास
1999	परिगणन सेवादल	राष्ट्रीय जन विकास संस्थान, फुलबानी, उड़ीसा	जन संगठन
1999 – 2003	वृत्तलेख समर्थन (द्विवार्षिक)	राष्ट्रीय जन विकास संस्थान	जन संगठन

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
2000	मध्यावधि मूल्यांकन	राष्ट्रीय जन विकास संस्थान, अभनपुर, छत्तीसगढ़	जन अधिकार संगठन (आदिवासी, गैर आदिवासी)
2001 – 2002	परिवीक्षण सेवादल (चार दौरे)	अन्तर्राष्ट्रीय युवा पहल शक्ति कार्यक्रम, पेन्नुकुन्डा, आन्ध्रप्रदेश	कृषि श्रमिक संगठनात्मक योजना, अधिकारों का दावा जताना
2003	परियोजना सेवादल	जन जागृति संस्थान, अभनपुर, छत्तीसगढ़	जन संगठन
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, नई दिल्ली कार्यालय			
1990 – 1991	सर्वेक्षण अनुसन्धान	गान्धी विद्या संस्थान, वाराणसी	राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना के प्रभावों का मूल्यांकन

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
संयुक्त राष्ट्र बाल आकस्मिक निधि संगठन, काठमांडू			
1993	प्रशिक्षण सलाहकार		क्षेत्रीय कार्यालयों में विशेष प्रेरक सभा
[CRY] बाल अधिकार संस्था, नई दिल्ली			
1998 – 1999	बाल श्रम क्रिया अनुसन्धान	सुपौल सहरसा बिहार के प्रवासी बाल श्रमिक परिवारों/वंशों का क्षेत्र अध्ययन	प्रवासी बाल श्रमिकों का अवैध व्यापार
विश्वबैंक – उ0 प्र0 सरकार			
1998 – 1999	क्रिया अनुसन्धान	उ0प्र0 और कर्नाटक में क्षेत्र अध्ययन	विविधकृत कृषि उत्प्रेरक परियोजना के रेशमकीट पालन घटक का बालश्रम पर प्रभावों का मूल्यांकन

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, नई दिल्ली			
2000	परिगणन सेवादल	बालश्रम मुक्ति एवं पुनर्वास संगठन, मिर्जापुर (CREDA)	बालश्रम विलोपन तथा साम्प्रदायिक गतिशीलता
2003	क्षेत्र अनुसन्धान	बालश्रम मुक्ति एवं पुनर्वास संगठन, (CREDA)	कोलों की भूमि का आधिकारिक हक
बालश्रम मुक्ति एवं पुनर्वास संगठन – संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, मिर्जापुर			
2002 – 2003	परिवीक्षण मूल्यांकन		ग्रामीण निर्धनता विलोपन
साहचर्य सहजीविता संघ			
1998	मूल्यांकन	युवा विकास संस्थान, गाजीपुर	मुक्त बालश्रम पुनर्वास
1998	मूल्यांकन	अन्कुर न्यास, इलाहाबाद	आदिवासी भूमि के पुर्नस्थापन के लिए कानूनी मदद

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
निर्धनता तथा सूखा निषेधक संस्था, नई दिल्ली/लखनऊ (OXFAM)			
1981 – 1982	मूल्यांकन	निर्धनता तथा सूखा निषेधक संस्थात्मक परियोजना, कालाहान्डी, पश्चिम उड़ीसा	सूखे से मुक्ति तथा प्रगति
1982 – 1983	सदस्य, क्षेत्रीय सलाहकार समूह	निर्धनता उन्मूलन एवं सूखा प्रतिरोधक संस्था, लखनऊ	
उ0 प्र0 जल प्रबन्धन, लखनऊ (UPDESCO)			
1982 – 1983	परिवीक्षण मूल्यांकन	यूरोपीय संगठन, उ0 प्र0 सरकार संयुक्त जल प्रबंधन प्रगति परियोजना, देहरादून	सांप्रदायिक गैर सरकारी संस्था सहभागिता।

वर्ष	नियत कार्य/ परियोजना की प्रकृति	संगठन का नाम	मूल विषयवस्तु/ मुद्दा
विश्व एकात्मक क्रिया, पश्चिम जर्मनी (Action For World Solidarity)			
1994	मूल्यांकन	गाँधीग्राम (मदुरई)	हरिजन (दलित) पुनर्वास
सूखा प्रबन्धन – ग्राम नियोजन केन्द्र, गाजियाबाद			
1994 – 1995	मूल्यांकन	उ0 प्र0, राजस्थान में परियोजना सहभागी	सूखा सिद्धि साम्प्रदायिक कार्य
दक्षिण एशियाई बाल दासता गठबंधन, नई दिल्ली (SACCS)			
2000 – 2001	अनुसन्धान परामर्शदाता	दक्षिण एशियाई बाल दासता गठबंधन, नई दिल्ली	प्रवासी एवं नगरीय बालश्रम
युवा एवं सामाजिक प्रगति केन्द्र, भुवनेश्वर (CYSD)			
2002 – 2003	परिवीक्षण	युवा तथा सामाजिक विकास परियोजना	वैश्विक नगरीय संस्था – आदिवासी, ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, विधिशास्त्र संकाय पश्चिम बंगाल पर्यावरण एवं वन परियोजना मन्त्रालय			
2003	क्षेत्र अनुसन्धान	पूर्वी उ0 प्र0 प्रशिक्षण आधिकारिक योजना	पर्यावरण संरक्षा के लिए जन सहभागिता

उत्तराखण्ड में नशाबंदी (मद्यनिषेध) आन्दोलन
(राजनीति का अहिंसक प्रतिरोध)

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी

रूपरेखा

उत्तराखण्ड के पिछड़े जिलों में मद्यपान को स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तरप्रदेश की सरकारों ने बढ़ावा दिया यह तर्क देते हुए कि राजस्व प्राप्ति के लिए तथा राज्य की प्रगति, विकास एवं उन्नति के लिए यह अत्यावश्यक है । जैसे–जैसे सड़कों ने नए–नए क्षेत्रों को जोड़ना शुरू किया, सरकार ने हर क्षेत्र में एक मदिरा की दुकान को प्रत्याभूति (लाइसेंस) देना शुरू किया जिसमें सरकार की यह शर्त होती थी कि जमानतदाता को प्रतिवर्ष 25 से 30 प्रतिशत अधिक बिक्री करनी होगी। अनुज्ञप्तिधारी गुप्त रूप से विक्रय प्रतिनिधियों के माध्यम से तथा अपनी दुकान से सरकारी नीतियों के अनुपालन में ज्यादा से ज्यादा मदिरा की बिक्री करता था जिससे इस पिछड़े इलाके में मद्यपान को प्रोत्साहन मिला। 1950के दशक में गढ़वाल जिले के कुछ सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने श्री सोहनलाल ''भूमिभिक्षुक'' के नेतृत्व में नशाबंदी के लिए अनगिनत गाँवों में नशे की दुकानों को बंद करवाने के लिए एक ज्ञापन उत्तर प्रदेश सरकार को भेजा परन्तु यह असफल सिद्ध हुआ। तत्पश्चात् श्री सोहनलाल आमरण अनशन पर बैठे किन्तु विनोवा जी के समझाने पर उन्होंने इस अनशन को तोड़ दिया। मार्च 1964 में टिहरी जिले के घनसाली नामक स्थान पर सर्वोदय कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में स्थानीय लोगों ने शांतिपूर्ण तथा अहिंसक तरीके से एक जन आंदोलन शुरू किया जो कि नशाबंदी आन्दोलन के लिए एक मील का पत्थर

साबित हुआ तथा स्थानीय लोगों ने कुछ अन्य सामाजिक समस्याओं जैसे कि कोटद्वार के तराई क्षेत्रों में पानी की कमी एवं टिहरी के चन्द्रबदनी मंदिर में जानवरों की बलि के खिलाफ भी जन सत्याग्रह किया । सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने इस जनांदोलन को इस क्षेत्र के आर्थिक पिछड़ेपन, राष्ट्रीय सुरक्षा, हिमालयन क्षेत्र की धार्मिक परायणता, नशे की वजह से होने वाली दुर्घटनाओं एवं इसके प्रशासनिक तथा राजनीतिक प्रणाली पर प्रभाव को दृष्टिगत कर प्रारम्भ किया जिसे यहाँ की जनता का, जिसमें महिलाएँ भी थीं, पूर्ण समर्थन मिला। घनसाली सत्याग्रह के पूर्व सन् 1964 में श्री सुन्दर लाल बहुगुणा जी ने विनोबा जी से सम्पर्क किया जिन्होंने उन्हें जन शक्ति का शांतिपूर्ण धरने के माध्यम से प्रयोग करने की सलाह दी। विनोबा जी ने हिमालय की धर्म परायणता तथा इस क्षेत्र की युद्धनीतिक महत्व को लोगों के सामने रखते हुए नशाबंदी को अति आवश्यक बताया। जब विनोबा जी को बताया गया कि कार्यकर्ताओं के नशाबंदी आन्दोलन में शामिल होने पर ग्रमदान अभियान पर कुप्रभाव पड़ेगा, उन्होंने उत्तर दिया कि अब नशाबंदी आंदोलन को पूरे जोश तथा उत्साह के साथ इस बुराई को समाप्त करने के बाद ही चैन की साँस लेनी है। विनोबा जी ने सर्वोदय कार्यकर्ताओं को शांतिपूर्ण धरने और सत्याग्रह की इजाजत दे दी। स्थानीय नेतृत्व ग्रामदान तथा नशाबंदी दोनों आन्दोलनों को एक दूसरे का पूरक समझता था क्योंकि सरकारी नीति जो कि मादक द्रव्यों को बढ़ावा दे रही थी, के प्रति सर्वमान्य रोष था। यह अध्ययन मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है। ग्रामीण क्षेत्र में हुए शांतिपूर्ण तथा अहिंसक सत्याग्रह को घनसाली–बादशाही ठौल क्षेत्र तथा नगरीय क्षेत्र को कोटद्वार–लैन्सडाउन क्षेत्र से लिया गया है। लोग सरकार की गलत नीतियों का विरोध तो कर ही रहे थे, साथ ही साथ अपने समुदाय का कल्याण भी नशाबंदी के

माध्यम से करना चाह रहे थे। इन सीमावर्ती इलाकों में जहाँ प्रति व्यक्ति औसत आय देश में निम्नतम थी, इस आन्दोलन का एक अनोखा महत्व था। ऐसे समय में जबकि संचार के साधन अत्यन्त सीमित थे, यातायात के साधनों का अभाव था, ये सर्वोदय कार्यकर्ता अपनी दृढ़इच्छाशक्ति के बल पर ग्रामीण तथा नगरीय दोनों जगह अनेकों बाधाओं को पार कर धैर्यपूर्वक, विचारधारा के द्वारा सम्पादित क्रियाकलाप अहिंसा, शान्ति तथा शान्तिपूर्ण विधियों के द्वारा व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन एवम् दुनिया के विचारों को सकारात्मक दिशा में मोड़ना चाहते थे। सर्वोदय कार्यकर्ताओं के बारे में सिर्फ इतना ही कह सकते हैं –

"जिसे जीतने का विश्वास हो
वह अवश्य जीतेगा"

ग्रामीण क्षेत्र

घनसाली–बादशाही ठौल

घनसाली के नशाबन्दी सत्याग्रह ने इस जिले की राजनीति पर एक अप्रतिम छाप छोड़ी है। आन्दोलन में शामिल सभी कार्यकर्ता इस बात पर एकमत थे कि दूसरे सभी आन्दोलन हमारी तकनीकों से प्रेरित एवं आधारित होंगे। यह आजादी के बाद पहली बार था कि प्रशासनिक व्यवस्था को चुनौती दी गई थी तथा मादक द्रव्य की दुकान को जारी की गई अनुज्ञप्ति को वापस लेने की माँग की गई थी। 1952–53 में टिहरी से पक्की सड़क द्वारा जुड़ने के बाद घनसाली का महत्व काफी बढ़ गया था। बाद में जब सड़क को तीर्थस्थली, केदारनाथ, के पास स्थित फाटा तक बढ़ा दिया गया तो यह जगह बस पकड़ने के लिए एक प्रमुख सड़क मार्ग के रूप में प्रसिद्ध हो गई। आर्थिक तथा सामाजिक रूप से यह एक पिछड़े जिले का पिछड़ा भाग है। यहाँ की पूरी जनसंख्या कृषि तथा वन आधारित श्रम पर अपनी आजीविका चलाती थी। कुछ सेवानिवृत्त सरकारी

अधिकारी भी यहाँ रहते थे, जिन्होंने सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूर्व के अनुभव भी अच्छे नहीं थे तथा जब भी यहाँ के लोगों ने राजशाही नीतियों का या ब्रिटिश अधिकारियों का विरोध किया था, इनका बर्बरतापूर्वक दमन किया गया था। इन्हें एकजुट कर सरकारी नीतियों के विरुद्ध खड़ा करना तथा एकजुट करना एक बहुत बड़ी चुनौती थी। 1956 में श्री सुन्दर लाल बहुगुणा ने राजनीति से सेवानिवृत्ति की घोषणा की तथा घनसाली से तीन मील दूर सिलिआरा में 'पर्वतीय नवजीवन मण्डल' नाम से एक संस्था खोली। यहाँ पर मद्यपान करने वाले काफी लोग थे। जब बहुगुणा जी को पता लगा कि लोग अवैध रूप से मदिरा बना कर चौबीसों घण्टे नशे में धुत रहते हैं, उन्होंने व्यक्तिगत रूप से लोगों से मिलकर उन्हें समझाना शुरू किया कि तुम लोग शपथ लो कि मदिरा नहीं बनाओगें तथा जनसमूह के सामने उन उपकरणों को तोड़ों जिससे मदिरा बनाई जाती है लोग जब तक बहुगुणा जी रहते थे अपनी गतिविधियों को काफी सीमित कर देते थे परन्तु उनके जाने के बाद वे फिर अवैध मदिरा निर्माण में संलिप्त हो जाते थे। एक गाँव में जहाँ पर अवैध मदिरा सर्वाधिक बनाई जाती थी, बहुगुणा जी ने एक पेड़ के नीचे बैठकर आमरण अनशन शुरू किया। यह अनशन उन्होंने ग्रामीण महिलाओं के आग्रह तथा इस आश्वासन पर समाप्त किया कि वे पुरुषों को न तो मदिरा बनाने देंगी और न ही पीने देंगी, यदि वे करेंगे तो वे घर का पूरा काम बन्द कर देंगी यहाँ तक कि भोजन भी नहीं बनाएँगी। महिलाएँ जो कि मदिरा की वजह से घरेलू हिंसा का शिकार तो होती ही थीं साथ ही साथ उनके गहनों को भी मदिरा के लिए औने पौने दामों में बेच दिया जाता था, उनके साथ ने बहुगुणा जी को एक अनोखी ऊर्जा दी। सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने सरकार से माँग रखी कि घनसाली में मदिरा की दुकान की नीलामी न हो तथा कोई भी अनुज्ञप्ति न दी

जाए। जब सरकार ने घनसाली में मदिरा की दुकान की अनुज्ञप्ति टिहरी में हुई नीलामी के माध्यम से दे दी तो बहुगुणा जी काफी दुःखी हो गए। लखनऊ जाकर बहुगुणा जी विधायकों से मिले तथा जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह अनुज्ञप्ति आबकारी विभाग के अधिकारियों ने शायद प्रभावशाली व्यापारियों के हित तथा दिलचस्पी को ध्यान में रख जारी की है तो उन्होंने इसका प्रबल विरोध करने का निश्चय किया। यह अनुज्ञप्ति 1–4–1964 से प्रारम्भ होनी थी। बहुगुणा जी 1–3–1964 को घनसाली पहुँचे। दुकानदारों की प्रतिक्रिया मिश्रित थी परन्तु ग्रामीणों की सकारात्मक प्रतिक्रिया पाकर बहुगुणा जी ने प्रतिरोधात्मक आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। एक मद्यनिषेध समिति का गठन किया गया जिसमें एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, श्री एस0डी0 नौटियाल जी को सभापति तथा एक वन ठेकेदार, श्री श्रीराम सान्सवाल जी को सचिव नियुक्त किया गया। यह समिति प्रतिदिन किए गए कार्यों के अवलोकन का उत्तरदायित्व संभालती थी। लोक शिक्षा नाम से एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया जहाँ पर ग्रामीण उन स्थानों पर शान्तिपूर्ण धरना देते थे जहाँ या तो अवैध शराब बनती थी या बिकती थी। घनसाली के लोगों ने यह संकल्प लिया कि मादक द्रव की बिक्री के लिए जारी की गई विज्ञप्ति यदि वापस नहीं ली गई तो लोग दुकानों के सामने शान्तिपूर्ण धरना देंगे तथा कोई भी दुकान के लिए किराए पर जगह नहीं देगा । यह संकल्प जिलाधिकारी तथा अनुज्ञप्तिधारक को लिखित रूप से बता दिया गया। स्थानीय मद्यनिषेध समिति ने कार्य का पूर्ण प्रबन्धन तथा सर्वोदय कार्यकर्ताओं की भूमिका को तय करने की पूरी जिम्मेदारी का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। 1 मार्च 1964 से 26 मार्च 1964 तक जनसभाओं, प्रभातफेरियों एवं हर गांव में सभाओं को आयोजित कर वृहद् जनभागीदारी को सुनिश्चित किया गया। श्री बहुगुणा जी ने

अपर जिलाधिकारी को वस्तुस्थिति से अवगत कराया तथा लोगों के रोष के बारे में बताया। तत्पश्चात् अधिकारियों ने पूर्व न्यायाधीश को समिति से हटाने की कोशिश शुरू की। इसके लिए उनसे जोर देकर कहा गया कि अपनी उम्र के हिसाब से उन्हें आराम करना चाहिए तथा पूजापाठ में संलग्न होना चाहिए, न कि आन्दोलन में शामिल होना चाहिए। समिति को यह बताया गया कि प्रशासन ने धारा 144 लगाने का फैसला किया है तथा जो भी इसे तोड़ने की कोशिश करेगा उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। समिति के सभापति ने 26 मार्च को नशाबंदी सम्मेलन का उद्घाटन किया, जिसमें आसपास के गांवों के ग्रामीणों के अलावा 12 सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने भाग लिया जो कि पर्वतीय जिलों के दूसरे हिस्सों से आए थे। इस सम्मेलन में यह बताया गया कि रजोगुण के साथ तमोगुण भी चलता है तथा कांग्रेस द्वारा शासित राज्य सरकार ने एक गलत निर्णय लिया है जिसका कुप्रभाव जनता पर पड़ेगा अतः जनता को विरोध करने का पूर्ण अधिकार है। महिलाओं तथा बच्चों के सुखद् भविष्य के लिए नशाबन्दी अत्यावश्क है। सम्मेलन में यह संकल्प लिया गया कि जब तक सरकार घनसाली में मादक द्रव की दुकान को न खोलने का लिखित आश्वासन नहीं देती तब तक यह विरोध चलता रहेगा। लोगों ने अपने गले में ''मद्यपान छोड़ो!" की तख्तियां लगाकर स्वेच्छा से निःस्वार्थ रूप से आन्दोलन में सहयोग देने का निश्चय किया। लीलाओं एवं नाटकों का मंचन किया गया जिसमें कि महिलाओं ने अपने पिताओं तथा ससुरों के द्वारा नशे की हालत में किये गए अत्याचारों का वर्णन किया तथा लोगों से मर्मस्पर्शी विनती की गई कि यदि मदिरा की दुकान खुली तो यहाँ पर रामलीला न होकर रावण लीला ही होगी। बसों तथा यातायात के अन्य साधनों पर आकर्षक रंगों से स्वेच्छा से वाहन स्वामियों ने लिखा "घनसाली में शराब की दुकान नहीं खुलेगी।"

जिससे आन्दोलन को पूर्ण समर्थन मिलने की सम्भावनाओं को अत्यन्त बल मिला। सुन्दर लाल बहुगुणा जी जो कि स्वयं दिल्ली से छपने वाले एक राष्ट्रीय हिन्दी समाचार पत्र के संवाददाता थे, ने अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों के माध्यम से इस आन्दोलन को पूर्ण रूप से मुद्रित तथा प्रकाशित कराया जिससे कि सरकार पर दबाव पड़ा। आन्दोलनकारियों को कहा गया कि शान्तिपूर्ण तथा अहिंसक तरीके से कार्य करते रहने पर प्रशासन सिर्फ गिरफ्तारी की धमकी ही दे सकता है, इसे अंजाम नहीं दे सकता अतः पूरी तन्मयता से अपने लक्ष्यप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहो। तत्कालीन हरिजन जिलाधिकारी ने राज्यसरकार को सूचना दी कि लोगों के अन्दर शराब की दुकान खोलने को लेकर अत्यधिक रोष तथा आक्रोश है अतः जनभावनाओं तथा जनविरोध को देखते हुए अनुज्ञप्ति को रद्द करना ही उचित होगा। राज्य सरकार ने अनुज्ञप्ति को रद्द करने का निर्णय लिया तथा 28 मार्च की रात को रामलीला मंच से तहसीलदार ने इस निर्णय से लोगों को अवगत कराया। लोगों ने इस निर्णय पर खुशी का इजहार करते हुए मद्यनिषेध समिति को भारतीय मद्यनिषेध समिति से मान्यता दिलाने का निश्चय किया तथा अवैध मदिरा निर्माण के विरुद्ध अपने अभियान को गांवों में जारी रखने का निश्चय किया। इस अभियान को आर्थिक मदद स्थानीय लोगों ने गेहूँ, चावल तथा सामर्थ्यानुसार नगद पैसे देकर की, जिससे कि स्वेच्छा कार्य से जुड़े लोगों और सर्वोदय कार्यकर्ताओं के भोजन एवं यात्रा खर्च, मुद्रण तथा प्रकाशन व्यय को वहन किया गया। महिलाओं ने रामलीला में आरती के माध्यम से ज्यादा से ज्यादा धन एकत्रित किया तथा बिना किसी बाहरी सहायता के, स्थानीय प्रयासों से, यह आन्दोलन अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को न सिर्फ पूरा किया परन्तु भविष्य के लिए भी बचत अतिरिक्त समिति के पास थी। ग्रामीण क्षेत्र में दूसरा आन्दोलन

मार्च 1966 में बादशाही ठौल में हुआ जबकि लोगों ने सरकारी शराब की दुकान बंद कराने की मांग की। शुरुआत सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने की। यह कार्य घनसाली की अपेक्षा कठिन था क्योंकि यहां पर व्यापारियों तथा सरकार से प्रत्यक्ष लोहा लेना था। इन कठिनाइयों के बावजूद अपने आत्मविश्वास तथा दृढ़ निश्चय के बल पर सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने नशाबन्दी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया। धनसाली में तो धरने की नौबत नहीं आयी परन्तु यहाँ तो शुरुआत ही धरने से करनी थी। यहां के शराब व्यापारी शराब की मात्रा को बढ़ाने के लिए मिलावट करते थे तथा अपनी शराब को कई छोटी छोटी गैर अनुज्ञप्ति धारक दुकानों से भी बिकवाते थे, यानि कि व्यापारियों का एक बड़ा गिरोह पनप चुका था। सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने सर्वप्रथम संवैधानिक तरीके से समस्या को हल करने की कोशिश की। उन्होंने चम्बा विकास क्षेत्र की सभी ग्राम सभाओं को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे कुमायूँ के आयुक्त तथा टिहरी के जिलाधीश को एक संकल्प पत्र भेजें ताकि प्रशासन को यह ज्ञात हो जाय कि ग्राम सभाएं बादशाही ठौल से शराब की दुकान को बन्द कराना चाहती हैं। इस संवैधानिक तरीके का कोई सार्थक परिणाम नहीं मिला। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा जी ने अपने सम्पर्कों से तथा व्यापारियों से बात करने के बाद यह जानकारी पाई कि इस नीलामी में पर्वतीय क्षेत्रों के कुख्यात लोग भाग लेते हैं जिनके पास ऐशो आराम की सभी चीजें है तथा अपने दलालों के माध्यम से शराब की बोतलों को पूरे पर्वतीय क्षेत्र में बिकवाते हैं। आबकारी अधिकारी से बहुगुणा जी स्वयं नरेन्द्रनगर जाकर मिले तथा उन्हें सभी 24 ग्राम सभाओं के ग्राम प्रधानों के त्यागपत्र को दिखाते हुए जनभावनाओं के सम्मान में शराब की दुकान को बन्द कराने की विनती की परन्तु आबकारी अधिकारी ने उन्हें बताया कि सरकार आबकारी विभाग को

अधिक से अधिक राजस्व प्राप्ति का लक्ष्य दी है अतः यह नामुमकिन है। इन असफल प्रयासों के बाद सर्वोदय कार्यकर्ताओं के पास शान्तिपूर्ण धरने के सिवाय कोई रास्ता नहीं था। 26 फरवरी, 1966 को चम्बा मद्यनिषेध समिति ने पट्टी, बमुंद, मखलोगी, मनयार और धाराकरिया के लोगों की एक जनसभा चम्बा में आयोजित की जहां पर लोगों को अब तक किए गए कानूनी विरोध के बारे में बताया गया । श्री मोर सिंह, घनश्याम सिंह, भाग सिंह, हीरा सिंह, सुन्दर लाल बहुगुणा और विद्यासागर ने सभा में अपने विचारों को रखा। इस सभा में यह संकल्प लिया गया कि बादशाही ठौल की शराब की दुकान को तुरन्त बन्द कराने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा है। 1 मार्च 1966 से धरने का निश्चय हुआ तथा लोगों को यह बताया गया कि हम सिर्फ मदिरा के खिलाफ आन्दोलन कर रहें हैं। न तो हम सरकार के खिलाफ हैं, और न ही व्यापारियों के। जब गांधी जी ने नशाबन्दी आन्दोलन की शुरुआत की थी तो नेतृत्व श्रीमति कमला नेहरू को दिया था। अतः कार्यकर्ताओं के आग्रह पर स्वर्गीय श्रीदेबसुमन की माता, श्रीमती तारादेवी, को सत्याग्रह के नेतृत्व की जिम्मेदारी दी गई क्योंकि कार्यकर्ताओं को डर था कि पुरुष नेतृत्व में सत्याग्रह हिंसक भी हो सकता है। लोगों ने यह प्रण किया कि हर परिस्थिति में शान्ति बनाए रखेंगे। तीन टुकड़ियाँ, क्रमशः श्री मोर सिंह नेगी, श्री भाग सिंह तथा इन्द्र सिंह सजवान के नेतृत्व में बनाई गईं तथा सर्वोदय कार्यकर्ताओं को इन टुकड़ियों में समन्वय बनाए रखने के लिए समन्वयक की भूमिका दी गई। श्रीमती तारादेवी को एक पालकी पर बिठाकर धरना स्थल पर लाया गया। रास्ते में अनेकों महिलाओं ने उन्हें माल्यार्पण किया। पहले यह फैसला किया गया था कि धरने की शुरुआत के बाद उन्हें अत्यन्त वृद्ध होने के कारण घर वापस लाया जाएगा किन्तु जब उन्होंने यह

फैसला किया तथा प्रण लिया कि दुकान पूर्ण रूप से बन्द होने तक वह वापस नहीं लौटेंगी, चाहे उनकी जान ही क्यों न चली जाए तो उन्हें 31 मार्च, 1966 तक वहीं पर नेतृत्व के लिए रखा गया। 1 मार्च 1966 को श्री घनश्याम रतूड़ी, विश्वेश्वर दत्त जोशी और भवानी भाई लोगों के विशाल जुलूस के साथ भजन गाते हुए चम्बा से बादशाही ठौल के लिए रवाना हुए। मदिरा की दुकान के पास श्रीमती गौरजा देवी को सभापति बनाकर लोगों को मदिरा के दुष्परिणामों के बारे में बताया गया तथा श्रीमती तारा देवी ने सभी कार्यकर्ताओं में अपने बेटे 'सुमन' की छवि को देखते हुए आन्दोलन की पूर्ण सफलता पर पूर्ण विश्वासमत हासिल किया। चम्बा विकास केन्द्र समिति के सभापति श्री बेचन सिंह नेगी ने लोगों को आश्वस्त किया कि यदि सरकार नशाबंदी पर राजी नहीं होती तो वे व्यक्तिगत रूप से सभी पर्वतीय क्षेत्रों के विधायकों तथा सांसदों के इस्तीफे दिलाएंगे तथा सभी क्षेत्रीय विकास समितियों एवं ग्राम सभा के इस्तीफे राज्य सरकार को प्रेषित करेंगे। धरने के अलावा कार्यकर्ता गांव–गांव में जाकर लोगों को नशाबन्दी के लाभ को बताते थे तथा अफवाहों को फैलने से रोकते थे। एक श्यामपट चम्बा में लगाया गया था जिस पर प्रतिदिन उन लोगों के नाम लिखे जाते थे जो कि शराब खरीदते थे, जिससे लज्जावश लोगों ने खुद न आकर हरिजनों से शराब मंगाना शुरू किया। आन्दोलन की विस्तृत सूचना मुद्रकों तथा प्रकाशकों को दी जाती थी जिसके फलस्वरूप यह आन्दोलन स्वतन्त्रता के बाद का सर्वाधिक मुद्रित एवं प्रकाशित आन्दोलन सिद्ध हुआ। लोग स्वेच्छा से धन तथा राशन कार्यकर्ताओं को देते थे, फलस्वरूप आन्दोलन निर्बाध रूप से जारी रहा। लोग भजन कीर्तन गाते हुए उन लोगों से शराब न खरीदने की विनती करते रहे जो कि वहां पर ग्राहक के रूप में आते थे। कुछ मान जाते थे जबकि कुछ अभद्र शब्दों का प्रयोग कर

शराब खरीद कर चले जाते थे लेकिन लोगों ने धैर्यपूर्वक अहिंसक तरीके से समझाने बुझााने का कार्य जारी रखा । महिलाओं का हौसला इतना बढ़ गया था कि एक महिला ने जब दुकानदार दुकान खोलने जा रहा था; दुकान की चाबी ले ली तथा दुकानदार के बार बार धमकाने पर भी चाबी न दी और वह निराश होकर बैठ गया । 17 मार्च, 1966 को तारा देवी ने टिहरी गढ़वाल के विधायकों को एक पत्र लिखा जिसमें उन्हें धरने के बारे में विस्तार से बताते हुए 21 मार्च की सभा में आने का निमंत्रण देते हुए यह आग्रह किया गया था कि इस उम्र में उनके द्वारा समाजसुधार के लिए किए गए इस कार्य को पूर्ण कराने के लिए इन दुकानों का तुरन्त बन्द होना अतिआवश्यक है। लोगों की सामूहिक शक्ति ने प्रभाव डाला तथा दुकानों की बिक्री पर असर पड़ा जिसने व्यापारियों को 4 रुपये प्रति शीशी कम दाम पर शराब बेचने के लिए मजबूर किया। 21 मार्च, 1966 को सरकार द्वारा नियुक्त जिला आबकारी सलाहकार समिति ने एक संकल्प लिया। इस सभा में टिहरी जिले को देश के सबसे अधिक गरीब जिलों में शुमार करते हुए इसे पूर्ण नशामुक्त घोषित करने की माँग की गई तथा सभी शराब की दुकानों को तुरन्त बन्द करने की मांग की गई। जिला अधिवक्ता संघ ने भी इस मांग को अपना समर्थन दिया। व्यापारियों ने मदिरा का मूल्य आधा कर दिया तथा कुछ ऐसे लोगों को नियुक्त किया जो कि महिलाओं को किनारे कर सीधे दुकान में आकर शराब खरीदने लगे। लोगों ने दुर्गा पाठ शुरू किया। धरना स्थल पर लगातार भीड़ बढ़ती चली गई। प्रशासन ने दुकान को दो फर्लांग दूर स्थानान्तरित करने का फैसला किया पर लोगों ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे इसे स्थानान्तरित नहीं, बल्कि बन्द करवाना चाहते हैं। विक्रय प्रतिनिधियों ने अपने मालिकों से कहा कि वे 31 मार्च, 1966 के बाद शराब नहीं बेच पाएंगे तब तक वे मालिक की उपस्थिति में

ही इसे बेच सकते हैं। टिहरी नगरपालिका के सभापति, राष्ट्रीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष तथा जिलापरिषद के दो सदस्यों ने मुख्यमंत्री को एक तार भेजा जिसमें विकट परिस्थितियों का हवाला देते हुए शराब की दुकान को तुरन्त बन्द करने की मांग की गई थी। 26 मार्च, 1966 को सरला बहन के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल तत्कालीन मुख्यमंत्री, श्रीमती सुचेता कृपलानी को एक हस्ताक्षरित ज्ञापन भेंट करने के लिए लखनऊ गया। यह प्रतिनिधि मंडल जिसमें कि श्रीमती गौरजा देवी, सुरेश्वरी देवी और श्री योगेशचन्द्र बहुगुणा शामिल थे तथा लखनऊ पहुचने पर श्रीमती विनय लक्ष्मी सुमन, देव प्रयाग क्षेत्र की टिहरी गढ़वाल से विधायिका भी शामिल हुई। जन भावनाओं को जानने के बाद माननीय मुख्यमंत्री जी ने सरला बहन को आश्वस्त किया कि 31 मार्च के बाद दुकानों की नई अनुज्ञप्ति जारी नहीं की जाएगी, नीलामी नहीं होगी किन्तु अवैध मदिरा की बिक्री तथा उत्पादन न हो यह देखना स्थानीय लोगों की जिम्मेदारी है। 27 मार्च को लखनऊ में एक संवाददाता सम्मेलन बुलाकर सरला बहन ने सरकारी नीतियों में बदलाव के बारे में बताया तथा सरकार के निर्णय के बारे में बताया । इस प्रकार बादशाही ठौल का आन्दोलन सफल हुआ तथा 1 अप्रैल, 1966 से इस क्षेत्र की सभी तीनों दुकानों की अनुज्ञप्ति रद कर दी गई एवं नई अनुज्ञप्ति जारी नहीं की गई । यह था अदम्य साहस ।

नगरीय क्षेत्र – कोटद्वार–लैंसडाउन

1965 से 1969 के मध्य उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों में सर्वोदय कार्यकर्ताओं द्वारा नशामुक्ति के लिए अनेकों आन्दोलन किए गए। वे चाहते थे कि 1969–70 वित्तवर्ष के लिए किसी भी दुकान की नीलामी न हो। श्री मेहरबान सिंह, विधायक एवं जिलापरिषद् अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल ने तत्कालीन राज्यपाल डा0 गोपाल रेड्डी को

धरना देने वालों की इस माँग को बलपूर्वक मानने के लिए विनती की। मार्च 1969 में कोटद्वार में नशामुक्ति सत्याग्रह का प्रारम्भ हुआ। सर्वोदय कार्यकर्ता तथा जिला गांधी शताब्दी समिति के सचिव श्री मानसिंह रावत इस सत्याग्रह आंदोलन के नायक थे। पहली बार कोटद्वार में सभी वर्गों की महिलाओं ने एक आन्दोलन में भाग लिया।

18 अक्टूबर, 1968 को जिला गांधी शताब्दी समिति ने पौड़ी में गढ़वाल के जिलाधिकारी तथा समितिके अध्यक्ष श्री रमेशचन्द्र को सभापति बनाकर एक सभा की। इस सभा में सचिव श्री मानसिंह रावत ने सदस्यों का ध्यान जिले के पिछड़ेपन की ओर आकृष्ट किया। मुख्य वार्ता का केन्द्र नशामुक्ति ही था। यह निर्णय लिया गया कि सभी ग्राम प्रधान तथा पटवारी अवैध शराब के कारोबारियों के खिलाफ मोर्चा खोल दें। दिसम्बर 1968 में कोटद्वार में एक सभा की गई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि एक महिला मण्डल की स्थापना की जाएगी। शराब का सेवन न सिर्फ एक सामाजिक समस्या थी बल्कि एक घरेलू समस्या भी थी तथा महिलाएँ इसे दूर करने में अत्यधिक सहायता प्रदान कर सकती थीं। सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने शराब की दुकान पर 1 फरवरी, 1969 से 6 फरवरी, 1969 तक लगातार सुबह दस बजे से रात्रि दस बजे तक धरना दिया। कोटद्वार के लोगों को समस्या की गम्भीरता बताने के लिए प्रचार का सहारा लिया गया। पर्चियाँ बाँटी गईं तथा समाचारपत्रों में इश्तेहार दिए गए। श्री मानसिंह रावत ने लोगों से बिनती की कि हमारे देश में खुशी, शान्ति और समृद्धि नशामुक्ति द्वारा ही लाई जा सकती है। जो लोग नशे की कमाई खा रहे हैं वे देश के सबसे बड़े शत्रु हैं। उन्होंने लोगों से विनती की कि गांधी शताब्दी वर्ष में बापू को सच्ची श्रद्धांजलि देने के लिए सभी को यह संकल्प लेना चाहिए कि न तो खुद शराब पिएगें, न दूसरों को पीने देंगे तथा सभी शराब

की दुकानों को बन्द करवाएंगे। 1 मार्च, 1969 को शराब की दुकान पर धरना शुरू हुआ। इस नशामुक्ति आन्दोलन में शामिल होने के लिए 7 मार्च, 1969 को सम्पूर्ण भारत नशामुक्ति समिति की अध्यक्षा, डा0 सुशीला नायर, कोटद्वार पहुंची। श्री विष्णुसिंह रावत की अध्यक्षता में 9 मार्च, 1969 को शान्तिपूर्ण धरने के समर्थन में एक जनसभा बुलाई गई जिसमें चौदह राजनीतिक दलों तथा अनेकों संगठनों ने भाग लिया। यह सभा श्री रामचन्द्र उनियाल तथा संयुक्त समाजवादी दल के नेता, हरिराम चंचल, ने आयोजित की थी। यह निश्चय किया गया कि सरकार से नीलामी रोकने की विनती की जाएगी तथा 11 मार्च को नशामुक्ति के समर्थन में पूर्ण बन्दी का आह्वान किया जाएगा। 11 मार्च की बन्दी पूर्ण रूप से सफल रही। 12 मार्च को मानसिंह रावत के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल लैन्सडाउन पहुंचा जहां पर दुकानों की अगले वित्तवर्ष के लिए नीलामी होनी थी तथा अनेकों ठेकेदार आए हुए थे लेकिन सत्याग्रह की वजह से कोटद्वार में शराब की बिक्री कम हो चुकी थी तथा शिष्टमण्डल द्वारा दबाव डालने पर नीलामी को कुछ दिनों के लिए आगे बढ़ा दिया गया। मार्च के तीसरे सप्ताह तक श्री मानसिंह रावत द्वारा प्रारम्भ किया गया शान्तिपूर्ण धरना एक वृहद् जनांदोलन का रूप ले चुका था। शराब की दुकान के ठीक सामने श्री रूपचंद्र वर्मा का मकान था जो कि नशेड़ियों द्वारा मचाए जाने वाले शोरगुल की वजह से इस समस्या से पूर्ण छुटकारा चाहते थे। अतः उन्होंने इस आन्दोलन को पूर्ण समर्थन दिया। पहली बार कोटद्वार में सम्मानित परिवारों की महिलाओं ने धरने तथा आन्दोलन में भाग लिया। पूरे दिन वे बैठकर भजन गाती थीं तथा जो शराब खरीदने आते थें उन्हें समझाती थीं कि इस पैसे का प्रयोग खाद्य सामग्री, वस्त्र तथा बच्चों की शिक्षा में करो न कि नशे में डुबो दो। श्रीमती शशिप्रभा रावत, श्रीमती हेमलता रावत और

रूपचन्द्र वर्मा की पत्नी ने इन महिलाओं का नेतृत्व किया। सरकार के विरोधाभासी कदमों को लेकर लोगों में भ्रम की स्थिति थी। एक तरफ तो राज्यपाल ने गांधी शताब्दी वर्ष के कारण उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ में नशामुक्ति की घोषणा की थी, वहीं टिहरी, गढ़वाल तथा चमोली जनपदों में प्रतिव्यक्ति चार बोतल खरीदने की छूट थी। 27 मार्च को सरकार ने नीलामी की घोषणा की। लोगों ने ठेकेदारों की गाड़ियों के टायर छेद दिए तथा शीशों को तोड़ दिया। 28 मार्च, 1969 को कोटद्वार के झण्डा चौक पर श्री महानन्द सुन्दरियाल के सभापतित्व में एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें श्री दिलीप सिंह विष्ट, दिलीप सिंह रावत, भगतराम वैद्य और सोहनलाल भूभिक्षु ने अपने विचार रखे। इस सभा में मानसिंह रावत जी ने आमरण अनशन की घोषणा की। इस बड़े जुलूस के साथ वे शराब की दुकान पर पहुंचे तथा आमरण अनशन प्रारम्भ किया। 30 मार्च को कोटद्वार के हजारों नागरिकों, छात्रों और गढ़वाल वाहन व्यापार संगठन के सदस्य पूरे कस्बे में नशामुक्ति आन्दोलन के समर्थन में कूद पड़े। 29 मार्च को ही शराब की बिक्री बन्द हो चुकी थी तथा व्यापारियों ने 31 मार्च को सम्मानित स्थानीय नेताओं की एक सभा में यह संकल्प लिया कि चूँकि सभी तीर्थस्थानों के रास्ते इसी जगह से होकर जाते हैं, अतः सभी पर्वतीय जिलों को नशामुक्त घोषित करवाना हमारा लक्ष्य है। जनपद के विधायकों, विधानपरिषद् सदस्यों मुकुन्दलाल बैरिस्टर और नगरपालिका के सभापति श्री किशन लाल अग्रवाल की अध्यक्षता में एक शिष्टमंडल मुख्यमन्त्री श्री सी0बी0गुप्ता से मिलने लखनऊ पहुंचा। 1 अप्रैल, 1969 को एक आमसभा श्री विशनसिंह रावत की अध्यक्षता में झण्डा चौक पर बुलाई गई जिसमें श्री मानसिंह रावत के गिरते स्वास्थ्य को लेकर चिंता जताई गई। श्री अग्रवाल ने कहा कि यदि सरकार को

आबकारी विभाग द्वारा प्रदत्त आय में अधिक रूचि है तो उतनी आय यहां के लोग नशामुक्ति के लिए चन्दे से एकत्र कर सरकारी कोषागार में जमा करा देंगे। यह स्वेच्छया होगा। इसके बाद विधायक श्री चन्द्र मोहन सिंह नेगी, दिलीप सिंह विष्ट, श्रीमती कमला देवरानी और हरिराम चंचल इत्यादि ने मानसिंह रावत से विनती की कि वे अनशन तोड़ दें। उन्होंने एक शपथ पत्र बनाया कि मदिरा की दुकान को खुलने नहीं दिया जाएगा। इस शपथपत्र पर सैकड़ों सभ्रांत लोगों ने हस्ताक्षर किए। फलस्वरूप श्री मानसिंह रावत ने आठ दिनों के बाद 4 अप्रैल, 1969 को अनशन तोड़ दिया तथा लोगों से मर्मस्पर्शी विनती की कि व्यापारियों को प्रेरित करें ताकि वे अपनी अंग्रेजी शराब की दुकानों की अनुज्ञप्ति को वापस करें तथा इसे दोबारा न लें। 8 अप्रैल, 1969 को रूपचन्द्र वर्मा जी के यहाँ एक आकस्मिक सभा हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि यदि सरकार जबरदस्ती दुकानें खुलवाती है तो प्रतिरोध नहीं करेंगे। 9 अप्रैल को मुख्यमंत्री से मिलने गए शिष्टमण्डल ने बताया कि सरकारी नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा दुकानें खुलेंगी। शिष्टमण्डल अपर जिलाधिकारी से मिलने गया जिन्होंने कहा कि दुकानें खुलेंगी तथा किसी को भी दुकानों के सामने बैठने की आज्ञा नहीं होगी। जब अपर जिलाधिकारी से मानसिंह रावत को दुकान के सामने बैठने की इजाजत माँगी गई तो उन्होंने सकारात्मक उत्तर नहीं दिया। 10 अप्रैल, 1969 को नए ठेकेदार ने पुलिस संरक्षण में दुकान को खोला श्री मानसिंह रावत की चारपाई को बरामदे से हटा दिया गया। रावत जी ने पुनः आमरण अनशन की घोषणा की। 1 बजे क्षेत्राधिकारी ने कुमारी राधा भट्ट और कुमारी दीक्षा विष्ट को न सिर्फ धकेला बल्कि गालियां भी दीं। मानसिंह रावत, रूपचन्द्र वर्मा, रेवाधर, चिरन्जीलाल, धर्मसिंह, कुमारी राधाभट्ट और कुमारी दीक्षा बिष्ट को गिरफ्तार कर लिया

गया। शराब की दुकान के सामने एक सभा बुलाई गई। पूरे बाजार बन्द हो गए। लोगों का गुस्सा सातवें आसमान पर था किन्तु नेतृत्व ने उन्हें शान्ति बनाए रखने को कहा। जंगल की आग की तरह गिरफ्तारी की खबर फैल गई और अधिक से अधिक लोग पटेल मार्ग और झण्डा चौक के बीच एकत्रित होने लगे। यातायात को भट्टी मार्ग की ओर मोड़ा गया जिससे लोग दिग्भ्रमित हो गए। 11 अप्रैल को सुबह 10 बजे एक विशाल जुलूस निकालने का निश्चय किया गया। 12 अप्रैल, 1969 को भी पूर्ण बन्दी रही। दोपहर में विद्यार्थियों के जुलूस ने पूरे कस्बे में नशामुक्ति के नारे लगाते हुए भ्रमण किया। रात में संयुक्त समाजवादी पार्टी के नेता जी हरिराम चंचल को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। 13 अप्रैल को पूरे नगर में धारा 144 लगा दी गई। आन्दोलनकारियों ने 5–7 व्यक्तियों के जुलूस को नियमित रूप से निकालने का फैसला किया। प्रथम चरण में श्रीमती शशि प्रभा रावत, श्रीमती बसन्ती देवी पाण्डेय, श्रीमती बदामी देवी वर्मा, श्रीमती कलावती अग्रवाल, श्रीमती भवनाकला, श्री बद्रदत्त और श्री शंकरदत्त महात्मा ने धारा 144 तोड़कर स्वयं को पुलिस हिरासत में दे दिया। पौड़ी में भी मानसिंह रावत की गिरफ्तारी के विरोध में पूर्ण बन्दी रही। गढ़वाल जिला गांधी समिति के सदस्यों ने सरकारी रवैयों के विरोध में त्यागपत्र दे दिया। 13 अप्रैल को माई इचागिरी (टिंचरी माई) ने सत्याग्रह किया और उन्हें एक कार से हिरासत में लेकर थाने भेज दिया गया। 14 अप्रैल को श्री भगतराम वैध, श्री बलवन्त सिंह, श्रीमती अनोखी देवी, श्रीमती तारा मिश्रा और श्रीमती पंचों देवी ने धारा 144 तोड़कर खुद को गिरफ्तार कराया। रात में इन लोगों को लैंसडाउन ले जाया गया तथा वहां से हथकड़ियां पहनाकर पौड़ी लाया गया। नशाबन्दी समिति ने दीर्घकालीन कार्यक्रम बना लिया था किन्तु मुख्यमंत्री सी0 बी0 गुप्ता के श्रीनगर आगमन और

सुशीला नायर के कोटद्वार आने से सरकार के सामने अजीबोगरीब स्थिति उत्पन्न हो गई। जनपद के अधिकारियों से वार्ता करने के पश्चात मुख्यमंत्री जी ने सभी गिरफ्तार आन्दोलकारियों को छोड़ने तथा धारा 144 हटाने का आदेश दिया। 15 अप्रैल की रात सभी गिरफ्तार लोगों को छोड़ दिया गया तथा धारा 144 हटा ली गई। 16 अप्रैल को सत्याग्रहियों का कोटद्वार आने पर अभूतपूर्व स्वागत किया गया। 16 अप्रैल, 1969 को डा0 सुशीला नायर ने नशामुक्ति के लिए अनशन शुरू किया। 23 अप्रैल को डा0 सुशीला नायर के भाई प्यारेलाल, जो कि गांधी जी के भूतपूर्व व्यक्तिगत सचिव थे, ने मुख्यमंत्री से मुलाकात की। इन संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप मुख्यमंत्री जी ने शराब की दुकानों को बन्द करवाने का निर्णय लिया। डा0 सुशीला नायर ने अनशन तोड़ा तथा मुख्यमंत्री जी को गढ़वाल जिले की तीनों दुकानों को बन्द करवाने का निर्णय लेने के लिए धन्यवाद दिया। इसके बाद भी 14 मई, 1969 तक महिलाएं एकत्रित होती रहीं, भजन गाती रहीं तथा 14 मई, 1969 को मुख्यमंत्री के आदेशोपरान्त यह आन्दोलन सफल हुआ तथा कोटद्वार, लैन्सडाउन और सतपुली की शराब की दुकानों को अनिश्चित अवधि के लिए बन्द कर दिया गया। आन्दोलन की सफलता के बाद डा0 सुशीला नायर ने लैन्सडाउन, सतपुली और कोटद्वार का 21 तथा 22 जून को दौरा किया जहाँ उनका सभी स्थानों पर भव्य स्वागत किया गया। उन्होंने इसे जनता की जीत बताया तथा कहा कि शराब एक बुराई है और इस बुराई पर प्रतिबन्ध लगना जरूरी था। उन्होंने पूरे देश में इस बुराई को दूर करने के लिए भविष्य में भी एक सत्याग्रह करने का निश्चय किया। उन्होंने आन्दोलन के गांधीवादी तथा अहिंसक तरीके पर खुशी जाहिर की।

प्रदेश के पर्वतीय इलाकों में शराब का कारोबार धड़ल्ले से जारी था। पुलिस और आबकारी विभाग की सरपरस्ती में

गाँव–गाँव में अवैध शराब की भट्ठिया धधकतीं थीं। सब जानते हैं, बिना राजनीतिक संरक्षण के इतने बड़े पैमाने पर कोई अवैध काम नहीं किया जा सकता। ऐसे में इस कारोबार को अघोषित और अवैध कुटीर उद्योग का दर्जा भी मिल गया तो इसमें हैरानी कैसी? ऐसी विपरीत परिस्थितियों में यदि महिलाएँ नशामुक्ति का संकल्प लेकर शराब कारोबारियों के खिलाफ मोर्चा खोल दें तो इसे उनके साहस की मिसाल माना जाना चाहिए। ये महिलाएं उत्तराखण्ड की थीं जिन्होंने नशामुक्ति को लेकर जोरदार आन्दोलन छेड़ा। महिलाओं का समाज के दबंग लोगों के विरुद्ध खड़े हो जाना साधारण बात नहीं। उन्हें बहुत मोर्चों पर लड़ना पड़ा पर वे डटी रहीं।

''संकल्प करने पर सारे विकल्प
स्वयं समाप्त हो जाते हैं''

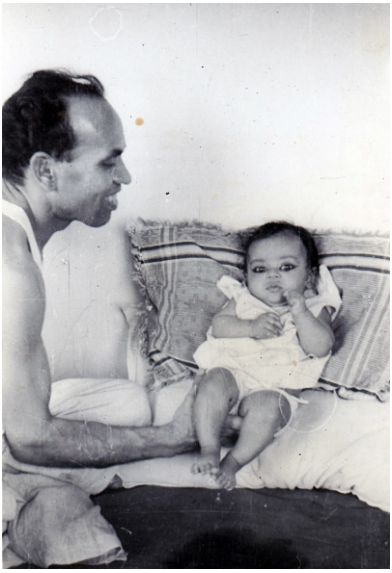

पुत्र अमित (1968)

झारखण्ड की पहाड़िया जनजाति

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

भारत की असख्य जनजातियों में से पहाड़िया भी एक जनजाति है। यह जाति झारखंड के संथाल परगना, पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान, आसनसोल, बीरभूम एवं मुर्शिदाबाद जिलों में पायी जाती है तथा यदा कदा असम के चाय बागानों में देखी जा सकती है। असम एवं बंगाल में पायी जाने वाली पहाड़िया जाति के लोग झारखंड से ही जाकर वहाँ बस गये हैं।

इतिहासकारों एवं अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा अब तक की खोज के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि पहाड़िया जाति संथाल परगना जिले की प्राचीनतम जाति है। यह जाति ईसा पूर्व 302 ई0 से वर्तमान में संथाल परगना क्षेत्र में बसती आ रही है। सेल्युकस, निकेटियर, मेगास्थानिज, और फाह्यान के भारत वर्णन में इस जाति का उल्लेख मिलना है। बौद्ध काल में यह जाति काफी उन्नत थी। इनके अपने राजा, जमींदार, सामंत और सरदार थे, जो समय–समय पर शासन चलाते थे। जब यह जाति एक राजशाही के रूप में थी, उस समय कुसुमपुर (पाटलीपुत्र) में चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन हुआ करता था।

पहाड़िया जाति अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये हर विदेशी तत्वों यथा ग्रीक, हूण, शक, कुषाण, मुगल एवं तुर्कों से बराबर टकराती रही। इनकी जबरदस्त टकराहट मुगलों एवं अफगानों से भी हुई। तत्कालीन राजपूत राजाओं से इन्हें सहायता नहीं मिली अन्यथा इनकी स्थिति इतनी दयनीय नहीं होती। तत्कालीन राजाओं का एकमात्र नियम था कि वे बराबर आपस में टकराते रहते थे और युद्ध में कमजोर राजा मारे जाते थे। शक्तिशाली राजा कमजोर राजा के परिवार को राज्य से

बेदखल कर लेते थे, और उसकी रानियों एवं राजकुमारियों को अपने हरम में डाल देते थे। युद्ध में हारे हुए राजाओं की रानियाँ या तो विजेता राजा के स्वामित्व को स्वीकार कर लेती थीं, या आत्महत्या कर लेती थीं। इस प्रकार की आत्महत्या सामूहिक आत्मदाह के रूप में भी होती थी।

पहाड़ियों का पाकुड़, महेशपुर, अम्बरपुर, सुल्तानाबाद, सकरूगढ़, लकड़ागढ़, राजमहल, बारकोप, उधवानाला, तेलियागढ़ी, गिद्धौर, हंडपा, सनकारा आदि स्थानों में राज्य था। राजाओं के आपसी युद्ध में, एक–एक करके ये राज्य विभिन्न जाति के राजाओं के हाथों में चले गये, और इन विजेता राजाओं ने इतिहास के पन्नों से पहाड़ियाओं का नाम सदा के लिये हटा दिया।

मुस्लिम एवं राजपूत राजाओं ने पहाड़ियाओं के राज्य को बुरी तरह कुचल दिया था किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं, जब पहाड़िया जनजाति की रानियों ने दमनकारी शत्रुओं को नाकों चने चबवाये। पाकुड़ की महारानी, हेमा सुन्दरी, और महेशपुर की रानी, खेमा सुन्दरी, ने अन्तिम दम तक अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रयत्न किया किन्तु इन दोनों राजघरानों में राजपूतों का आधिपत्य हो गया। हंडवा खेतोंरियों के आधिपत्य में जा चुका था। खेतौरी जाति के लोग राजा मान सिंह के द्वारा बसाये गये थे। राजा मान सिंह जब बंगाल विजय के लिये निकले तो अपनी सेनावाहिनी के खेतौरी सरदारों को विजयी क्षेत्र का शासन भार सौंपकर दिल्ली वापस चले गये। इन्हीं के बंशज आज के खेतौरी जाति के लोग हैं। यह भी सत्य है कि आवागमन के साधनों की कमी ओर घने जंगलो से आच्छादित होने के कारण सही मायने में किसी राजा का सम्पूर्ण आधिपत्य पहाड़ियाओं पर नहीं हो सका था। अफगान बादशाह शेरशाह सूरी के आक्रमण के कारण रोहतासगढ़ क्षेत्र से डरांव एवं ठेरों जाति के लोग तितर बितर हुऐ। बंगाल में गौड़ के राजा,

लक्ष्मण सेन, की पराजय के बाद उस जाति से भी कुछ लोग तितर बितर हुए। उसी के समकाल में मुईया लोग वर्तमान संथाल परगना क्षेत्र में आकर बसने लगे थे। मध्य युग में भौगोलिक खोजों के कारण अनेक देशों का पता चला तथा सामुद्रिक मार्ग की जानकारी हुई, जिसके चलते विदेशी जातियाँ वाणिज्य के लिये भारत आने लगीं। पुर्तगाली, डच और फ्रान्सीसी एक–एक कर आये, और अपने केन्द्र बनाकर व्यापार करने लगे। सबसे अन्त में अंग्रेज, सन 1600 ई0 में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत, भारत के साथ अपना व्यापार करने के इरादे से आये। अंग्रेज अन्य सभी यूरोपीय जातियों की अपेक्षा ज्यादा धूर्त एवं चालाक थे। भारत के राजाओं के आपसी मतभेद का लाभ उठाकर शासन हस्तगत करने की महत्वाकांक्षा उनमें जाग उठी और इस कार्य में वे सफल भी हुए। सन् 1765 ई0 में बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी मुगल बादशाहों से खरीद कर, शर्त के अनुसार, इस क्षेत्र की मालगुजारी अंग्रेज अधिकारी ही उठाकर दिल्ली दरबार में जमा करने लगे। दीवानी का अधिकार पाकर अंग्रेज आम जनता पर जुल्म करने लगे। अंग्रेजों के चापलूस और दलाल लोग उन्हें इस अत्याचार में मदद दे रहे थें और आम जनता काफी परेशान थी।

अंग्रेजों के इस जुल्म और अत्याचार के विरुद्ध सरदार रमना आहड़ी ने सन् 1766ई0 में विद्रोह किया । सरदार रमना आहड़ी धसनियां के जंगलों में भातुड़ी नामक गांव का सरगना था । उसने जून 1766 ई0 में भालंचा पहाड़ की तराई में अपने सैनिकों के साथ अंग्रेजों का मुकाबला किया। भालंचा पहाड़ वर्तमान जामताड़ा सबडिवीजन के नाला प्रखण्ड में है। इस युद्ध में सरदार बुरी तरह हार गया। वह घायल अवस्था में राजनगर की दिशा में भागा लेकिन मुहम्मद बाजार के पास अंग्रेज चापलूसों द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। उसके

सेनापति कारिया पुजहर अपने सैनिकों के साथ जंगलों में जा छिपे।

इस युद्ध के बाद भी पहाड़िया जाति कारिया पुजहर के नेतृत्व में संगठित हुई। पहाड़ियाओं के बीच चेतना लाने का काम सतत् चलता रहा जिसके परिणाम स्वरूप सन् 1772 ई0 में पहाड़िया और अंग्रेजों के बीच उधवानाला (राजमहल) में दूसरा युद्ध हुआ। इस युद्ध का नेतृत्व दो महान वीरों ने किया। ये बहादुर योद्धा सरदार चेंगरू सांवरिया और पायगेडोम्बा पहाड़िया थे। इस युद्ध में अंग्रेज बुरी तरह हारे। अंग्रेजों के चापलूस राजाओं और जमीदारों को पहाड़ियाओं ने नाकों चने चबवा दिये। युद्ध के मैदान से अंगेज भाग खड़े हुए। वे काफी घबड़ाये हुए थे। इस युद्ध के बाद मुर्शिदाबाद से भागलपुर की ओर जाते हुए पहाड़ियाओं ने सरकारी डाक एवं माल लूटना शुरू कर दिया। जगह–जगह लूटपाट और छापामार हमला विधिवत् चलाया जाने लगा। इधर अंग्रेज और उनके चापलूस शक्ति संचय में लगे थे और अपने सहयोगियों की तलाश कर रहे थे। सन 1971–72 ई0 के आस पास बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण बिहार का क्षेत्र जब अकाल प्रभावित हुआ तो संथाल जाति के लोग रोजी की तलाश में इस क्षेत्र से संथाल परगना की ओर आने लगे। पहाड़ियाओं ने सथालों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके दिल और दिमाग में तो सिर्फ अंग्रेज और उनके सहयोगी विदेशी तत्व थे। सन 1778 ई0 में पहाड़िया सरदार और जमींदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध योजनाबद्ध सामूहिक संघर्ष किया। इस संघर्ष में अनेक स्थानों पर अंग्रेजों को मुँह की खानी पड़ी। जब अंग्रेजों का गढ़ हिलने लगा तो धूर्त अंग्रेजों ने संथालों से सम्पर्क किया। संथाल जाति अंगेजों के सम्पर्क में आई। अंगेजों ने उन्हें राहत दी, नौकरी दी और साथ ही ईसाई धर्म ग्रहण करने की सलाह दी। संथालों ने अंग्रेजों की सलाह मानकर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। ईसाई

धर्म ग्रहण कर लिया। ईसाई धर्म ग्रहण करने से संथालों को बहुत लाभ हुआ। वे नयी सभ्यता में आये। अंग्रेजों ने उन्हें शिक्षित किया और प्रधान और परगनैत जैसे शासकीय पद भी दिये। मांझवा भेली (आमड़ा पाड़ा से बांगी तक का क्षेत्र) में 1810 ई0 तक 426 गांव संथालों के बसवाये और उन्हें सभी तरह की सुविधाएं दी। फिर सन् 1835 ई0 तक अंग्रेजों ने अपने चाटुकारों की सहायता से पहाड़ियाओं को खदेड़ कर जंगलों में घुसने पर मजबूर कर दिया। सन् 1778 ई0 के पहाड़िया सरदारों के सामूहिक विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने सन् 1790 ई0 तक भारी मात्रा में संथालों का आयात किया। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भारत सरकार ने पूर्वांचल में जंगल काटने, रास्ता बनाने, फौज को सहायता पहुँचाने आदि के लिये, संथाल परगना और छोटानागपुर से लोगों को ले जाकर काम कराया। सन 1778 ई0 से सन् 1835 ई0 तक का समय जंगल तराई में अग्निमय समय रहा । इस अग्निमय काल खण्ड में पहाड़ियाओं की संख्या बहुत कुछ घट चुकी थी। जो बची थी, वह पहाड़ों की कन्दराओं में जा छिपी थी। अंग्रेजों ने संथाल परगना जिले को प्रशासनिक दृष्टि से परगनों में बांट दिया था। इन परगनों के सरगना विशेषतः ईसाई बन चुके संथाल या उनके चापलूस ही हुआ करते थे। फिर 30 जून 1855 को संथाल विद्रोह हुआ। इस विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने अपने पालित पुत्र संथालों के नाम से अलग जिला बना दिया जिसे संथाल परगना के नाम से जाना गया। सन् 1857 में महान सिपाही विद्रोह हुआ। सन् 1885 ई0 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ और महात्मा गांधी एवं ठक्कर बापा, महामना मदन मोहन मालवीय, तिलक आदि के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ने लगा था तो वहीं दूसरी ओर जंगल तराई के गवर्नर कैप्टेन ब्रुक, आगस्टस क्लीवलैण्ड, विलियम बुड, अपने कार्यकाल में पहाड़ियाओं को अपने

नियंत्रण में लाने का पुरजोर प्रयास कर रहे थे। आगस्टस क्लीवलैण्ड ने पहाड़िया प्रशासन की व्यवस्था की, पहाड़िया गावों में नाइब, सरदार और माँझी के पद सृजित किये। उन्हें, 5, 10 और 2 रू0 के माहवार दिये जाने की व्यवस्था हुई और यह आदेश दिया गया कि वे गाँवों में शान्ति बनाये रखें। सरदार हर माह मजिस्ट्रेट के कोर्ट में सूचना देने लगे कि उनका क्षेत्र शान्त है।

पहाड़िया जाति तीन उपजातियों में विभाजित है ––– माल पहाड़िया, कुमारभाग पहाड़िया एवं सांवरिया पहाड़िया। देश की आजादी के आन्दोलन में पहाड़ियाओं का स्थान अत्यन्त सराहनीय रहा है पर खेद है कि इनमें शिक्षा का अभाव हमेशा रहा जिसके कारण इन्हें राष्ट्रीय पटल पर पहचान नहीं मिल सकी।

कुछ प्रमुख पहाड़िया क्रान्तिकारी –

1. सरदार श्री रमना आहड़ी पुत्र श्री केन्दवा आहड़ी, ग्राम घसनियां पहाड़ (वर्तमान कुण्डहित क्षेत्र) जिसने अंग्रेजों के साथ सन् 1766 ई0 में युद्ध किया था।
2. श्री कारिया पुजहर पुत्र श्री रंगिया पुजहर, ग्राम आमगाछी पहाड़। रमना आहड़ी के सेनापति एवं सैन्य संचालक। रमना आहड़ी की हत्या के बाद भूमिगत संगठन किया, जिसके फलस्वरूप सन् 1772 ई0 में सरदार चेंगरू सांवरिया और पाइगेडोम्बा पहाड़िया के नेतृत्व में उधवानाला में युद्ध हुआ।
3. सरदार चेंगरू सांवरिया, गांम तारगाछी पहाड़, कुशल योद्धा और तीरन्दाज, उधवानाला के युद्ध का बहादुर योद्धा।
4. पायगेडोम्बा पहाड़िया, जन्म स्थान भातभंगा पहाड़, 1772 ई0 के युद्ध का बहादुर योद्धा, चेंगरू सांवरिया का साथी।
5. सरदार जबरा पहाड़िया (श्री जबरासरदार) पुत्र श्री ढेबो

पहाड़िया, जन्म स्थान सिंगारसी पहाड़, अनन्य वीर योद्धा, डामरू, रामगढ़, बरगो, सुसनी, क्षेत्र से अंग्रेजों को मार भगाया। अंग्रेजों के दलाल और चापलूस रघु भगत की सरदार ने हत्या की थी।

6. गुरु धरमा पहाड़िया, जन्म गढ़सिंगला पहाड़, प्रख्यात पहाड़िया धर्मगुरु। इसने ईसाई धर्म और पादरियों का बहिष्कार किया था।
7. नीमचांद माँझी, गुरु धरमा पहाड़िया का शिष्य और धर्मगुरु जिसने एकेश्वरवाद का विचार पहाड़ियाओं के बीच चलाया था।
8. गेढवों कुंवर, जन्म सन् 1742 ई0, सन् 1772 ई0 के सामूहिक विद्रोह का अनन्य सेनानी।
9. श्री डबुआ देहरी, पुत्र श्री हेडिया देहरी, जन्म खाटगामा पहाड़ (गोपीकांदर) संथाल परगना जिले में पहाड़ियाओं के लिये विशेष कानून बनवाने का श्रेय इन्हीं को है। इन्होंने ईसाई धर्म एवं पादरियों का बहिष्कार किया। सन् 1832 के आस–पास इनकी हत्या कर दी गयी।
10. श्री गंगाडोहरा मांझी पुत्र श्री बोम्बरो डोहरा माँझी, जन्म चेंगड़ों गदवा पहाड़ (महाराजपुर), जन्म 1817 ई के लगभग। प्रख्यात तीरंदाज, पहाड़िया नेता, मालेर आन्दोलन के प्रणेता। संथाल परगना के गोड़डा, पाकुड़ और राजमहल क्षेत्र को पहाड़ियाओं के लिए कुरांव क्षेत्र घोषित कराने का श्रेय इसी बहादुर नेता को है।
11. श्री कचवा देहरी, पुत्र श्री ढेंगा देहरी, जन्म बड़दाहा पहाड़ (आमड़ा पाड़ा) लगभग 1823 ई0 के आस पास। कोहिस्तान क्षेत्र का प्रख्यात नेता, जिसने लॉर्ड डलहौजी द्वारा जमींदारी उन्मूलन और देशी रियासतों को मिलाने के विरुद्ध संग्राम किया। महेशपुर के पास बीरगिरी में मुसलमानों द्वारा इनकी हत्या कर दी गई।

12. श्री गौर सिंह पहाड़िया, जन्म सन् 1905 ई0, ग्राम काली पाथर। आजाद हिन्द फौज का सेनानी, जिसने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज में रहकर जर्मनी, जापान, वर्मा और दक्षिण पूर्व एशिया की यात्रा की। इनकी मृत्यु सन् 1951 के लगभग हो गई। नेताजी के अन्तर्ध्यान के बाद उसने पहाड़िया गांव में इस ढंग का युद्ध शुरू किया।
13. नाइब सूरजा पहाड़िया, जन्म सन् 1889 ई0 के आस पास। तेलिया गढ़ी का नाइब। जन्म तेलियागढ़ी पहाड़ (करम टोला) तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने इसे नाइब सरदार नियुक्त किया था। उसकी जागीर भी थी। बाद में मुसलमानों और राजपूतों ने बेदखल कर दिया। यह क्षेत्र आज बड़ी एवं छोटी कोदर के नाम से जाना जाता है।
14. सरदार जामा कुमार पहाड़िया, जन्म स्थान डांगा पाड़ा (सुन्दर पहाड़ी)। सन् 1942 का प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी, जिसने पहाड़ियाओं की फौज के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया।
15. श्री अर्जुन गृही, जन्म सन् 1912 के आस पास। ग्राम – कुला पाथर (रामगढ़)। बुनियादी युगवासी किसान सभा (सीपीआई) के संस्थापक महामंत्री। सन् 1956 ई0 के जुलाई महीने में महाजनों द्वारा इनकी निर्मम हत्या कर दी गई।

पहाड़िया जाति के लोग वीर, बलवान, लड़ाकू और बहादुर तो थे, लेकिन उनमें शिक्षा की कमी हमेशा रही। अशिक्षित रहने का फल उन्हें यही मिला कि तत्कालीन समाज और शासन व्यवस्था ने उनका नामों निशान इतिहास के पन्नों से मिटा दिया।

आज के समय में जिस प्रकार पहाड़िया जनजाति के सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं लिखता, ठीक उसी प्रकार तत्कालीन लेखकों

ने पहाड़िया जनजाति के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। अगर पहाड़िया स्वयं शिक्षित रहते तो वे अपने सम्बन्ध में कुछ न कुछ जरूर लिखते। संथाल परगना को पहले कोहिस्तान के नाम से जाना जाता था, बाद में दामिन आई–कोह और 30 जून 1855 के संथाल विद्रोह के बाद इसे संथाल परगना कहा जाने लगा। यह नाम अंग्रेजों का दिया हुआ नाम है।

साभार/सौजन्य –

1. श्री शिवलाल माँझी
2. श्री गौर सिंह पहाड़िया (आजाद हिन्द फौज)
3. बड़ा मंगरू पहाड़िया
4. छोटा मंगरू पहाड़िया
5. इन्द्रदेव माल पहाड़िया

पत्नी शीला जुयाल के साथ

संस्कृति की राजनीति

सेवापुरी कार्यशाला, 26 मार्च से 2 अप्रैल, 1987

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी

समाज विज्ञानों में संस्कृति प्रधानतया नृशास्त्र (ऐन्थ्रोपोलॉजी) का विषय क्षेत्र रहा है जिसे एक विशेष संदर्भ में 'साम्राज्यवाद का शिशु' भी कहा गया है। जिस परिप्रेक्ष्य में हम इस विषय पर चर्चा करना चाहते हैं उसके लिए नृशास्त्र की परम्परागत सीमाओं को लांघना होगा। हाल ही के वर्षों में इतालवी मार्क्सवादी विचारक, अंटोनियो ग्रामसी के वैचारिक हेजेमनी (प्रधानता या एकाधिपत्य) की अवधारणा के जरिये से (साथ ही में हवेट मारकूस के भी) कुछेक नृशास्त्रियों ने संस्कृति की इस अवधारणा को प्रश्नांकित किया है। इस नजरिये से कुछ महत्वपूर्ण विश्लेषण 1960 के दशक के युवा विद्रोह को केन्द्र में रखकर किए हुए हैं। यह याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि इस युवा आन्दोलन के सन्दर्भ में प्रति–संस्कृति (काउण्टर कल्चर) की अवधारणा बहुत प्रचलित हुई। यह इस आन्दोलन का उद्देश्य भी था और लड़ने का हथियार भी।

एक अहम सवाल यह है कि 1960, 70 के दशकों में उमड़ा युवा विद्रोह जिसका उद्देश्य ही मौजूदा तौर में हावी प्रभावी संस्कृति से इनकार करके एक प्रति–संस्कृति का निर्माण करना था, आखिर कहाँ समा गया और क्यों? विकसित औधोगिक समय में वे कौन सी प्रक्रियायें हैं जो अनेक स्तर पर अनेक प्रकार के विरोध और प्रतिकार को अपनी ही विचारधारा के जाल में समेट लेती हैं, या सीख लेती हैं, ब्लॉटिंग पेपर की तरह?

ग्रामसी की विचारधारा में प्रधान्यता की अवधारणा जो कि

दरअसल लेनिन के 'राज्य के सिद्धान्त' से सह–सम्बन्धित है, राजनैतिक समाज (पॉलिटिकल सोसायटी) और नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) में विभेद से शुरू होती है। राजनैतिक समाज का मतलब राज्य की दमनकारी भुजा से है और नागरिक समाज का संस्कृति के गैर दमनकारी या गैर राजनैतिक तत्वों से। यहां संस्कृति की परिभाषा बहुत व्यापक है, विशेषकर मार्क्स के तथाकथित आर्थिक निर्धारणवाद के सन्दर्भ में। इसमें हमारी संस्कृति के वे सभी स्वरूप शामिल हैं जो हमें अपने आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक हित के विपरीत भी, हमारे ऊपर हावी आधिपत्यवादी हित के साथ बह जाने अथवा अनन्यता हासिल करने के लिए उकसाते हैं या प्रेरित करते हैं। यह क्रिया वास्तव में 'परसुएड' करने यानि समझाने– बुझाने या सहमत कराने, यानि गैर जोर–जबरदस्ती या बल प्रयोग के द्वारा, बाध्य करने की है। इसमें अनेकों औजार हैं ––– शिक्षण संस्थायें, धार्मिक संगठन, अन्य प्रकार के ऐच्छिक संगठन, विभिन्न प्रकार के बौद्धिक एवं कलात्मक स्वरूप और विज्ञापन तथा जन सम्पर्क उद्योग, जो विभिन्न प्रकार की रुचियों और मूल्यों का निर्माण करते हैं। ग्रामसी की परिभाषा में ये सभी संस्थाएं नागरिक समाज का अंग हैं।

सामान्यतया मौजूदा दौर के प्रजातांत्रिक समाजों में राज्य की दमनकारी भुजा, बाह्य तौर पर हरकत में नहीं आती है, कम से कम राज्य स्तर पर खतरे की घड़ी आने तक। इस संदर्भ में हर्बट का एक कथन है जिसे यहां उद्घृत किया जा सकता है–––

"प्रजातंत्र आधिपत्य (प्रधान्यता) स्थापित करने की सबसे कारगर व्यवस्था है – मालिक के स्वतंत्र चुनाव से न मालिक खत्म होता है और न गुलाम। व्यक्ति द्वारा उसके ऊपर लादी गई जरूरतों के सहज–स्फूर्त पुनर्जनन, पुनरुत्पादन से व्यक्ति

की स्वायतता स्थापित नहीं होती, बल्कि यह तो नियंत्रण व्यवस्था की कार्य कुशलता को प्रभावित करता है।"
इसी संदर्भ में वे दूसरे स्थान पर कहते हैं ———
"इन नियंत्रकों की गहराई और प्रभावकारिता के संबंध में, कहा जाता है कि हम माध्यम (मीडिया) की मतारोपण शक्ति को जरूरत से ज्यादा तौलते हैं – पर ऐसी आलोचना करने वाले एक बात भूल जाते हैं कि पूर्व–अनुकूलन (प्रीकण्डीशनिंग) रेडियो, टेलीविजन के व्यापक प्रसारण और इनके ऊपर नियंत्रण के केन्द्रीकरण से प्रारम्भ नहीं होता। लोग इस स्थिति में पहले से ही तैयार पात्र की तरह आते हैं। बुनियादी विभेद तो इस बात में है कि इस प्रक्रिया में वास्तविक और सम्भावित, और पूर्ण आवश्यकता तथा अपूर्ण आवश्यकता में अन्तर धूमिल हो जाता है। इस तरह वर्ग–विभेद में भी समानता का वैचारिक प्रकार्य प्रभावी होता है। यदि मालिक और कर्मचारी एक सी सुविधाओं का उपयोग करते हैं तो इस तरह की आपीकरण या जुड़ाव का मतलब यह नहीं है कि वर्ग–विभेद मिट गए हैं वरन् इसका इतना ही मतलब है कि दबे हुए वर्ग के लोग भी किस हद तक उन जरूरतों और उनकी पूर्ति में शरीक हैं जो कि व्यवस्था अधिष्ठान को बनाये रखने में सहायक होती है।"
आधुनिक औद्योगिक समाजों में मिथक–निर्माण करना भी एक उद्योग है। अपना समाज आधुनिकता की दौड़ में भले ही पीछे हो, राजनीतिक समाज याने राज्य की दमनकारी भुजा के प्रत्यक्ष इस्तेमाल बहुधा हो, पर नागरिक समाज यानि इसकी दूसरी प्रभावी भुजा, सांस्कृतिक भुजा, जो सहमति के नाम पर काम करती है, अपेक्षाकृत ज्यादा तेजी से विकसित हो रही है। हमलोग कहते रहें, इतने लोगों के भुखमरी के कगार पर होते हुये, टी0वी0 को इतनी प्राथमिकता क्यों? पर व्यवस्था अधिष्ठान की दृष्टि में इसका उत्तर स्पष्ट हो अथवा एक भारतीय मिथक हैं 'इक्कीसवीं सदी में प्रवेश' जिसका एक

प्रधान आयाम है हाई टेक सोसाइटी, उच्च तकनीकि समाज की ओर जाना। पर मिथक लोगों के दिमागों पर चढ़ रहा है। यह प्रश्न पूछने के लिए कोई नहीं रोकता कि हम बीसवीं सदी में कैसे आए क्योंकि यहाँ तों हमें लाया नहीं गया था।

प्रभावी संस्कृति प्रति–संस्कृति की उभरती शक्तियों और तत्वों को अपने में आत्मसात कर लेती हैं या उन्हें ध्वंस कर देती हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि आधुनिक समाज में हेजेमनी का होना लाजमी है। इसका यह मतलब भी नहीं है कि विभिन्न वर्ग या समूहों के बुनियादी अन्तर इसमें मिट जाते हैं। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि वैचारिक प्रधानता (हेजेमनी) कैसे प्रभावी होती है। इसको समझे बगैर हम संस्कृति के क्षेत्र में प्रतिकार या विद्रोह में इतनी साश्वत ताकत देखते हैं जितनी कि दरअसल में नहीं है।

पूर्वव्यापी 'युवा विद्रोह' ने सामाजिक प्रति–संस्कृति को अपना उद्देश्य और संघर्ष का मुख्य उपकरण बनाया। यह विद्रोह प्रभावी संस्कृति में सत्ता और अधिकार के विरुद्ध था और इस विद्रोह में शरीक युवाजनों का यह कहना था कि उन्होंने अपनी मूल संस्कृति से स्वायतता हासिल कर ली है और इसे प्रति–संस्कृति, युवा–संस्कृति, वैकल्पिक जीवन शैली, चेतना की संज्ञा दी गई। इस आन्दोलन के मंच पर खुले तौर पर राजनैतिक नव वामपथ और कट्टर मार्क्सवादी, लेनिनवादी तत्वों से लेकर गैर राजनैतिक युवा समूह तक इकट्ठे हुए।

इस आन्दोलन के विश्लेषण में यूरोप और अमेरिका में इसके स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन भी एक मुख्य पहलू रहा है। संक्षेप में, यद्यपि इन छात्र आंदोलनों में एक सामान्य तत्व, अराजकता, की विचारधारा रही है फिर भी उन पर पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका की अलग–अलग राजनैतिक परम्परा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। यूरोप के क्रांतिकारी विचारक वर्ग श्रेणियों, वर्ग चेतना और वर्ग विरोध की दृष्टि से सोचते हैं

और वहाँ साम्यवादी और सामाजिक–प्रजातंत्रवादी दोनों तरह के वामपंथी दल काफी संगठित हैं। इसलिये राजनैतिक स्तर पर यहाँ के छात्र आन्दोलन को दो स्तर पर लड़ना पड़ा। इसके विपरीत अमेरिकी समाज प्रायः गैर राजनैतिक है। वहाँ केवल अपनी प्रणाली और साम्यवाद में भेद करना सिखाया जाता है, कि हमारी व्यवस्था बेहतर है, साम्यवादी व्यवस्था एक बुराई है, गैर अमरीकी है, आदि। अमेरिकी राजनीति संस्कृति में बौद्धिकता पर बहुत कम और करके दिखाने वाले व्यक्ति पर बहुत अधिक जोर दिया गया है। अमेरिकी छात्र आन्दोलन में व्यवहार अधिकांश में प्रतिक्रियाशील था। उसका नारा ही था कि बौद्धिक चिन्तन के लिए हमारे पास समय नहीं है।

इस आन्दोलन के मार्फत अनेक जोरदार अभिव्यक्तियाँ उभरीं जो हमारी राजनैतिक संस्कृति का हिस्सा बन गई हैं। यह कई मायनों में अर्थपूर्ण है और विचारणीय है। उदाहरण के लिए –

– क्रांतिकारी बनने की केवल एक ही वजह है, वह यह कि जीने का सबसे बेहतर तरीका है। त्याग और बलिदान की नैतिकता छोड़ना होगा ।
– लक्ष्य निरर्थक है, रण कौशल और कार्य कलाप ही महत्वपूर्ण हैं।
– अस्त्वित्वात्मक क्रान्ति, क्रियाशीलता ही एकमात्र यथार्थ है।
– हम नये यथार्थ का निमार्ण करते हैं, जब हम अपने स्वप्न–चित्र के अनुरूप रहने लगते हैं।

उल्लास की राजनीति एवं क्रान्तिकारी जीवन शैली में वर्तमान और भविष्य का अन्तर मिट सा गया। प्रति–संस्कृति आन्दोलन की मुख्यधारा में वर्तमान क्रियाओं और दूरगामी लक्ष्य का अन्त भी नहीं है। बहुत कुछ साध्य और साधन का भी नहीं, पारटिसिमेशन (सहभागिता) ही प्रधान मूल्य बन गया।

साथ–साथ विरोध की एक नई भाषा, संगीत और नाम के नये

स्वरूपों का निर्माण हुआ। सहजता या स्वाभाविकता इनका प्रधान लक्षण बना। प्रति–संस्कृति में बुद्धिमत्ता, तत्परता और विचारशीलता नकारात्मक मूल्य साबित होते हैं। बहुत हद तक अमेरिका का गैर–ऐतिहासिक और गैर–बुद्धिवादी मनोवृत्ति का प्रभाव इस नई संस्कृति के आन्दोलन पर भी पड़ा। प्रासंगिकता (रेलेवैंस) नये आदर्शवाक्य की तरह इस्तेमाल हुआ और ऐतिहासिकता का विरोध अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं से किया गया।

प्रति–संस्कृति के आन्दोलनों के विश्लेषणों में दो अन्तर्विरोधों की ओर ध्यान दिलाया गया है ———

1. राजनीति की व्यापक सांस्कृतिक परिभाषा और राजनीति को स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्ति मानने के मध्य।
2. मनोवेग और पूर्व चिन्तन के मध्य। प्रति–संस्कृति की राजनीति मुख्यतः उच्च और मध्यम वर्ग में जन्में युवाओं की देन थी जो कि पूर्ण मौलिक सन्तुष्टि से ऊबकर सुख शान्ति के नये मार्ग पर चलना चाहते थे। इसका एक पहलू यह भी था कि प्रति–संस्कृति की राजनीति को वे ही समझ सकते थे जो अपने सांस्कृतिक विचारों के मौलिकतावादी अनुकूलन का भरपूर अनुभव कर चुके थे।

एक अन्य अन्तर्विरोध प्रति–संस्कृति में दोष–दर्शिता (सिनिसिज्म) और रूमानियत के अनोखे सम्मिश्रण में था (जैसे 'इजी राइडर' में जिसकी मूलकथा में दो व्यक्ति हैं जिनका कोई गंतव्य नहीं है, एक भयावह यात्रा पर निकलते हैं, जिसका अन्त निश्चय ही मौत है)।

प्रति–संस्कृति का आन्दोलन मुख्यतः प्रतिक्रियाशील था। वास्तविक अर्थों में जिन्हें नये मूल्य कहा गया, वे पुराने मूल्यों का प्रतिलोभन (उलटना) या अतिरंजन था। यह एक निर्विवादित तथ्य है कि मौजूदा दौर में प्रति–संस्कृति के निर्माण के लिए युवा विद्रोह एक प्रबल आन्दोलन था और इस

आन्दोलन ने राजनीति की संस्कृति को कई मायनों में प्रमाणित किया है। निःसंदेह सम्पूर्ण सांस्कृतिक आधिपत्य के खिलाफ यह एक ताकतवर मोर्चा था तथापि यह एक बवण्डर की तरह उठा और निकल गया । इसके हवाले से कुछ प्रश्न उठते हैं –

1. कि यह विद्रोह उसी समग्र संस्कृति का एक अंगभूत हिस्सा था, जिसका यह विरोध कर रहा था?
2. कि इस विरोध की सार–वस्तु और स्वरूप को प्रबल संस्कृति ने स्वयं अपने बचाव के लिए उभारा और समाहित कर लिया?
3. कि प्रति–संस्कृति के इस आन्दोलन ने प्रबल संस्कृति के चरित्र को गहराई से समझने का प्रयास नहीं किया या जरूरत ही नहीं समझी और प्रति–संस्कृति की राजनीति की समझ के अभाव में
   अ. यह नितान्त गैर राजनैतिक बन गया।
   ब. अन्ततः इस आन्दोलन से प्रबल संस्कृति के आधिपत्यता के रचनातंत्र को मजबूती हासिल हुई जैसा कि उसके बाद के दशकों की घटनाओं और प्रवृत्तियों से जाहिर है।

एक कार्यक्रम में शिरकत करते हुए

दलित समस्या और गांधी

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

गांधी ने सन् 1933 में कांग्रेस से इसलिये इस्तीफा दिया था कि वे अपना सारा समय हरिजनों के उद्धार के कार्यक्रमों में लगाना चाहते थे। यह वही समय था जब लगभग दस साल से सार्वजनिक रूप से सक्रिय डा0 अम्बेडकर का नेतृत्व भी अपनी परिपक्वता पर पहुंच रहा था। तभी से इन दोनों के बीच के मतभेदों का एक लम्बा सिलसिला शुरू हुआ जो इनके पार्थिव शरीर खत्म हो जाने के बाद भी जारी रहा और आज भी जारी है। लेकिन 1930 के दशक से अब तक तमाम बातें बदल गयी हैं। दलितों की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, उनकी ज्वलन्त समस्याएं बदल गयी हैं। गांधी भी एक लम्बे ग्रहण के बाद फिर से सामाजिक शक्ति के रूप में उभरने की प्रक्रिया में हैं। ऐसी स्थिति में दलित समस्या और गांधी के बीच संबंध पर विचार के दो (एक दूसरे के पूरक) तरीके हैं। एक तरीका समस्या केन्द्रित है और दूसरा हल केन्द्रित।

अस्पृश्यता, मंदिर प्रवेश, पानी का कुआं आदि समस्याएं गांधी और अम्बेडकर के समय ज्वलंत समस्याए थीं। इन सभी पर लम्बे संघर्ष भी हुए। ये सभी समस्याएं आज भी हैं लेकिन वैसी ज्वलंत अवस्था में नहीं जैसी कि वे आज से पचास साल पहले थीं। इन समस्याओं के आंशिक हल से दलितों के खड़े हो पाने के लिए अनुकूल माहौल बना। इस प्रक्रिया में गांधी के योगदान पर संदेह तो नहीं किया जा सकता है तथापि मतभेद का मुख्य मुद्दा राजनीतिक क्षेत्र में उभरा। दलित समस्या की बुनियाद सामाजिक भेद में है तथा इस भेदभाव ने समयान्तर में नये नये रूप भी लिये हैं। इस भेदभाव को कम करने के लिये जहां एक तरफ यह आवश्यक है कि दलित संगठित हों; वहीं

यह भी आवश्यक है कि अन्य जातियों के लोग भेदभाव का बर्ताव न रखने की मनोवृत्ति बनायें। जबकि पहला कार्य दलितों के अपने नेतृत्व ने किया है, दूसरे कार्य में गांधी से बड़ी भूमिका और किसकी हो सकती है?यह तो अंग्रेजों की कृपा थी कि इस देश में सारे सार्वजनिक जीवन पर राजनीति हावी हो गयी और इसी का नतीजा यह था कि राजनीतिक क्षेत्र के मतभेद, जैसे गोलमेज सभा में हरिजनों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न या अलग चुनाव क्षेत्र के प्रश्न, केन्द्रीय महत्व के बन गये। समस्या की पहचान में गांधी और दलित नेतृत्व के बीच कोई बुनियादी फर्क नहीं दीखता है लेकिन हल के रास्ते अवश्य एकदम अलग अलग हैं। दलित नेतृत्व ने आधुनिकीकरण, गणतंत्रवाद और विशेष सुविधा के सिद्धांत में ही सामाजिक भेदभाव समाप्त हो पाने की संभावना देखी। इस सब के बावजूद हिन्दू धर्म में रहकर भेदभाव से बचने का कोई उपाय उन्हें नहीं दिखाई दिया और डा0 अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपना कर औरों को ऐसा करने का आह्वाहन किया। आधुनिकीकरण से नये किस्म के रोजगार के अवसरों, खासकर, सरकारी नौकरियों, में वृद्धि हुई तथा आरक्षण के माध्यम से दलितों का एक हिस्सा अपनी आर्थिक स्थिति में थोड़ा सुधार करने में सफल भी हुआ। लेकिन सामाजिक भेदभाव समाप्त करने का कोई सटीक मार्ग दलित नेतृत्व या और कोई भी न दे सका। उलटे इस प्रक्रिया ने जातियों को निहित स्वार्थ पर आधारित समूहों का रूप दे दिया जिसके चलते सामाजिक भेदभाव का उन क्षेत्रों में भी विस्तार हो गया जहां पहले ऐसा न था। उदाहरण के लिये, पिछड़ी जातियों और हरिजनों के बीच हिंसक घटनाओं की वारदातें 1960 के दशक के मध्य से ही शुरू होती हैं। देश उसी दिशा में आगे बढ़ा है, जिस दिशा में आर्थिक राजनीतिक विकास के जरिये दलित नेतृत्व ने दलितों की समस्या का समाधान देखा। लेकिन वास्तविकता सबके

सामने है। दलित नेतृत्व का स्वयं का हाल यह है कि महाराष्ट्र जैसे प्रदेश में, जहां वे सबसे अधिक संगठित रहे हैं, आज दस साल से उनकी लड़ाई का मुख्य मुद्दा है, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम बदलकर बाबा साहेब अम्बेडकर का नाम दिया जाना।

देश के विकास की इस दिशा के साथ गांधी का झगड़ा रहा है। यह कोई संयोग की बात नहीं है कि जिस स्वतंत्र भारत का संविधान डा0 अम्बेडकर ने लिखा उस स्वतंत्रता के दिन गांधी न तो दिल्ली आये और न उन्होंने देश के नाम कोई संदेश ही दिया। गांधी के हल के दो पहलू हैं; एक सामाजिक भेदभाव के विरोध में जनमत तैयार करना और दूसरा स्वराज पर आधारित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पुनर्संगठन की दिशा में बढ़ना। स्वराज के अन्तर्गत गांधी की सामाजिक, संरचना की परिकल्पना में गांव का केन्द्रीय स्थान है और इसी के साथ दलित नेतृत्व का सबसे अधिक झगड़ा है। उनका ख्याल है कि ग्रामीण व्यवस्था ही उनके उत्पीड़न का आधार है। यह बहस आज सिर के बल खड़ी है क्योंकि जब गांधी की धारणा के गांव की बात होती है तब भी गाँव के समर्थक और विरोधी, दोनों ही आज के गाँव के बारे में बात करने लगते हैं, जिसके बारे में गांधी बात ही नहीं कर रहे होते। तथापि अब इस बहस को अपने पैरों पर खड़ा होने का समय आ गया है। जिसका अर्थ यह है कि गांधी की धारणा के गांव का अर्थ उस न्यूनतम सामाजिक भौगोलिक इकाई से लगाया जाय जो आर्थिक आत्म निर्भरता की कसौटी पर सही उतरती हो। आज इसका समय इसलिये आ गया है क्योंकि औपनिवेशिक काल से चले आ रहे गांव अब टूट और विनष्टता की उस स्थिति में पहुंच गये हैं कि उनके पुनर्निमाण का प्रश्न ही नहीं बच रहा है। दुर्भाग्यवश, आज देश में दलितों से सम्बन्धित समस्या के निवारण हेतु हमारी बहस के तीन बिन्दु हैं – दलित, दलित

नेतृत्व और गांधी। अगर हम सिर्फ बाद के दो बिन्दुओं में उलझ कर रह गये तो कोई रास्ता मिल पान कठिन हो जायेगा। दलितों की वर्तमान अवस्था और समकालीन, नव–गांधीवादी विचार को यदि बहस के दो प्रमुख बिन्दु बनाया जाय, तो प्रगति संभव है।

पौत्र तन्मय गौड़ (काकू) के साथ

अन्नप्राशन (काकू)

काकू एवं बन्नो के साथ

"नई शिक्षा नीति का सामाजिक परिप्रेक्ष्यः"

महाशय माल्थस आज भी प्रासंगिक है?

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी, 1985

हम आज सातवीं योजना की दहलीज पर खडें हैं, ऐसे समय में जहां एक ओर है, द्रुत आधुनिकीकरण की आवश्यकता, जो कि इक्कीसवीं शताब्दी में छलांग लगाने की आकांक्षा में अभिव्यक्त होती है और दूसरी ओर संसाधनों की भारी कमी का आंकलन। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आकांक्षा भी, और संसाधनों का जायजा भी, दोनों ही हमारे वर्तमान शासक वर्ग द्वारा परिभाषित और निर्धारित होते हैं। इसलिए इस बहस को राजनीतिक सम्प्रेषण (पोलिटिकल कम्यूनिकेशन) की युक्ति के रूप में समझना होगा। यह कुछ बातों से स्पष्ट भी हो जाता है, जैसे –

1. बहस तो अभी चल ही रही है पर कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण निर्णय पहले ही लिए जा चुके और लिए जा रहे हैं। शिक्षा को 'मानव संसाधन' में समाहित कर दिया गया। यह सिर्फ मंत्रालयों के पुनर्गठन का सवाल नहीं है। सवाल मानव को संसाधन मानने वाली शिक्षा और उस संसाधन के विकास के लिए लागत मूल्य के हिसाब से मूल्यांकन करने वाली विचारधारा का है, जो एक खास तरह की पूंजीवादी विकृति का द्योतक है।
2. आलोचना का एक और मुख्य बिन्दु रहा है, हर जिले में एक मॉडल स्कूल खोलने का प्रस्ताव। एक से अधिक उच्च स्तरीय घोषणायें हो चुकी हैं कि सरकार इस इरादे पर पक्की है और अमल भी कर रही है। सातवीं योजना में शिक्षा के लिए प्रावधान का लगभग 20 प्रतिशत यानि 5000

करोड़ रूपये में से, 900 करोड़ मॉडल स्कूल खड़े करने में व्यय होंगे।

3. दूसरी अच्छी बात है शिक्षा क्षेत्र की वर्तमान (अवस्था या दुर्व्यवस्था) का सही यानि साहसिक प्रस्तुतीकरण। यदि शिक्षा का अनियमित विस्तार और संसाधनों की सीमितता के हिसाब से ही सारी समस्या को परिभाषित करना था तो 'रोना रोने' के सिवाय और कोई ज्यादा प्रभावी शैली हो भी नहीं सकती थी। आज सभी सन्तुष्ट हैं कि सरकार बेचारी भी क्या करें उसके पास साधन नही हैं। इस मामले में भी साधन जुटाने के बहाने सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्यों में भारी बढ़ोत्तरी कर दी गयी है।

पर अभी भी बहस जारी है वेसे भी इस ऊपर से चलाई जा रही और अधिकांश में प्रायोजित बहस का अधिक अर्थ भी नहीं हो सकता है। प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में निहित असमानता और विसंगतियों से प्रभावित समाज की इकाइयों और वर्गों की इसमें कोई भागीदारी नहीं है। जैसे ग्रामीण समुदाय, हरिजन, आदिवासी, महिलायें तथा अन्य दलित वर्ग और विद्यार्थी जिन्हें पढ़ाया जाना है। यह वहस महज शहरी मध्यम–वर्गीय मंचों तक सीमित है। कुछ पत्रिकाओं में इस तरह के विश्लेषण छपे भी थे कि हमारे युवा प्रधान मंत्री का अभ्युदय विशुद्ध शहरी मध्यम वर्ग को प्रभावित करने की एक प्रभावी युक्ति (टैकटिक्स) हो सकती है। यह बात इससे भी स्पष्ट है कि आखिर सरकार ने नई वस्त्र नीति के बारे में, जो कि वर्तमान में देश के सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों को प्रभावित करती है, बहस चलाना जरूरी क्यों नहीं समझा?यहां तक जब इस क्षेत्र की प्रतिनिधि संस्थाओं ने नई वस्त्र नीति से सम्बन्धित मुद्दों पर आवाज उठाई तो उनसे वार्ता करना भी जरूरी नहीं समझा। यही बात नई आर्थिक नीति के बारे में भी लागू होती है। इसलिए यह बहुत अर्थपूर्ण है कि शिक्षा नीति

को ही बहस का प्रसंग बनाया गया है।

नीति निर्धारण का विस्तृत सन्दर्भ –

शिक्षा मुख्यतः मध्यम वर्ग का व्यवसाय है भी। विगत काल में उपनिवेशी अफ्रीकी एशियाई देशों में शिक्षा पद्धति का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने (जैसे थियोडर हॉन तथा अन्य, 1972) नीति निर्धारण की प्रक्रिया में कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ पाई हैं। पहले चरण में औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति की उन खामियों को दूर करने की मांग, जो कि उपनिवेश के विकास के अवसरों को अवरुद्ध करती है – तब उपनिवेशकर्ताओं और उपनिवेशी समाज के लोगों के लिए समान शिक्षा की मांग। हर मांग का कमोबेश पूरा होना और शिक्षा की उपनिवेशीय शिक्षा व्यवस्था का सामाजिक केन्द्र (मेट्रोपोलिस) से संबद्ध हो जाना। फिर विशेषकर स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन की प्रक्रिया में तथाकथित समाज शिक्षा व्यवस्था की आलोचना (कि ऐसी शिक्षा का उपनिवेशीय देश की आवश्यकताओं से कोई सरोकार नहीं हैं, साम्राज्यवादी देश के इतिहास, भूगोल, भाषा, साहित्य इत्यादि के विषय में ज्यादा पढ़ाया जाता है, इत्यादि) और देशिक संस्कृति, सामाजिक मूल्यों को पढ़ाये जाने और शिक्षा के माध्यम को बदलने की मांग। इस दिशा में कुछ हद तक जाने के बाद शिक्षा के सामान्य स्तर में गिरावट की बात और अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के उद्देश्य से व्यावहारिकतावाद की कसौटी पर शिक्षा में सुधार करने की नीति की अभिव्यंजना।

शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन की बात तो हेाती है पर वह इस घेरे से बाहर नहीं निकल पाती क्योंकि शिक्षा–नीति का सारा व्यवसाय एक ऐसे नेतृत्व के हाथ में होता है जो कि उसी तथाकथित आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की उपज भी है। शायद अफ्रीका के किसी नये राष्ट्र जैसे कि तंजानिया में, जहाँ कि उपनिवेशीय व्यवस्था में विकसित मध्यम वर्ग की पकड़ ज्यादा मजबूत नहीं थी, शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन संभव हुए हों,

परन्तु भारत में गांधी जी के स्वदेशी शिक्षा के सबल कार्यक्रम के बावजूद यह संभव नहीं हो पाया। बुनियादी शिक्षा के स्तर पर गांधी जी का जो थोड़ा–बहुत असर था वह भी कुछ वर्षों में मिट गया।

'स्वतन्त्रता पीढ़ी' और उसके बाद के शासक नेतृत्व की एक जानी पहचानी दलील रही है कि आखिरकार उपनिवेशी शिक्षा पद्धति में कई खूबियां भी हैं, सभी कुछ खराब तो नहीं है। आगे अब दुनियां एक बन रही है और इसके लिए आधुनिक शिक्षा अपरिहार्य है। इस वर्ग की वैधता को औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति को जारी रखने के मुद्दे पर चुनौती देने के प्रयास तो हुए हैं पर शिक्षा में परिवर्तन का मुद्दा कभी सबल राजनैतिक मुद्दा नहीं बन पाया। इस बहस में भी वही हो रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता है कि सत्ताधारी और सत्ता के लिए उनकी प्रतिस्पर्धा करने वाले राजनीतिक नेतृत्व का सामाजिक चरित्र बहुत भिन्न था और विरोध पक्ष के पास शिक्षा का कोई बुनियादी रूप में भिन्न नीति परिपेक्ष्य था या है, पर शायद 1985 के सत्ताधारी नेतृत्व के सामने यह चुनौती और भी कमजोर थी। इसीलिए वह व्यवहारिकता के नाम पर शिक्षा में अनेक प्रतिभागी परिवर्तन तक करने का राजनीतिक साहस कर सकता है। यह इससे भी स्पष्ट हो जाता है विशेषतः उपनिवेशी देशों में मध्यम वर्ग के अपने हित के कुछ मुद्दे और उनसे जुड़े अन्तर्विरोध शिक्षा क्षेत्र में एक या दूसरे रूप में हमेशा मौजूद रहे हैं जैसे ———— 1 – शिक्षा का माध्यम (भाषा) क्या हो? 2 – शिक्षा को 'आधुनिक' यानि साम्राजिक देशों से जोड़ना क्यों जरूरी है? 3 – निजी शिक्षण व्यवस्था, पब्लिक स्कूल (जो पब्लिक के लिए नहीं हैं) या मिशनरी स्कूल क्यों महत्वपूर्ण है?4– विशिष्ट वर्ग के लिए विशिष्ट शिक्षा के अवसरों का विकास से क्या सम्बन्ध है? संभ्रान्त वर्ग और जनसमूह के लिए समानान्तर शिक्षा व्यवस्था और संसाधन

विनिवेश इत्यादि। आज हम देख रहें हैं कि नई शिक्षा नीति में इन मूल्यों का औचित्य प्रतिपादन और अधिक खुले रूप में हुआ है। अगर हम 1968 में प्रतिपादित शिक्षा नीति के माहौल और आज के माहौल पर ध्यान दें तो यह अन्तर और भी स्पष्ट प्रतीत होगा।

दूसरा बड़ा संदर्भ संसाधनों का है । यह बहुत विस्तार में कहने की बात नहीं हैं कि शिक्षा व्यवस्था का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं से अन्तरंग सम्बन्ध है और इस अंतः–सम्बन्ध के गत्यात्मकता का प्रमुख कारक है, समाज के एक हिस्से के लिए शिक्षा का सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता की आवश्यकता बन जाना। जैसे–जैसे यह वर्ग बढ़ता है वैसे–वैसे शिक्षा का भी विस्तार होता है और इसके समानान्तर आधुनिक क्षेत्र में नौकरियों (रोजगार के अवसरों) की मांग भी बढ़ती है। सामान्यतः देखा गया है कि जब तक दोनों के बीच का अन्तर संकट के स्तर पर नहीं पहुच जाता, संसाधनों की सीमा–बाध्यता की शिक्षा के विस्तार में समस्या के रूप में नहीं खड़ा किया जाता। नई नीति का निर्धारण ऐसे समय में हो रहा है जबकि शिक्षित युवकों की बेरोजगारी ने संकट स्तर को कई मीटर तक पार कर लिया है। यह दूसरी बात है कि इसने राजनैतिक व्यवस्था के लिए संकट पैदा नहीं किया है यद्यपि खतरे के संकेत अनेकों बार मिलते रहें हैं। सातवीं योजना में इस समस्या से जूझने का कोई इरादा है, ऐसा कतई नहीं दिखाई देता। इसलिए सरकार चाहती है, शिक्षा में विस्फोट यानि शिक्षण संस्थाओं में बढ़ती भीड़ के नाम पर, जनसंख्या में विस्फोट की ही तर्ज पर, शिक्षा का भी परिवार नियोजन और सही मायने में जन्म निरोध हो। वास्तव में अनौपचारिक शिक्षा, सतत् शिक्षा (दूरस्थ शिक्षण, पत्राचार, पाठ्यक्रम खुला विश्वविद्यालय आदि) सभी इस रणनीति के हथियार हैं और व्यवसायीकरण भी, ताकि आधुनिक क्षेत्र में

रोजगार के अवसरों के लिए बढ़ती मांग को नियंत्रित किया जा सके।

नयी शिक्षा नीति की मुख्य स्थापनाएं –

1. शिक्षा में भीड़ –

नई नीति की पृष्ठभूमि में शिक्षा में विस्फोट की धारणा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। देश में शिक्षा का प्रभावशाली विस्तार हुआ है, संस्थाओं की संख्या और छात्र संख्या, दोनों दृष्टि से फिर भी तस्वीर के दूसरे पहलू को देख लेना होगा जो कि अन्तर–जनगणना वर्षों में शिक्षा की वृद्धि दर से मिलती है।

दशक	प्रारम्भिक शिक्षा (प्र0श0 सालाना)	उच्च शिक्षा (प्र0श0सालाना)	माध्यमिक शिक्षा
50 वां	6.2	12.4	
60 वां	5.0	13.4	
70 वां	2.5	3.8	7.8 प्र0सालाना 50–51 : 82–83

आंकड़ों में परिलक्षित वृद्धि दर में ह्रास का आकार भले ही उतना बड़ा हो जितना कि प्रत्यक्षतः दिखाई देता है (अन्य परिवर्ती कारक ध्यान में रखते हुए) परन्तु इससे कम से कम इतना तो स्पष्ट है कि प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर भी शिक्षा की वृद्धि दर तद्–अनुरूप वय समूह की वृद्धि दर से कम है जिसकी एक फलश्रुति यह है कि कुल जनसंख्या में निरक्षर लोगों की संख्या बढ़ती जाती है। वृद्धि दर में ह्रास से यह भी प्रकट होता है कि शिक्षा में विस्तार की सीमायें उस सामाजिक स्तरण तक आकर थम गयी है जो शिक्षा के अवसरों का उपयोग नहीं कर सकता।

आज भी उच्च शिक्षा में तदुअनुकूल वय–समूह के केवल 4. 8 प्रतिशत व्यक्ति ही प्रवेश लेते हैं यानि 10,000 जनसंख्या पर केवल 45 व्यक्ति उच्च शिक्षा में लिए जाते हैं। उपरोक्त तथ्यों के साथ यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है कि

इनके अन्दर भी कई प्रकार की विषमतायें छिपी हुई हैं। उच्च और माध्यमिक स्तर पर ही नहीं, यहां तक कि प्रारम्भिक स्तर में भी कई वर्गों और क्षेत्रों की सहभागिता औसत से बहुत कम है।

यह सही है कि देश में साक्षरता की दर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 16.67 (1951) से 36.23 (1981) बढ़ी है पर यह कोई गर्व करने योग्य उपलब्धि कतई नहीं है। इस दौरान निरक्षरों की जनसंख्या चौगुनी यानि 6 करोड़ (1951) से 24.8 करोड़ (1981) हो गयी है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में और महिला और पुरुष, सवर्ण और हरिजन, आदिवासी के बीच भारी असमानताओं का प्रश्न अपनी जगह है। ऐसा अनुमान है कि यदि जनसंख्या और साक्षरता की दरों की वृद्धि की यही प्रवृति जारी रही तो भारत में इक्कीसवीं शताब्दीं में प्रवेश के अवसर यानि 2000 ई0 पर 50 करोड़ निरक्षर लोग होंगे। और यही नहीं सारे विश्व में 15–19 वय–समूह में 54 प्रतिशत अकेले हमारे देश में होंगे। इसका मतलब है कि निरक्षरों में एक भारी संख्या 1985 के बाद जन्म लेने वालों की होगी।

इस परिस्थिति में शिक्षा में भीड़ के क्या मायने होते हैं ? यह महज एक भ्रान्ति भी नहीं हो सकती, जब तक कि यह केवल फैलाने के लिए न हो। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि वह यह कि वर्तमान ढर्रे पर भी शिक्षा के अवसरों के विस्तार करने में सरकार असफल हो रही हैं।

2. दोहरी / तिहरी शिक्षा व्यवस्था –

अनौपचारिक और सतत शिक्षा पर जो बल दिया जा रहा है, उसे किस सन्दर्भ में आंकना होगा । यह उपयोगी हो सकती है इसमें दो राय नहीं हो सकती पर इसमें निहितार्थ कुछ और भी हैं। पहले अनौपचारिक प्रणाली की कल्पना मुख्यतः 'ड्रॉप–आउटस' के लिए की गयी थी। अब ऐसा

प्रस्ताव कि 1990 में जो 6.4 करोड़ बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा में प्रविष्ट होंगे, उनमें से आधे से अधिक (3.9 करोड़) इस अनौपचारिक व्यवस्था में शिक्षित होंगे। इसका मतलब है कि शिक्षा के विविधीकरण के नाम पर एक और निम्न स्तरीय शिक्षा सेवा बनाई जायेगी जिसमें आधा शिक्षक (आधा या कम पारिश्रमिक पाने वाला, अप्रशिक्षित) होगा, जो विद्यालय आधे या कम समय चलेंगें इत्यादि। शिक्षा में विद्यमान असमानता में एक और असमानता जोड़ी जायेगी और असमानता से पीड़ित शिक्षकों की एक और पांत बनायी जायेगी।

स्कूली शिक्षा की कई पहलुओं पर आलोचना हुई है। एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है सिखाने बनाम सीखने (टीचिंग या लर्निंग) की प्रक्रिया, परन्तु अनौपचारिक शिक्षा के नाम पर एक निम्न श्रेणी की स्कूली व्यवस्था इसका उत्तर कतई नहीं है। जिस तबके के बच्चे मुख्यतः आर्थिक विपन्नता और उससे जन्य हीनता के कारण स्कूलों में नहीं आते, वे इस प्रकार के स्कूलों में भी नहीं आयेंगे।

प्रौढ़ शिक्षा का महत्व और है परन्तु सतत शिक्षा के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम या दूरस्थ शिक्षण की अन्य माध्यमों का बहुत ही सीमित उपयोग है। ऐसे पाठ्यक्रम महंगे ही नहीं दुरूह भी होते हैं। दूसरी बात यह है कि इन्हें पूरा करने के लिए बहुत अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है। इनमें एक प्रकार की उबाऊ एकरूपता तो होती ही है, विकल्प भी बहुत सीमित होते हैं।

3. आदर्श स्कूल –

आदर्श स्कूल नई नीति के संभ्रान्त वर्गीय रूझान की आलोचना का एक मुख्य बिन्दु रहा है। यदि इस बहस के कुछ मायने होते तो इस प्रस्ताव को त्याग देना चाहिए परन्तु जैसा कि हाल ही में सम्पन्न राज्यों के शिक्षा मंत्रियों

के सम्मेलन की कार्यवाही से प्रगट होता है कि बंगाल ही नहीं उत्तर प्रदेश सहित कई राज्यों के विरोध के बावजूद केन्द्रीय सरकार इस निर्णय पर अमल कर रही है और सातवीं योजना में निर्धारित शिक्षा व्यय का लगभग पांचवां हिस्सा इन स्कूलों को स्थापित करने में व्यय होने वाला है। यह दलील कि कालान्तर में हरेक जिले में एक आदर्श स्कूल खुलने से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ेगी किसी की समझ में नहीं आती। एक सांस में सरकार साधनों की अत्यन्त कमी का रोना रोती है और दूसरे सांस में यह भी चाहती है कि हर जिले में एक साधन–सम्पन्न स्कूल बना देने से सैकड़ों विपन्न विद्यालयों में भी आदर्श स्कूल की देखा देखी शिक्षा का स्तर बढ़ जायेगा। इस प्रकार के अनेक प्रयोगों का अनुभव बताता है कि कुछ समय में ये मॉडल भी गुणवत्ता में सामान्य स्तर पर आ जायेंगे, केवल विशिष्ट दर्जे की सुविधाओं का ही अन्तर बाकी रहेगा। कभी नॉर्मल स्कूल की योजना उत्तर प्रदेश में चली थी। वे ऐसे आदर्श स्कूल माने गये थे जिनके साथ शिक्षकों के प्रशिक्षण को भी जोड़ा गया था। ये भी निदर्शन विद्यालय ही माने गये थे। उनका क्या हश्र हुआ हम सभी जानते हैं। आज भी कतिपय जिलों में तथाकथित ऊँची गुणवत्ता वाले स्कूल हैं, उससे अन्य स्कूलों के स्तर पर क्या अन्तर पड़ता है?विकास के क्षेत्र में निदर्शन प्रारूप की व्यर्थता को सरकार भी समझ गयी है। फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में इस पर इतना भरोसा क्यों? जाहिर है कि क्योंकि तीसरे दर्जे में डिब्बे लबालब भरे हैं, सण्डास के दरवाजे तक, और अधिक डिब्बे जोड़ने के लिए साधन नहीं है इसलिए गुणवत्ता बढ़ाने के नाम पर वातानुकूलित श्रेणी में विशिष्ट लोगों के लिए गुंजाइश की जा रही है। इस तरह शिक्षा में विद्यमान असमानता को और बढ़ाया जा रहा है। होगा क्या? इस

उच्च स्तरीय शिक्षा में जगह पाने के लिए जो कि जाहिर है कि भारी अंश में सहायता प्राप्त होंगें, ठेल–पेल होगी, राजनीतिक संरक्षण की गुंजाइश बढ़ेगी, पहुंच और भाई–भतीजावाद आड़े आयेगा और भ्रष्टाचार की संस्कृति और पनपेगी। और कुछ न हो इसमें बच्चों का 'सामाजीकरण' अवश्य होगा।

4. व्यवसायीकरण –

व्यवसायीकरण पर नई नीति बहुत बल देती है। 1968 की शिक्षा नीति में भी था। यद्यपि यह भी स्वीकार किया गया है कि अभी तक का अनुभव निराशाजनक ही रहा है पर इससे उबरने के लिए कोई नयी सोच या रणनीति है, ऐसा नहीं लगता। फर्क सिर्फ इतना है कि अब व्यवसायीकरण की शुरुआत पाँचवीं कक्षा के बाद ही होने लगेगी और इसे उद्योग क्षेत्र से ही नहीं, कृषि और सेवा क्षेत्र से भी जोड़ा जायेगा।

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि मानव संसाधनों का विकास, आर्थिक विकास की नींव है परन्तु मानव संसाधन के विकास के लिए शैक्षिक नियोजन तभी प्रभावी हो सकता है जब सामाजिक उद्देश्य गुणात्मक, गणनात्मक, स्थानिक और कालिक लक्ष्यों के अनुसार ज्ञात हों और इसकी सही जानकारी हो कि विभिन्न विकास क्षेत्रों की मानव संसाधनों की आवश्यकताएं क्या हैं और नियोजन काल में कितनी होंगी। केवल यह टिप्पणी देने से बात नहीं बनती कि विगत वर्षों में व्यवसायीकरण को कृषि और सेवाक्षेत्रों की आवश्यकताओं से नहीं जोड़ा गया था। यह एक बहुत ही कठिन काम है कि इसकी कोई विधा निकाली गयी है?नहीं। वैसे भी व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले भी नौकरियों में, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र में ही जाते हैं, स्वयं रोजगार में बहुत कम।

व्यवसायीकरण का आर्थिक विकास और विशेषकर औद्योगीकरण से कैसा सीधा सम्बन्ध है यह पिछले वर्षों के अनुभव से भी स्पष्ट होता है। इस क्षेत्र में तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र ही कुछ सफल हुए हैं। जाहिर है, इन राज्यों में औद्योगीकरण का स्तर भी अपेक्षाकृत ऊँचा है।

यह सामान्य ज्ञान की बात है कि अच्छी व्यावसायिक शिक्षा के लिए सामान्य शिक्षा से अधिक संसाधनों की जरूरत पड़ेगी। इसके बारे में सरकार कितनी तैयार है इसका कोई संकेत नहीं मिलता। यह जिम्मेदारी उद्योग और स्वयंसेवी संगठन पूरा करेंगे, इतना कह देना काफी नहीं। तो क्या यह भी भीड़ को छांटने की युक्ति नहीं है?इससे भी अधिक इसके पीछे भी संभ्रान्त वर्गीय रूझान परिलक्षित होता है, ज्ञान हमारा हस्त शिल्प तुम्हारा – वही 'शास्त्री' और 'मिस्त्री' का श्रम विभाजन! व्यावसायिक शिक्षा को असंगठित क्षेत्र से सम्बद्ध करने की मंशा से यह और भी स्पष्ट हो जाता है।

5. उपाधि और नौकरी का सम्बन्ध विच्छेद –

भीड़ छांटने का एक और उपाय है, नौकरियों में प्रवेश के लिए डिग्री की मान्यता का समाप्त करना। जाहिर है कि यह प्रस्ताव निम्न बाबू श्रेणी (क्लैरिकल ग्रेड) की नौकरियों में ही लागू हो सकता है। डॉक्टर, इंजीनियर या प्रशासनिक या अन्य उच्चतर श्रेणी की सेवाओं में नहीं। वैसे भी यदि माध्यमिक या उच्च माध्यमिक शिक्षा के बाद किसी औसत वर्ग के युवक को नौकरी मिल जाती है तो वह महज उपाधि हासिल करने के लिए कॉलेज में भीड़ नहीं बढ़ाता। ये तो रोजगार के अवसर की प्रतीक्षा में कुछ करते रहने की प्रवृत्ति है। 'डिलिकिंग' समस्या का कोई समाधान नहीं है। इसके विपरीत इसके खतरे कम नहीं।

आज भर्ती बोर्डों में क्या हो रहा है, सभी जानते हैं। नौकरियाँ, पहुँच, घूस और शायद कभी कभार आतंक पैदा करने से मिलती हैं। यह दूसरी बात है कि परीक्षा परिणाम भी कई जगह इसी बल पर हासिल होते हैं। यह सब साधन युक्त लोगों के हथियार हैं। फिर भी डिग्री एक वस्तुपरक मापदण्ड है। यह कम से कम एक न्यूनतम सीमा को बांधने में मदद करती है। इसे हटा दीजिए और नौकरियों में भर्ती में अनेक प्रकार की धांधलियों के लिए और अधिक खुली छूट के अवसर बन जायेंगे।

इसी से जुड़ा प्रश्न यह है कि कौन उच्च शिक्षा के लिए जाये और किन्हें किसी निम्न कोटि की धारा में छोड़ दिया जाय। यह विद्यालयों में उपलब्धियों के आधार पर तय नहीं होगा। पांचवी कक्षा के बाद से ही यह सार्वजनिक परीक्षाओं की श्रेणियों से तय होगा। जाहिर है कि अगर हमने स्कूलों की वर्तमान श्रेणी प्रणाली को बरकरार ही नहीं रखा बल्कि उसके एक दो और विशिष्ट श्रेणियां जोड़ दी तो उन्हीं से निकलने वाले छात्र उच्च शिक्षा के लिए पात्रता पायेंगें।

6. इलेक्ट्रॉनिक शिक्षण –

शिक्षक की जगह आगे टी0वी0 सेट पढ़ायेंगे। आलोचना का एक मुख्य बिन्दु रहा है कि इसका बहुराष्ट्रीय व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से सम्बन्ध है। यह सरकार के द्वारा बी0बी0सी0 के चैनल चार के लिए टी0वी0 सेट उपलब्ध कराने वाली फर्म और ऐसे ही कुछ अन्य प्रतिष्ठानों के साथ किए गए अनुबन्ध से साफ भी हो जाता है। कुछ ऐसी व्यवस्था स्कूली कम्प्यूटर के लिए भी हो रही है। पर सवाल सिर्फ इतना ही नहीं है। सवाल शिक्षक और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण के बीच लागत व्यय तय करने वाली विचारधारा का है। वैसे भी शिक्षा क्षेत्र में शिक्षितों के लिए रोजगार का

एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है और शिक्षित बेरोजगारी की समस्या सरकार की समस्या होनी भी चाहिए। शिक्षा में विविधीकरण और लचीलेपन के गुणों की आवश्यकता पर तो बहुत जोर दिया गया है, पर इसके लिए और छात्रों की अभिप्रेरणा के लिए भले ही यह आज की व्यवस्था में न हो रहा हो, शिक्षक की क्या भूमिका है, इस बड़े तथ्य को नकारा जाता है। असल में भीड़ छांटने के अलावा यह भीड़ को भेड़ में बदलने का भी कारगर माध्यम है। आगे लोग 'छवि' के पीछे जायेंगे, वास्तविकता के साथ नहीं।

7. शिक्षा का केन्द्रीकरण –

कुछ इसी तरह की सोच शिक्षा के पुनर्गठन क्षेत्र में भी दिखाई देती है। केन्द्रीय सरकार शिक्षा के क्षेत्र में अधिक अधिकार और भूमिका चाहती है। इसके लिए वह कितने साधन उपलब्ध करेगी इसका कोई निश्चित संकेत नहीं हैं। हमारी संघीय प्रणाली के लिए इसके महत्वपूर्ण निहितार्थ है। यह सभी जानते हैं कि अभी तक शिक्षा का व्यय भार अधिकांश में राज्य सरकारें वहन करती रही हैं। माना कि इसमें वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर हस्तान्तरित साधनों का भी अंश होता है शायद केन्द्र अपना अंशदान बढ़ायेगा – पर शिक्षा में विद्यमान श्रेणी संरचना को बढ़ाने में, जैसे मॉडल स्कूल खोलना। वैसे भी आज केन्द्र सरकार द्वारा चलाई जा रही शिक्षण संस्थाओं, चाहे वह केन्द्रीय विद्यालय हों या केन्द्रीय विश्वविद्यालय, और राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्थाओं को उपलब्ध आधारिक सुविधाओं में बहुत बड़ी असमानता है। केन्द्र, राज्य, स्थानीय निकाय और सहायता प्राप्त संस्थाओं के मध्य एक समानान्तर वर्ण–व्यवस्था का प्रतिबिम्ब मिलता है। इससे शिक्षा के सरकारीकरण और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है। इससे शिक्षा में समाज और

समुदाय की सहभागिता लगभग समाप्त हो गयी है। इसका दूसरा प्रतिफल यह भी हुआ है कि केन्द्र पोषित प्रतिष्ठानों ने अन्य स्तर के शैक्षिक संस्थाओं के विकास को अनेक तरह से नुकसान पहुँचाया है।

विश्वविद्यालय के कुलपतियों को सरकार के कनिष्ठ सचिव और उप–सचिव के सम्मुख 'सरकारी अनुदान' के लिए गिड़गिड़ाना पड़ता है। यह एक अच्छा ऐहसास है, इसके लिए किसी बहस की जरूरत भी नहीं है। पर इस क्रम में विश्वविद्यालयों में रही सही प्रजातांत्रिक संस्थाओं पर आक्रमण इसी अभिजात रूझान का द्योतक है। वैसे सही मायनों में प्रजातंत्र तो देश में भी सफल नहीं है। प्रजातंत्र में संस्थानीय प्रक्रियायों को ठीक से चलाने की बात होनी चाहिए, उन्हें समाप्त करने की नहीं। कुलपतियों के हाथ में आज भी असीमित अधिकार हैं और अगर वे उन अधिकारों को ठीक से प्रयोग करें तो अनेक समस्याएं ही उत्पन्न न हों। उनके हाथ और मजबूत कर देना है, यह एक जाना पहचाना तर्क है। अगर हम विश्वविद्यालयों को भी प्रजांतात्रिक तरीके में चलाने में असमर्थ हैं तो हम अपने बारे में चर्चिल की वाणी को ही चरितार्थ कर रहे हैं। और यह भी कि इस देश को पढ़े–लिखे नागरिकों से ही अधिक निराशा हुई, फिर शिक्षा को सामाजिक विकास से जोड़ने की बात ही व्यर्थ है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार नई शिक्षा नीति वास्तव में शिक्षा का परिवार नियोजन (सही अर्थ में जन्म निरोध) का कार्यक्रम है। यह सरकार के जनसंख्या विस्फोट सम्बन्धी सोच को शिक्षा के क्षेत्र तक विस्तार करने का प्रयास है। यहां भी वही तर्क है, सीमित संसाधन और शिक्षा में लोगों की बढ़ती भीड़ शिक्षा के विकास को रोक रही है। इस सन्दर्भ में माल्थस की याद

बरबस आ जाती है।

औद्योगिक क्रान्ति से जनित सामाजिक, आर्थिक विषमताओं के परिवेश में उदारवादी प्रगति और मानव अधिकार की अगुवाई करने वाले विचारकों के प्रतिकूल इन महाशय ने कहा कि वर्तमान व्यवस्था को दुनिया की वास्तविकताओं के विरुद्ध ही परखा जा सकता है। इन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिवादित किया कि जनसंख्या अपरिहार्य तौर पर जीविका के साधनों पर दबाव डालती है। इससे जन्में अभाव को दूर करने के लिए जो आवश्यक अंकुश (पॉजिटिव चैक्स) लगाने होगें, वे निम्न वर्ग के हिस्से में ही पड़ेंगे। यदि ऐसा नहीं किया गया तो समाज के सभी सदस्यों के जीवन स्तर में गिरावट आती है और समाज के उस वर्ग का संसाधनों में अंश कम होता है जिसके सदस्य अधिक उद्यमी और सुयोग्य होते हैं।

इसलिए उन्होंने यह मान्यता प्रदान की कि अमीरों और गरीबों के लिए अलग–अलग सामाजिक विधान होना चाहिए।

महाशय माल्थस ने एक और सिद्धान्त प्रतिपादित किया। वह है प्रभावी माँग (इफेक्टिव डिमाण्ड) का, उस परिस्थिति के लिए जब गरीबों के बाजार में पूंजीपतियों के उत्पादन के लिए मांग नहीं होगी। उनका अभिमत था कि धनी वर्ग पर अनुत्पादक वर्ग की उपभोग की शक्ति बढ़ाने, विदेशी व्यापार और नई आवश्यकताओं को बढ़ाने से प्रभावी मांग पैदा की जा सकती है।

क्या नई शिक्षा नीति भी इसी प्रकार की प्रेरणा की उपज नहीं है? हमारे शासक–नेतृत्व और उनके बुद्धि बैंक के लिए महाशय माल्थस आज भी जिन्दा हैं।

ढाई सेर लाल चींटी का तेल

एक ऐतिहासिक कथा

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की बात है, अंग्रेजों ने बंगाल व बिहार के इलाकों को अपने अधीन कर बक्सर के पश्चिम में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया था। अवध के नबाब वजीर ने भी अंग्रेजों की अधीनता कबूल कर ली थी। इसके परिणामस्वरूप बनारस की जमींदारी नबाब वजीर नें अग्रेजों को सौंप दी थी। उन दिनों राजा चेतसिंह के पास बनारस व गाजीपुर के इलाकों का पट्टा था और वे 22,48,459 रुपये का सालाना लगान इसके लिए देते थे। सन् 1764 में इसी सालाना लगान पर बनारस की रियासत का पट्टा अग्रेजों से राजा चेतसिंह को मिला।

उन दिनों भारत में अंग्रेजों की हुकुमत एक व्यापारिक संगठन के हाथ में थी जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी कहते थे। कम्पनी सरकार का मुख्य उददेश्य मुनाफा कमाना था। कम्पनी सरकार भारत के राजा व राजवंशों से सबसे अधिक लगान देने वालों से एक तरह से ठेका करती थी। इस प्रकार लगान की रकम और आपसी लड़ाई झगड़े लगातार बढ़ते जाते थे। कितने ही इलाकों में तो किसानों को उपज का 65 प्रतिशत भाग लगान में देना पड़ता था। मंडियों में आने वाली उपज व वस्तुओं पर भी मनमानी चुंगी ली जाती थी। यह जान आश्चर्य होगा कि उन दिनों बनारस में प्रति बैलगाड़ी दस रुपये ली जाती थी।

देश में शासन व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थी। कम्पनी के संचालकों से लेकर छोटे से छोटे कर्मचारी तक राजवंशों से मनमानी किया करते थे और दूसरी ओर राजा व जमींदार लोग

जनता के साथ मनमानी किया करते थे। ऐसी अराजकता के दौर में एक नये पेशे के लोगों को पनपने को मौका मिलता है, जिन्हे आज की प्रचलित भाषा में 'चमचा' कहा जाता है।

उन्हीं वर्षों में अग्रेंजों को दक्षिण भारत में अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं थीं और कम्पनी के खजानों में धन की बहुत कमी थी। वारेन हेस्टिंग ने रुपये उठाकर इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। उन्हें पता चला कि राजा चेतसिंह के खजाने में दो करोड़ रुपये जमा हैं इसलिए उनसे 5 लाख रुपयों की माँग की गयी। यह रकम मालगुजारी की निश्चित रकम के अलावा थी। उन दिनों ग्राहम बनारस के रेजिडेन्ट थे। इस परिस्थिति का उन्हे लाभ उठाने का अच्छा मौका मिला। उनके दो मुँहलगे चमचे थे, जो बनारस की गलियों में जड़ी–बूटी बेचा करते थे, मगर किसी तरह उनकी पहुँच ग्राहम तक हो गयी थी। ग्राहम उन्हीं दोनों के द्वारा राजा चेतसिंह से बातचीत करवाया करते थे। जिन दिनों राजा चेत सिंह के ऊपर कम्पनी का दबाव पड़ रहा था, ये दो व्यक्ति राजा के पास गये और उनसे कहा कि ग्राहम बीमार हैं और उनके उपचार के लिए ढाई सेर लाल चींटी के तेल की मांग की गयी है। राजा इस मांग को सुनकर आश्चर्य में पड़ गये।

ढाई सेर लाल चीटी का तेल प्राप्त किया जा सका या नहीं, यह तो पता नहीं, पर राजा चेतसिंह से अंग्रेजों की नाराजगी बढ़ाने में इससे जरूर मदद मिली। कुछ वर्षों बाद राजा को अंग्रेजों की मनमानी के खिलाफ तलवार उठानी पड़ी और बनारस का राज्य छोड़ कर ग्वालियर में सिंधिया के पास जाकर शरण लेनी पड़ी।

प्रथम उत्तर प्रदेश समाजशास्त्र सम्मेलन
(अप्रैल 28–30, 1978)

विषय – भारतीय ग्रामीण समाज विकास एवं पुनर्निमाण की दिशायें

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी

यद्यपि जनता पार्टी की आर्थिक नीति और उसका नियोजित उद्देश्य एवं लक्ष्यों में निर्धारण सम्बन्धी चित्र अभी बहुत धुँधला है और दल का नेतृत्व अनेकों मुँह से बात करते दीखता है, फिर भी इसकी एक रूपरेखा उभरती नजर आती है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण नई बात तो यह है कि इस रूप–तालिका (पैराडाइम) में निदृष्ट संवृद्धि की रणनीति पर राजनैतिक सिद्धान्तवादों की परम्परागत सीमायें टूटती नजर आती हैं। इस पर मार्क्सवादी अन्य वामपंथी, गांधीवादी तथा उदार–पूंजीवादी सभी सिद्धान्तों के मानने वालों में मतैक्य लगता है। वर्गीय स्वार्थ के कुछ मुद्दों पर मत भिन्नता है पर शायद ही कभी देश के विकास की मुख्य धारा पर इतने बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय एकात्मकता देखी गई हो।

इस नीति के मुख्य प्रस्तावक हैं –

अ– आर्थिक समृद्धि, सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि पहले आती है।

ब– बेरोजगारी और अधूरी रोजगारी को यथासंभव शीघ्रता से समाप्त करना।

स– पूँजी–सघन उद्योगों के बजाय श्रम–सघन उद्योगों को प्रोत्साहन

इस प्रकार की रणनीति के पक्ष में दो विशेष प्रकार की युक्तियां दी जाती हैं। पहली, और जो मुख्य रूप में आर्थिक है, यह कि

यदि चालू ढर्रे पर आर्थिक संवृद्धि पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा तो आम लोगों के पास क्रय शक्ति न होने के कारण संवृद्धि की प्रक्रिया ही अवरुद्ध हो सकती है। इसका सामाजिक पहलू यह है कि इससे समाज के विभिन्न वर्गो और समूहों के मध्य आर्थिक असमानता और भी बढ़ेगी। दूसरी, यह कि बढ़ती हुई आर्थिक समानता के साथ सामाजिक तनाव और हिंसा बढ़ेगी, जिनका प्रभाव देश की प्रजातांत्रिक प्रणाली के लिये घातक होगा। इसलिए इसे एक सैद्धान्तिक रूप भी दिया जा रहा है, वह यह कि विकास का गांधीवादी मार्ग है जैसे कि चौधरी चरण सिंह ने, जो इस आर्थिक नीति के मुख्य व्याख्याता और प्रबल समर्थक भी हैं, अपनी पुस्तक 'इण्डियाज ईकौनॉमिक पालिसी' को 'ए गाँधियन ब्लूप्रिण्ट' उपशीर्षक दिया है। यह नीति कहां तक गांधीपरक है, इस प्रश्न पर हम बाद में जायेंगे।

इस सम्बन्ध में दो मुख्य प्रश्न उठते हैं। पहला, वर्तमान सामाजिक राजनैतिक ढाँचे में यह नीति कहां तक कारगर हो सकती है, और दूसरा, यदि यह कारगर होती है, आंशिक रूप में ही सही, तो इसका विशेषतः ग्रामीण परिवर्तन की दिशा पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

नई आर्थिक नीति पर विचार करने से पहले इसके मुख्य प्रस्तावों को राजनैतिक शब्दाडम्बर से अलग कर देना आवश्यक होगा, जैसे इससे सम्पूर्णक्रान्ति आयेगी, गांधी की कल्पना का समाज बनेगा, इत्यादि। यह विषय पर फिलहाल में चर्चा करने का मन्तव्य नहीं है।

इस नीति के दार्शनिक पहलू में कोई क्रान्तिकारिता है, ऐसी बात नहीं है। तृतीय विश्व के देशों के विकास के मार्ग के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कुछ नई दृष्टि में सोचा जाने लगा है। आज तक प्रचलित राष्ट्रों की 'गरीबी के दुष्चक्र' का सिद्धान्त, जिसके आधार पर अविकसित देशों के विकास

की नीति निर्धारित होती रही है, कमजोर सिद्ध हुआ है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में इस सिद्धान्त के तात्पर्य हैं कम आय, कम बचत, कम उपभोग, कम बचत, कम पूंजी विनिवेश और इसका अन्तरर्राष्ट्रीय पहलू है, अधिक आयात और कम निर्यात। इस दोहरी कमी की पूर्ति के लिये वाह्य सहायता और निजी पूंजी का समावेश ही एक सक्षम विकल्प माना जाता रहा है।

सामाजिक स्तर पर 'गरीबी के दुष्चक्र' के विरुद्ध एक संकुचित आर्थिक तर्क है कि जब तक आम लोगों की कम आय, कम क्रय–शक्ति (एवं कम बचत भी) का फन्दा नहीं टूटता, तब तक आर्थिक संवृद्धि की धारा भी अवरुद्ध रहेगी। इसलिए पहले इस दुष्चक्र को तोड़ना आवश्यक है। यह एक ज्वलंत आर्थिक विसंगति है। पूंजीवादी बाजार के विस्तार के लिए भी यह आवश्यक है। विश्व बैंक सरीखें पूंजीवादी संगठन भी इसी प्रकार की विकास रणनीति का सुझाव तृतीय विश्व के देशों के लिये देते हैं।

सतही तौर पर राष्ट्रों की गरीबी के दुष्चक्र की परिस्थिति पिछले दो तीन वर्षों से भारत में व्याप्त नहीं है। देश के पास बचत कोष भी है (जैसे लगभग 200 लाख मी0टन अन्न भण्डार) और भारी मात्रा में विदेशी विनिमय कोष भी। 1977–78 के बजट में देशी पूंजी को अनेक प्रकार की प्रोत्साहन सुविधाएं भी दी गई, फिर भी पूंजीं विनिवेश की गति बहुत मन्द रही। यहां तक संचित कोष से व्यय करने तक के लिये प्रति–व्यय धन का प्रावधान नहीं जुटाया जा सका। इसलिए देश के आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध सी रही।

इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर बनाना, ताकि आम और बहुसंख्यक लोगों की क्रय शक्ति बढ़े और उसके साथ–साथ औद्योगिक उत्पादन और सेवाओं के लिये बाजार का विस्तार हो, और इस उद्देश्य की

पूर्ति के लिये श्रम–सघन तकनीकी को प्रोत्साहन देना (इस प्रक्रिया में सामाजिक न्याय लक्ष्य की ओर बढ़ना) नई अर्थ नीति का शुद्ध शीर्ष है।

परन्तु बिना सामाजिक (और राजनैतिक) लामबन्दी के आर्थिक लामबन्दी सफल नहीं हो सकती। 1977–78 का आर्थिक सर्वेक्षण, देश में आर्थिक ठहराव के कारणों में जाने का प्रयास किया गया है। संक्षेप में, कृषि के क्षेत्र में यह पाया गया है कि बहुत हद तक कृषि उत्पादन अभी भी मौसम की अनुकूलता पर निर्भर करता है इसलिये इस वर्ष के बजट और छठी पांच साला योजना में सिंचाई को प्राथमिकता दी गई है। परन्तु दूसरी ओर भारी सार्वजनिक व्यय पर सिचाई की जो सुविधा उपलब्ध है, उसका भी पूरा उपभोग नहीं हुआ है। उदाहरण के लिये, देश में भाखड़ा नंगल सरीखे वृहद् सिचाई प्रयोजनाओं से सालाना औसत 64 लाख हेक्टेयर भूमि की सिचाई होनी थी परन्तु इसके विपरीत 1971–1976 की अवधि में औसत सालाना 39 लाख हेक्टर की ही सिचाई हुई। गण्डक परियोजना में भी सिंचाई क्षमता की बहुत कम उपयोग की परिस्थिति पाई गई। उपरोक्त सर्वेक्षण में यह भी कहा गया है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद छोटे किसानों और काश्तकारों को ऋण सुविधा के ढिंढौरा पीटे जाने के बावजूद भी, उन्हें यह सुविधा नहीं उपलब्ध होती। योजना आयोग द्वारा गण्डक एवं कोसी कमाण्ड क्षेत्र में जो विस्तृत अध्ययन किये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि सिचाई के साधनों की क्षमता से कम उपयोग का प्रश्न भूमि सुधार से जुड़ा है। अभी भी बहुत मात्रा में कृषि भूमि बंटाईदारी या अन्य प्रकार की अस्थायी काश्त पर जोती जाती है। भारी किराये के रेट देने के बाद ऐसे काश्तकारों में उत्पादन बढ़ाने के लिये कोई साधन और अभिरुचि भी बाकी नहीं रहती। भूमि सुधारों की तीन दशक पर्यन्त अनवरत बात के बावजूद भी सरकार बड़े भूस्वामियों से

समस्त कृषि भूमि का मात्र 1 प्रतिशत ले सकी है, जिसका आधा भाग ही किसानों में बांटा गया है। 1966–67 के बाद सार्वजनिक क्षेत्र में सिचाई व्यवस्था के विस्तार के साथ–साथ कृषकों को निजी सिंचाई सुविधाओं के निमार्ण के लिये भी अनेक प्रोत्साहन तथा सीधे अनुदान दिये गये हैं परन्तु इनका उपयोग भी ज्यादातर बड़े किसानों ने ही किया।

कृषि उत्पादन बढ़ाने का दूसरा जरिया है, रासायनिक खाद, उन्नत बीज, कीटनाशक दवाओं आदि का उपयोग, जिसके लिये पहले भी अनेक प्रकार की, प्रकट या अप्रकट, अंशदान दिया जाता रहा है और आगे भी अधिक दर पर दिया जायेगा। परन्तु इससे भी कृषि क्षेत्र में विषमतायें बढ़ी हैं।

कृषि से जुड़ा दूसरा प्रमुख विकास कार्यक्रम है पशुपालन, और इसमें विशेषकर दुग्ध उत्पादन बढ़ाना, जिसे 'सफेद क्रान्ति' की संज्ञा दी जा रही है। इसका भी वहीं तकनीकी आधार है – उन्नत किस्म के जानवर, जिनके दूध देने की क्षमता को कायम रखने के लिये विशेष आहार की आवश्यकता होती है। दूसरे चारागाह और चारे के लिये सामूहिक सुविधा प्राप्त न होने के कारण किसानों की निजी कृषि भूमि में ही अन्न के साथ चारा पैदा करना होता है। इसलिये यह भी छोटे किसानों के बूते के बाहर की बात है। भूमिहीनों का इसमें शरीक होने का तो प्रश्न ही नहीं है।

उद्योग के क्षेत्र में तथाकथित नेहरू मॉडल की विशेष आलोचना हुई है। आगे लघु और कुटीर उद्योगों को ही बढ़ावा देने की बात है। उपरोक्त आर्थिक सर्वेक्षण में औद्योगिक उत्पादन बढ़ने की समस्याओं में एक प्रमुख समस्या लगभग हरेक प्रकार के उद्योग में मांग की कमी को प्रमुख कहा गया है। जिसके कारण निर्मित उत्पादन क्षमता का भी पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है। इस बीमारी का मुख्य कारण भी आम लोगों की क्रय शक्ति की न्यूनता माना गया है? परन्तु लघु क्षेत्र के

उद्योगों की और भी अधिक दुर्दशा है। इनमें बहुत बड़ी संख्या फर्जी इकाइयों की है, कुछ बहुत से उद्योगों की ही सहायक इकाइयाँ। इस क्षेत्र में रोजगार एवं मजदूरी की स्थिति साहसवर्द्धक तो कतई नहीं है। बड़े उद्योगों की असमान प्रतिस्पर्धा से छोटे उद्योगों को संरक्षण देने की समस्या को 'आरक्षण' की प्रथा से निबटने का इरादा घोषित किया गया है। लघु उद्योग क्षेत्र की बड़ी–बड़ी समस्यायें रही हैं 1– सही प्रकार का कच्चा माल उपलब्ध न होना 2– संस्थागत पूंजी का सहज उपलब्ध न होना जिससे कि उन्हें साहूकारी दर पर कर्जा उठाना पड़ता है 3 – बाजार की कठिनाइयां।

परन्तु इन अवरोधों को दूर करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं दीखता। इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जहां बड़े पूंजीपति तकनीकि और बाजार के माध्यम से ही बिना उत्पादन का सरदर्द मोल लिये हुए, भारी मुनाफा बटोर सकते हैं परन्तु इसी प्रकार की व्यवस्था का चित्र उद्योग मंत्री जार्ज फर्नाडिज ने प्रस्तुत किया है। नई उद्योग नीति की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है, "ट्रालर गहरे समुद्र में मछली पकड़ेगा, बडी नाव वाले मध्य में और छोटे मछुवारे तटीय सागर में अगर छोटा, बड़े को अपनी खेप बेचे और बड़ा उसका बाजार करें तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

नई अर्थनीति में कृषि और उद्योग क्षेत्रों के बीच एक विभेद किया गया है, वह है तकनीकि का। यद्यपि उद्योग क्षेत्र में श्रम–सघन तकनीकि पर बल दिया गया है, कृषि क्षेत्र में इसका कोई जिक्र भी नहीं है।

अव्वल तो चालू वर्ष के बजट और सालाना योजना में नई अर्थनीति का व्यय परिलक्षित नहीं होता। यह तो सही है कि बड़े उद्योगों की तुलना में कृषि को ज्यादा महत्व दिया गया है (12 प्रतिशत : 16 प्रतिशत) परन्तु ऐसे कार्यक्रमों के लिये जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं,

जैसे लघु सिंचाई, अन्य ग्रामीण निर्माण कार्य तथा लघु उद्योग के लिये कुल मिलाकर 20 प्रतिशत का ही प्रावधान है। फिर भी यह मानते हुए कि यह इस नीति का प्रारम्भिक वर्ष है इस नीति के ग्रामीण परिवर्तन की दिशा पर सम्भावी प्रभाव पर विचार किया जा सकता है।

इस अवसर पर हम नई नीति के घोषित सामाजिक उद्देश्य पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। यह है, सामाजिक न्याय और सामाजिक आर्थिक समता । जाहिर है कि नगरीय औद्योगिक क्षेत्र से अलग ग्रामीण परिवर्तन की धारा पर विचार करना बिल्कुल अधूरा रहेगा। फिर भी, विषयवस्तु के अनुसार, कुछ मुख्य सम्भावी प्रवृत्तियों (ट्रेन्ड्स) पर विचार किया जा सकता है: –

1. लघु सुन्दर है (स्माल इज व्यूटिफुल) एक आकर्षक विचार हो सकता है परन्तु इसके द्वारा आर्थिक सत्ता के गढ़ टूटेंगे और सामाजिक समता का मार्ग खुलेगा यह अलग समस्या है। ऐसे अनेकों उदाहरण मौजूद हैं कि लघु असुन्दर ही नहीं, वीभत्स भी हो सकता है। गृह उद्योग इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं, जैसे हथकरघा उद्योग। इसके तकनीकि और इकाई आकार की दृष्टि से लघु होते हुये भी असली उत्पादनकर्ताओं का भयंकर शोषण और कच्चा माल देने वाले और बाजार करने वाले महाजनों में आर्थिक शक्ति केन्द्रित होने में कोई रुकावट नहीं है। साथ ही बड़े क्षेत्र के वस्त्र उद्योग को ही ले लें, श्रमिकों के संगठन और उससे संभावी प्रगतिशील ताकतों द्वारा समाज परिवर्तन के अवसर भी कट जाते हैं।

   तकनीकि को उत्पादन व्यवस्था (प्रोडक्शन ऑर्गनाइजेशन) से पृथक कर एक स्वतंत्र कारक मानने में यही खतरा है। गांधी विचार और 'लघु सुन्दर है' में सामंजस्य (क्योंकि इसके लिए गांधी की स्वीकृति ली जाती है) यदि है भी तो

बहुत सतही, क्योंकि गांधी विचार की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उत्पादन और उपभोग का दायरा छोटे समुदायों तक (ग्राम स्वावलम्बन) ही माना गया है। इसलिये कच्चे माल तथा उत्पादन के बाजार और पूंजी के नियंत्रण के द्वारा शोषण का प्रश्न ही नहीं उठता। विषमता का मुख्य आधार है, कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था में अधिशेष (सरप्लस) कैसे बनता है और उसका विनियोग (अप्रौपिएशन) कैसे होता है।

यथास्थिति बनाये रखते हुए, लघु तकनीकि के द्वारा यदि यह प्रयोग सफल हो भी जाता है क्योंकि बड़े और छोटे क्षेत्र के बीच सहअस्तित्व जैसी कल्पना, कल्पना मात्र हो सकती है, फिर भी इसके मार्फत समानता हासिल करना कठिन होगा।

2. दूसरा मुख्य लक्ष्य है, कृषि क्षेत्र का त्वरित विकास। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादन तथा अन्य कृषि आधारित सेवा सुविधाओं का विस्तार और इन सुविधाओं का उपयोग बढ़ाने के लिए सार्वजनिक खर्चे पर अनुदान। अंशदान की मात्रा में वृद्धि। परन्तु भौमिक (अग्रेारियन) व्यवस्था में किसी प्रकार के दूरगामी सुधार पर कोई जोर नहीं दिया गया है। कहीं न तो कृषि मजदूरों की स्थिति का जिक्र है, यदि मान भी लिया जाय कि विभिन्न राज्यों में न्यूनतम मजदूरी दरें कम से कम कागज पर निर्धारित हैं, पर ये लागू भी की जायेगी इसका कोई संकेत नहीं मिलता। अनेक स्थानों पर कृषि मजदूरों और मालिकों के संघर्ष का जो आज सरकार के लिये मुख्य चुनौती हैं, उन्हें हरिजन उत्पीड़न की संज्ञा देकर उनके आर्थिक पहलू को नजर अन्दाज किया जाता है।

नई नीति नगरीय और ग्राम्य क्षेत्रों में तो विभेद करती है परन्तु अनेक वर्ग के कृषकों में कोई अन्तर नहीं करती।

इसकी मुख्य धारा अग्रेरियन पॉपुलिज्म की है, इसमें अग्रेरियन रेडीकलिज्म काम की कोई वस्तु नहीं पर सभी कृषकों को, चाहे वे भूमिस्वामी हैं या छोटे किसान, विशिष्ट वर्ग में रखती है जिन्हें राज्य द्वारा विशेष सुविधाएं देना स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार की नीति का परिणाम यह तो हो सकता है कि उपलब्ध साधनों में बढ़ोत्तरी द्वारा इनके कुछ फायदे मध्यम श्रेणी के किसानों तक पहुचें जैसे कि कुछ हद तक पहले भी हुआ है। इसकी आज अधिक गुंजाइश मालूम पड़ती है क्योंकि यह समूह राजनैतिक सत्ता में सहयोग की दृष्टि से भी आगे बढ़ा है परन्तु इससे अधिक कुछ नहीं। इस प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है, किसी भी खुली अर्थव्यवस्था में आय के पुनर्वितरण के लिए, ताकि असमानता घट सके, माली तथा अन्य कर व्यवस्था एक सक्षम हथियार होता है। कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक व्यय पर, उत्पादन और आय में वृद्धि की बात तो है पर यहां तक कि बड़े कृषकों पर भी कर लगाने का कोई घोषित इरादा नहीं है। इससे एक ओर तो उद्योग तथा अन्य विकास क्षेत्रों में पूँजी विनिवेश में कमी होगी ही, दूसरी ओर आर्थिक विषमता बढ़ेगी।

फिर जैसे कि ऊपर कहा गया है उद्योगों के लिए तो लघु तकनीकि का महत्व स्वीकार किया गया है परन्तु कृषि क्षेत्र में उपयुक्त कोई बात नहीं की गई है। इसके विपरीत कृषि में प्रयुक्त होने वाली मशीनरी की खपत को बढ़ोतरी देने की नीति अपनायी गई है। यहां तक कि दुग्ध उद्योग को बढ़ावा देने में नई आक्रामक प्रकार की तकनीकि को आधार बनाया गया है। इसलिये ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार पैदा करने के लिये निर्माण कार्य ही एक जरिया रह जाता है जिसका सतत आर्थिक लाभ, श्रमिक वर्ग को आकस्मिक

मजदूरों के सिवाय, भूमिवान वर्ग को ही अधिकांश में मिलेगा। इन निर्माण कार्यों का रख रखाव कैसे होगा यह एक दीगर प्रश्न है।

3. वर्तमान भौमिक व्यवस्था का एक भारी गुण इसका लचीलापन है। परिवारों में भूमि स्वामित्व इस प्रकार बंटा है कि जरूरत पड़ने पर बड़ा कृषक छोटा और छोटा बड़ा हो सकता है। इसलिए यह दोनों हाथों सुविधाऐं प्राप्त करता है।

   इसकी दूसरी खास विशेषता यह है कि भूमिवानों की एक बड़ी भारी संख्या ऐसी है जिनकी कृषि पूर्णकालिक व्यवसाय नहीं है। वे अधिकतर नौकरी, स्वतंत्र पेशे या व्यापार करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में भी नौकरी, स्वतंत्र पेशा, कृषि उद्योग लगाने या व्यापार के जो अवसर बनते हैं, उन्हें वह छेक लेते हैं। इस प्रकार विकास के सारे साधन उनमें केन्द्रित होते हैं। इस वर्ग के व्यक्तियों की निजी अर्थ तंत्र का विशाखन या फैलाव तो होता है और उनकी सामाजिक–राजनैतिक शक्ति तो बढ़ती है, पर सामाजिक स्तर पर अर्थ व्यवस्था का विशाखन नहीं होता। उल्टे कमजोर वर्ग के लोग विस्थापित होते हैं।

4. भारतीय समाज में जिसमें स्तरीकरण (स्ट्रटिफिकेशन) के तीनों आधारभूत कारक अर्थात जाति, सम्पत्ति और वर्ग (कास्ट, एस्टेट, क्लास) लगभग उचित स्थिति में हैं उसमें अधिकांश वाह्य साधनों से समृद्धि को रणनीति से यह व्यवस्था और सुदृढ़ हो सकती है, कम से कम इससे किसी प्रकार के संरचना परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं दीखती है। भौमिक सोपान में मध्यम स्थिति रखने वाले वर्ग के व्यक्तियों का (सामूहिक नहीं) विकास हो सकता है, परन्तु इससे पारम्परिक व्यवस्था में कोई समतामूलक परिवर्तन आने की संभावना नहीं दीखती।

5. इस नीति में घोषित नगरीय–औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार को रोकने के लक्ष्य में सफलता मिलेगी, यह सन्देहास्पद है। एक तो नीति निर्धारण में ही अन्तर्विरोध है, क्योंकि विकास की सारी प्रक्रिया गांवों का शहरों से संबंध बढ़ाने की है। कुछ महानगरों में नयें लाइसेंस न देने पर अगर पालन हो भी सके तो इससे नगर और गांवों के संबंध में विशेष अन्तर नहीं आता। गांवों में रोजगार के अवसरों और ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की और पलायन रोकना एक अलग बात है और शहरों द्वारा गांवों का शोषण रोकना दूसरी बात है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की प्रगतिशील धारा को बाँधने का प्रयास ग्रामीण समाज परिवर्तन के आन्दोलन के लिये कुछ प्रश्न अवश्य खड़े करता है।

   नई अर्थनीति शायद, केक को बड़ा होने दो फिर बंटेगा, के तरीके कुछ हद तक हटने का प्रयास करती है, परन्तु इसमें 'परिवार का खेत' और 'परिवार का उद्योग' जैसी प्रणाली अपनाकर हरेक के खाँचे में अलग–अलग केक बनाने का मसाला डालने जैसी बात है और हरेक का केक उतना बढ़ेगा जितना उसका खाँचा है। जिसके पास खाँचा ही नहीं है, उसके लिये खाँचे ढालने का एक समान्तर प्रयास (जैसे कि बहुचर्चित अन्त्योदय परिवारों के विकास की लघुतम योजना) किया जायेगा।

उत्तराखण्ड का 'चिपको' आन्दोलन (एक संक्षिप्त रूपरेखा)

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

चिपको का शाब्दिक अर्थ आलिंगनबद्ध करना होता है। यह प्रेम, समर्पण और आदर का भाव प्रदर्शित करता है। अलकनंदा घाटी के किसान और साधारण आम आदमियों ने सम्पूर्ण क्षेत्र के पेड़ों को आलिंगनबद्ध करना शुरू किया और खुद को जंगल के पेड़ काटने वाले ठेकेदारों की कुल्हाड़ियों और पेड़ों के बीच दीवार बन खड़े हो गये। ये आम जनमानस का तरीका था, अपनी जैविक सम्पदा की रक्षा का। जल्द ही यह 'चिपको आन्दोलन' बन गया।

ये अलकनन्दा घाटी के स्थानीय निवासियों का अपना ही तरीका था, सत्याग्रह का जो सन् 1972 के दिसम्बर महीने में दसौली ग्राम स्वराज्य संघ (एक स्वयंसहायता समूह) ने तब शुरू किया जब राज्य के वन विभाग ने विशाल जंगल खेल–कूद का सामान बनाने वाली कंपनी को आवंटित कर दिये। कंपनी को 'अगु' पेड़ों को काट, खेल सामग्री बनाने की स्वीकृति थी, परन्तु दसौली ग्राम स्वराज्य संघ ने इसका विरोध किया क्योंकि वह इस पेड़ की लकड़ी का इस्तेमाल कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों में करते थे। फैसला यह हुआ कि सम्पूर्ण जंगल को घेरकर हर पेड़ को आलिंगनबद्ध किया जाय ताकि पेड़ को काटने से पहले कुल्हाड़ी उनके शरीर पर पड़े। अवधारणा यह थी कि जैसे माँ अपने बच्चों को मुसीबत से बचाने के लिये आगोश में भर लेती है, वैसे ही प्रकृति, जो माँ है, उसे भी इसी तरह आलिंगनबद्ध कर शोषण से बचाया जाय। नतीजतन, स्थानीय संसाधनों का आवंटन और रख–रखाव क्षेत्रीय आबादी का फैसला हो, ऐसी रणनीति तैयार हो और वन

विभाग क्षेत्रीय लोगों की अनदेखी कर आवंटन न करे और सरकारी नीति भी ऐसी ही बने। यही चिपको आन्दोलन की मुख्य पृष्ठभूमि एवं उद्देश्य बना।

औपनिवेशिक पद्धति : –

यह क्षेत्र 1815 में औपनिवेशिक भारत में परिवर्तित हो गया, सिवाय टिहरी के जो एक स्टेट था। इतनी धनी और विविध जैव सम्पदा की अनदेखी करना औपनिवेशिक ताकतों के लिए सम्भव नहीं था। परिणामस्वरूप सन् 1893, में इस जैव सम्पदा का व्यवसायिक दोहन शुरू हुआ। ज्यादा से ज्यादा लकड़ी की मांग तेजी से बढ़ रही थी। स्मरण रहे कि यह वक्त प्रथम विश्वयुद्ध का था और रेलवे का जाल सुगमता के लिए बढ़ रहा था। जंगलों पर औपनिवेशिक ताकतों का एकाधिकार बढ़ता जा रहा था। सन् 1911 से 17 तक सम्पूर्ण वन क्षेत्र सरकारी आरक्षित वन क्षेत्र में तब्दील हो चुका था। सरकारी कर्मचारियों, जिन्हें इन वन क्षेत्रों की निगरानी हेतु लगाया गया था, ने स्थानीय नागरिकों को बेगारी पर लगा दिया। कालान्तर में, सन् 1930 में स्थानीय किसानों ने टिहरी स्टेट के विरुद्ध आन्दोलन की शुरुआत कर दी। यह इस इलाके की असहयोग आन्दोलन में प्रतीकात्मक संलिप्तता का द्योतक है। इसके फलस्वरूप सरकार ने कुमाऊँ कमेटी की स्थापना की जिसने सम्पूर्ण वन क्षेत्र को दो हिस्सों में बाँटने की संस्तुति की। पहले वे जंगल, जिनका अव्यवसायिक मूल्यांकन किया गया और उन्हें रख–रखाव के लिये राजस्व विभाग के सुपुर्द कर दिया गया। ऐसे वनों को सिविल अथवा प्रोटेक्टेड वनों की संज्ञा दी गयी। इसके पीछे अवधारणा यह थी कि स्थानीय नागरिक इन जंगलातों का प्रयोग जलावनी लकड़ी, चारे और इमारती लकड़ी के लिए कर सकते हैं। परन्तु राजस्व विभाग में फैले भ्रष्टाचार और अव्यवहारिक, अवैज्ञानिक रख–रखाव की पद्धति ने इन जंगलों का विनाश कर दिया। यह समझौता सन्

1922 में हुआ था और आजतक इसमें कोई बदलाव नहीं हुआ जबकि जनसंख्या इस कालखण्ड में कई गुना बढ़ गयी और जलावन की लकड़ी, चारे और निर्माण के लिए लकड़ी की आवश्यकता भी कई गुना बढ़ गयी।

औपनिवेशिक प्रशासन की वन नीति का दूसरा एक पहलू यह है कि इसने जंगल काटने वाले ठेकेदार, जिन्हें स्थानीय बोलचाल की भाषा में 'मालदार' कहा जाता है, की फौज खड़ी कर दी। कृषि पर आधारित गरीब स्थानीय जनसंख्या में इन मालदारों का वैभव और गरीब किसानों की दरिद्रता दोनों बढ़ती गयी। कालान्तर में इन मालदारों को राय साहब या रायबहादुर की पदवी भी प्राप्त हो गयी। आजादी के बाद ये ही मालदार भद्रजन बन भारतीय राजनीति का हिस्सा बन गये।

अंग्रेजी प्रशासन ने स्थानीय जंगलों का प्रारूप ही बदल दिया। उन्होंने स्थानीय लोगों की चारे, जलावन, मृदा और जल संरक्षण की जरूरतों को अनदेखा कर व्यावसायिक जंगलात लगा दिये। आजादी के बाद कई कमेटियों द्वारा सुझाव देने के विपरीत इस इलाके में औपनिवेशिक जंगलों का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। आजादी के बाद वन विभाग इस इलाके का सबसे बड़ा जमींदार बन गया। कृषि योग्य भूमि की कमी और तराई इलाके में बाहरियों का बसाव इस इलाके के गरीब किसानों के प्रवजन का कारण बना। बड़ी संख्या में इस इलाके के जवानों ने फौज में भर्ती ले ली, पीछे रह गयीं सिर्फ इन परिवारों की महिलायें। बहुतेरे अन्य छोटे–मोटे कार्यों में जीविकोपार्जन तलाशने के लिए मैदानी इलाकों में आ गये। यह सम्पूर्ण इलाका डाकू आधारित अर्थव्यवस्था का द्योतक हो गया। यही सारे कारण सम्मिलित रूप में चिपको आन्दोलन का कारण बनें। इस आन्दोलन ने योजनाकर्त्ताओं की आँखें खोल दीं। अब यह सर्वविदित हो चुका था कि कुमाऊँ और गढ़वाल हिमालय के जंगलों का

संरक्षण तब तक नहीं किया जा सकता जब तक क्षेत्रीय किसानों की समस्या का समाधान एवं संरक्षण कार्यों में उनकी प्रतिभागिता संरक्षित ना हों।

सर्वोदय समूह ने सदैव ही जनमानस के कल्याण में समर्पित वन नीति की वकालत की है। इनका मानना है कि तत्कालीन नीतिगत ढाँचे में स्थानीय लोगों का विकास सम्भव नहीं है। सर्वोदय समूह ने 30 मई, 1930 को 'जंगल अधिकार' दिवस की तरह मनाना शुरू किया, क्योंकि इसी दिन किसानों ने ऐतिहासिक आन्दोलन जंगलों को बचाने के लिए किया था।

इलाके में चीड़ के पेड़ के राल से निर्मित तारपिन के तेल बनाने की इकाइयाँ विगत कई दशकों से चली आ रही हैं। राजस्व एवं वन विभाग की मिलीभगत से इन इकाइयों को परेशान करने हेतु चीड़ की राल की सप्लाई पर अंकुश लगाकर तारपिन के तेल का दाम बढ़ाने की चेष्टा की गयी। सरकारी विभागों की इस दमनकारी नीति के कारण ऐसी इकाइयों में कार्यरत तमाम लोग भुखमरी के कगार पर आ गये। ऐसी परिस्थिति में स्थानीय नागरिकों का उद्वेलित एवं उत्तेजित होना लाजमी था। कमोवेश इसी समय वन एवं राजस्व विभाग की जमींदारी का एक और पहलू सामने आया जब इन विभागों ने अलकनन्दा घाटी के अगु वृक्षों का आवंटन एक खेल सामग्री बनाने वाली बड़ी कम्पनी को कर दिया। इस वृक्ष की लकड़ी का इस्तेमाल कृषि में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों के लिए किया जाता है। पहले से ही आक्रोशित किसानों ने 'चिपको' की शुरुआत कर दी। चिपको आन्दोलन सिर्फ विरोध दर्ज करने का साधन नहीं था, अपितु सर्वोदय आन्दोलन से जुड़े कार्यकर्त्ता एवं शिक्षा क्षेत्र से जुड़े हुए युवा इस पूरे आन्दोलन को जागरूकता फैलाने का माध्यम बना दिये। नतीजतन वृक्षारोपण और वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटायी पर जनता द्वारा स्वतः रोक लगा दी गयी। प्राकृतिक संसाधनों

(जल, जंगल एवं जमीन) के संरक्षण हेतु चिपको आन्दोलन आम जनमानस द्वारा स्वस्फुटित वरदान साबित हुआ। चिपको आन्दोलन सर्वोदय विचारधारा एवं क्रान्ति का जीता–जागता उदाहरण है।

पत्नी शीला जुयाल के साथ

संथाल परगना

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

वर्तमान का संथाल परगना नग्गर जागीर, वीरभूम का हिस्सा हुआ करता था। पराधीन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ने बहुत ज्यादा पैसा लगाकर औपनिवेशिक कृषि का विकास किया। डा0 बाटन (जो कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि थे) ने एक बीमार मुगल राजकुमार का इलाज कर बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापार करने की अनुमति मुगल अनुकम्पा पर प्राप्त करवाई। कालांतर में कम्पनी बहादुर को दीवानी अधिकार भी प्राप्त हो गये। मुगल बादशाह शाह आलम–द्वितीय ने इलाहाबाद समझौते (1765 ई0) में सम्पूर्ण संथाल परगना, भागलपुर, मुंगेर एवं हजारीबाग का क्षेत्र कंपनी बहादुर को सौंप दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शोषण से परेशान हो कर विद्रोह की पहली शुरुआत भी संथाल परगना से ही हुई थी।

सन् 1770 में पहाड़िया आदिवासियों द्वारा किया गया विद्रोह अंग्रेजों के खिलाफ पहली आदिवासी कृषक क्रान्ति के रूप में जाना जाता है।

1855 में संथाल परगना को एक अलग प्रान्त का दर्जा दे दिया गया। ये थी एक ब्रिटिश साम्राज्य की तुष्टिकरण की नीति, ताकि संथाली विद्रोह को क्षणिक तौर पर दबाया जा सके।

संथाल परगना का निर्माण भागलपुर और वीरभूम प्रांतों को काट कर हुआ था और यहाँ के नियम कानून अलग थे। ब्रिटिश साम्राज्य अभिजात्य वर्ग ने संथाल परगना में नील की खेती की ऐसी व्यवस्था बनायी कि उनके इस दमनकारी रवैये की जवाबदेही (किसी प्रकार की) किसी से भी न बने। सहायक आयुक्त पद पर एक ब्रिटिश अधिकारी की नियुक्ति की गयी

जिसने संथाल परगना को चार प्रशासनिक खण्डों में विभाजित कर दिया। अंत में हुआ वही। चारों प्रशासनिक खण्डों और संथालियों को एक दूसरे के विरुद्ध लड़ा कर 'फूट डालो, और राज्य करो' की नीति को पुनः सही साबित किया।

कालांतर में जमींदारों के साथ मिलकर अंग्रेज यहाँ स्वयं सबसे बड़े जमींदार बन गये। मुगल काल में संथाल परगना में सामरिक रूप से महत्वपूर्ण दर्रों की सुरक्षा की जिम्मेदारी खेतुरी मुखियाओं की थी। अंग्रेजों ने घाटवली सूबे को मान्यता दे कर यहाँ संथाली आदिवासियों से जंगलों को साफ कर औपनिवेशिक खेती की शुरुआत की।

सन् 1770 के अकाल ने इस संथाल परगना की विस्फोटक स्थिति को और बढ़ा दिया। अंग्रेजों ने बड़ी बर्बरता के साथ इस विद्रोह को कुचल दिया।

बाबा तलीका माँझी को भागलपुर में सार्वजनिक रूप से फाँसी दे दी गयी। अंग्रेजी सेना के गवर्नर कप्तान कुक ने इस पूरे विद्रोह को लूटपाट और डकैती का नाम दे दिया। और तुरंत ही उठने वाले घुइंयां आदिवासी विद्रोह को भी 'फूट डालो, राज्य करो' की नीति को अपना कर कुचल दिया। नये कलेक्टर "क्लीवलैण्ड" ने सन् 1779 में पहाड़िया आदिवासियों को प्रशासकीय व्यवस्था में शामिल किया और हर गाँव में प्रमुख, माँझी और सूबे में सरदारों की नियुक्ति की। दिखावे के लिये उन्होंने आदिवासियों को लगान मुक्त कर दिया लेकिन जमींदारों से तो लगान लेते रहे और जमींदार आदिवासियों से। इस तरह से सीधे तो नहीं परंतु अप्रत्यक्ष रूप से आदिवासियों का शोषण होता रहा। विद्रोह की चिंगारी ललितपुर में भी उठी थी। यहाँ विजय माँझी को एक डीकू सूदखोर ने फर्जी मुकदमे में फँसा कर जेल भिजवा दिया, जहाँ विजय माँझी की मृत्यु भागलपुर कारागार में बगैर सुनवाई के ही हो गयी। विजय

माँझी के बेटों, 'चंद्राई' और 'सिंगेराई' ने विद्रोह की शुरुआत की और 30 जून 1885 को विद्रोही संथाल संगठन ने एक नये लगान की घोषणा कर दी जिसे "जोहार देवा" का नाम दिया गया। इसकी दरें निम्नलिखित थीं –

2 आना – भैंस और हल

1 आना – बैल और हल

1/2 आना – गाय और हल

बाद में इसी आन्दोलन को संथाली 'हल आन्दोलन' का नाम दिया गया। कमोबेश आदिवासियों का शोषण आजादी के काफी बाद तक भी जारी रहा। आजादी के तुरंत बाद सम्पूर्ण संथाल परगना निम्न भूमि पट्टों में विभाजित था –

1. घाटवली – पूरा देवहार, जामताड़ा और दुमका इस घाटवली पट्टे का हिस्सा थे। ये पट्टे मुगलों ने खेतुरी प्रमुखों को पहाड़ी रास्तों की सुरक्षा के लिये दिये थे।
2. घाट चौकीदार जागीर – ये भी सेवा के फलस्वरूप बाँटे हुए पट्टे थे (ज्यादातर जामताड़ा में)। अंग्रेजों ने समयानुसार इन पट्टों को वापस ले लिया और सेवा के बदले रकम देना शुरू कर दिया।
3. मूल रियाया – यह पट्टे गाँव के प्रमुखों को और उनके वारिसों को दिये गये। मूलतः इनका काम लगान लेना और गाँव में कानून व्यवस्था को बनाये रखना था।
4. प्रधानी – मूल रियाया के समकक्ष परंतु इसमें जमीन का मालिकाना वारिसों को नहीं दिया गया।

जमींदारी उन्मूलन के समय संथाल परगना में कुल सात जमींदारियां थीं, जिनमें अधिकांश मालिकाना अधिकार और बाकी अल्पकालीन पट्टे थे।

शेरपुर नरसंहार –
शोषण के विरुद्ध 'ना' कहने की कीमत

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
मई, 1975, गाँधी विद्या संस्थान

शेरपुर जो कि उत्तर प्रदेश के गाजीपुर में भूमिहार बाहुल्य गाँव के रूप में जाना जाता है और जिसे एशिया का सबसे बड़ा गाँव होने का गौरव प्राप्त है, उसी शेरपुर गाँव में अप्रैल, 1975 में खून जमा देने वाली एक ऐसी दर्दनाक घटना घटी जिसको भविष्य में भुलाना संभव नहीं हो पायेगा।

प्रदेश में जितनी भी घटनायें आजतक जातिवाद पर घटी थीं, यह घटना उन घटनाओं से अधिक क्रूरतापूर्वक की गयी थी। ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति और समाज को बदलते हुए समय के साथ अपने को भी बदलने का प्रयास करना चाहिये। लेकिन ऐसा होता प्रतीत नहीं हो रहा है।

शेरपुर गाँव में जाति व्यवस्था का बंधन इतना मजबूत था कि सवर्ण जाति के लोग दलित जाति के लोगों को पूरी तरह से एक सामान्य जाति का इंसान मानने को तैयार नहीं थे।

यह सब तब शुरू हुआ जब गाँव के एक हरिजन, राधेश्याम, ने अपनी बहन के साथ अपने मालिक (जिनके यहाँ वो नौकरी करता था) श्री पारस राय (जो कि एक ताकतवर भूमिहार थे) के खेत पर काम करना बंद करके दूसरे के खेत पर अपनी बहन के साथ काम करना शुरू कर दिया। लेकिन ये बात पारस राय को इतनी नागवार लगी कि उन्होंने राधेश्याम और उसकी बहन को बहुत ज्यादा भला–बुरा कहते हुए शारीरिक दण्ड दिया। जब दोनों भाई–बहन रोते हुए हरिजन बस्ती पहुँचे तो लोगों के पूछने पर उन्होंने वहीं घटनायें लोगों को बताई जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। जाहिर सी बात है कि

हरिजन बस्ती के लोगों को गुस्सा आना स्वाभाविक था और आया भी लेकिन उस रोष को जो समस्त हरिजनों के मन में उठा था किसी ने भी उसे शब्द का रूप देने की (भूमिहारों के विरुद्ध) हिम्मत नहीं की।

राधेश्याम और उसका मित्र बनारसी दोनों ही उस रात न तो काम पर अपने–अपने मालिकों के यहाँ गये और न ही अपने घरों पर रात में आये।

26–27 अप्रैल को उस गाँव में ऐसी चिंगारी (जो जात–पात से ओत–प्रोत थी) जली कि आने वाले समय में पूरे गाँव को अपने दावानल में बहुत कुछ हद तक जलाकर खत्म कर देने के लिये पर्याप्त थी। हुआ यह कि दो भूमिहार, श्री रामचन्द्र राय और श्री मंगला राय, अपने खेतों (फार्म हाउस) पर मरे पाये गये। इन दोनों को मारने में गोली, हँसिया और गँड़ासे का प्रयोग हुआ था। मारने वालों ने एक और भूमिहार जगदीश राय को भी मारने का प्रयास किया था लेकिन घायल होने के बावजूद वो वहाँ से भाग निकले और उन्होंने ही गाँव के समस्त भूमिहारों को एक जगह बुलाकर सबको उस घटना के बारे में बताया और यह भी बताया कि उनको मारने वाले सभी दलित थे और राधेश्याम, बनारसी, बनारसी का छोटा भाई, गंगासागर, शिवनाथ (जो कि प्राइमरी स्कूल में पास के कस्बे में अध्यापक था) ने मिलकर उनको मारा। गाँव की ही छोटी सी पुलिस चौकी में इस घटना को दर्ज करा दिया गया और साथ ही घटना में ऊपर के पुलिस अधिकारियों के संज्ञान में डाल दिया। लेकिन भूमिहार जाति के लोगों में इस बात को लेकर इतना गुस्सा था कि वे दलितों को खुद ही दण्ड देना चाहते थे और ऐसा कर पाने में वे सफल भी हो गये। सबसे पहले बनारसी को खलिहान से उन्होंने पकड़ा और उसके बाद राधेश्याम को भी उसके घर से पकड़ा और उन दोनों को क्रूरता की सारी हदें पार करते हुए सार्वजनिक रूप से अपनी क्रूरता

एवं ताकत का प्रदर्शन करते हुए शारीरिक रूप से दण्डित किया। उन लोगों ने जब पानी और दया की भीख माँगी तो उन्हें फिर से पीटा गया। किसी को भी दया नहीं आयी। गाँव के चौकीदार से मरते वक्त बनारसी ने कहा "काका, पानी!" चौकीदार उसे पानी पिलाकर कुछ पुण्य कमाना चाह रहा था किन्तु उसे ऐसा करने से रोक दिया गया। तीसरा आदमी, शिवनाथ, जो कि प्राथमिक स्कूल में शिक्षक भी था, ऐसा माना जा रहा था कि वो एक 'नक्सली नेता' था, उसने स्वयं को गाजीपुर पुलिस से अंततः गिरफ्तार करवा लिया। अब इन्हीं में से एक आदमी जो कि बनारसी का छोटा भाई था और नाबालिग भी था, जहाँ भी पुलिस के पास मदद मांगने के लिये गया, किसी ने भी उसकी मदद नहीं की बल्कि उसे हर जगह से बेइज्जत करके भगा दिया गया।

खैर, जो भी उस गाँव में भूमिहार जाति के लोगों ने दोनों हरिजनों के साथ किया था वो उससे भी संतुष्ट नहीं थे इसलिये उन्होंने योजनाबद्ध तरीके से जितना भी मिट्टी का तेल (केरोसिन तेल) सभी भूमिहारों के पास था, उसे इकट्ठा किया और "सरकारी राशन की दुकान" से जितना भी केरोसिन तेल मिल सकता था, उसे भी इकट्ठा किया और उसके बाद जैसा कि पुलिस की प्रारम्भिक रिपोर्ट में लिखा है कि लगभग 600 से 700 लोगों ने दलितों की बस्ती को घेर लिया और उन्होंने सर्वप्रथम उनके घरों को लूटा, फिर अच्छी नस्ल के जानवरों को उनकी बस्ती से बाहर निकाला ताकि अब वे उनका इस्तेमाल कर सकें और समस्त हरिजन बस्ती को आग के हवाले कर दिया।

पूरी बस्ती में लगभग 550 झोपड़ियाँ व मकान थे जिनमें से सिर्फ चार मकानों को इसलिये नुकसान नहीं पहुँचा था क्योंकि 3 मकान भूमिहारों के और एक मकान यादव जाति के व्यक्ति का था। बाकी सभी मकान व झोपड़ियाँ राख कर दी गईं।

आज भी अगर देखा जाय तो दलित बस्ती के घर सामान्यतः तीन तरह के होते हैं – प्रथम उस तरह की झोपड़ियाँ जो सामान्यतः पुवाल से बनी होती हैं, द्वितीय प्रकार की मिट्टी और बड़े पेड़ की पत्तियों से बनी होती हैं और तृतीय उस तरह की झोपड़ियाँ जो खपरैल और मिट्टी से बनी होती हैं। तीसरी तरह की झोपड़ियाँ सामान्यतः थोड़े सम्पन्न दलितों की होती हैं। ऐसा ही उस समय भी था। समस्त दलित बस्ती तीन भागों में बँटी हुई थी, झोपड़ियों की बनावट के आधार पर।

भूमिहारों की तरफ से ऐसा कहा जाता रहा कि उन्हीं लोगों में जिनकी झोपड़ी मिट्टी और पेड़ के पत्तों से बनी थी, उन लोगों ने ही सबसे पहले झोपड़ियों में आग लगायी। ऐसा करते ही आस–पास की झोपड़ियाँ चारों तरफ से आग की लपटों से घिर गयीं।

इस नृशंस व निर्मम कृत्य के दो–तीन दिन बाद तक भी दलितों की बस्ती के कुछ घर अब भी सुलग रहे थे और साथ ही दलितों के अरमान भी। भण्डार घर (जहाँ अनाज रखा जाता है) भी पूरी तरह से जल चुके थे। शादी–विवाह के लिये लोगों ने जो चीनी अपने भंडार घर में रखी थीं वो भी जलकर खाक हो गयी थीं और कुछ ऐसे लोग जो नाचने–गाने का कार्य करते थे (भाँडमंडली), उनकी आशाएं भी पूरी तरह से खत्म हो चुकी थीं। औरतें रो रही थीं और घर तथा जले हुए अनाजों को अफसोस पूर्वक देख रही थीं। पुरुशों की आर्थिक स्थिति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वे एक बीड़ी पीने का खर्च वहन कर पाने में समर्थ नहीं रह गये थे।

लगभग 150 लोग गायब हो गये थे लेकिन समझा ऐसा गया था कि ये लोग अपने रिश्तेदारों के यहाँ चले गये थे। बहुत से लोगों का यह मानना था कि 20 से 25 लोगों को भूमिहारों ने जिंदा ही आग में फेंक दिया था। यद्यपि इसका

सही तरह से अनुमान लगा पाना भूमिहारों के लिये भी संभव नहीं था।

वास्तव में जिन लोगों ने और जिन कुछ पुलिस वालों ने इस घटना को देखा था, कोई भी हरिजनों का साथ देने के लिये तैयार नहीं था। सबसे बड़ी विडम्बना ये थी कि जब भूमिहारों ने पुलिस वालों को बस्ती के पास आते हुए देखा तो वे स्वयं भी दलितों को दिखावे के लिये बचाव के काम में लग गये। जबकि सच ये था कि भूमिहारों की संख्या भी पुलिसवालों से ज्यादा थी और उनके पास हथियार भी पुलिसवालों से ज्यादा थे।

लगभग 30 बच्चे और महिलायें इस तरह से डर कर छुपे हुए थे कि कहीं उनको भी दूसरे लोगों की तरह आग में जिंदा न जला दिया जाय। लगभग 3 दर्जन जानवर भी पूरी तरह से आग में जल गये थे लेकिन बहुत बड़ी संख्या में भूमिहारों ने बहुत अच्छी नस्ल के जानवरों को अपने लाभ के लिये सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिया था। जब बाद में आर्थिक सर्वे किया गया तो ये निष्कर्ष निकला कि लगभग 3 लाख का नुकसान दलितों का हुआ था।

इस पूरी घटना, जिसमें भूमिहारों और दलितों, दोनों पक्षों से लोग मारे गये थे, से यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि वास्तव में दोषी पूरी तरह से कौन था?लेकिन जो दिखाने का प्रयास किया जा रहा था उस आधार पर हरिजन दोषी ज्यादा लग रहे थे। लेकिन अगर राधेश्याम और उसके साथी को बदला ही लेना था तो वे पारस राय को भी मारते, उन्होंने रामचन्द्र राय और मंगला राय को ही क्यों मारा?सबसे विचित्र बात ये भी थी कि राधेश्याम भी इन लोगों को अच्छा आदमी मानता था और जिस तरह से गोलियों के निशान इन लोगों के शरीर पर मिले थे, वैसा कोई भी हथियार दलित बस्ती में नहीं मिला था। घटना के तथ्यों पर एक नजर डालते हुए यह स्पष्ट

था कि, भूमिहारों द्वारा किसी भी प्रकार का प्रतिकार अस्वीकार्य था और अंदर ही अंदर समस्त भूमिहार जाति के लोग गुस्से से सुलग रहे थे। ऐसा सम्भवतः इसलिये था कि शुरू से ही भूमिहार जाति वहाँ दबंग जमींदारों के रूप में देखी जाती थी और अपने अहम को पूरा करने के लिये किसी भी स्तर तक जाने को तैयार रहती थी। समस्त घटनाओं को देखने के बाद कभी–कभी ये भी लगता था कि ये काम भूमिहार जाति के लोगों ने खुद न कर के कुछ लोगों को किराये पर ले कर करवाया था। सच चाहे जो भी हो, रामचन्द्र राय और मंगला राय का किसी से कोई विवाद नहीं था। दोनों ही अपने हिस्से की जमीन लेकर सीवान में अपना खेती का कार्य करते थे। दूसरी तरफ जगदीश राय ने जिन चारों हरिजनों को दोषी बताया था, उनके खिलाफ तो वारंट भी जारी कर दिये गये थे लेकिन भूमिहारों के खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हो पा रही थी।

अगर जनसंख्या को आधार बनाकर बात की जाय तो शेरपुर कई छोटे कस्बों से भी बड़ा गाँव था। 1971 की जनगणना के आधार पर उस समय वहाँ की आबादी 20 हजार के आस–पास थी। उसी गाँव के एक बड़े जमींदार शिवपूजन राय, जिन्होंने अगस्त 1942 में ब्रिटिश सरकार के खजाने को मोहम्दाबाद में लूटा था और मोहम्दाबाद में ही तहसील की इमारत पर तिरंगे को फहराने की कोशिश करते हुये पुलिस वालों की गोलियों से मार दिये गये थे। ये बात भी भूमिहारों के लिये गर्व की बात थी। अभी हाल ही में शेरपुर गाँव का नाम 'शहीद नगर' रखने की कोशिश की गयी लेकिन कुछ उच्च जाति के लोगों को यह बात इसलिये नहीं पसंद आयी क्योंकि उस सम्मान समारोह में यादव जाति के लोग भी शामिल होते। यह बात पुलिस के दस्तावेजों से प्रमाणित होती है। आज भी शेरपुर जाने के लिये कोई बहुत अच्छी व्यवस्था नहीं है। किसी

को भी वहाँ पहुँचने के लिए 4 किलोमीटर की पगडंडी का ही सहारा लेना पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ भी ऐसी कि शेरपुर दक्षिण की तरफ से गंगा जी से घिरा था और उत्तर की तरफ से यातायात व्यवस्था अच्छी नहीं थी। इस वजह से भी भूमिहार जाति के लोगों को दलितों को अपनी तरफ मोड़ने में ज्यादा आसानी हुयी।

शेरपुर लगभग पूरी तरह से भूमिहार जाति के लोगों का गाँव था। सिर्फ कुछ जमीनों पर अधिकार यादव जाति के लोगों का था। इन्हीं सब वजहों से भूमिहारों को चुनौती दे पाना किसी के लिये संभव नहीं था। एक कारण और भी था कि इन लोगों में आपस में बहुत एकता थी।

भूमिहार जाति के लोगों की ताकत का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि कोई सरकारी अफसर भी उस गाँव में रुक कर तभी तक काम कर सकता था जब तक वो लोग चाहते थे। अभी कुछ दिनों पहले ही कुछ सरकारी अफसरों को सार्वजनिक रूप से इस कदर पीटा गया था कि उन्होंने गाँव ही छोड़ दिया।

सन् 1973 में पहली बार पंचायती चुनाव में भूमिहारों के अलावा कोई यादव जाति का उम्मीदवार चुनाव में खड़ा हुआ। ये अलग बात है कि उस चुनाव में विजय भूमिहार उम्मीदवार की हुई। लेकिन आश्चर्यजनक बात ये थी कि दूसरे उम्मीदवार को हरिजनों और यादवों की एकजुटता की वजह से लगभग 120 वोट मिले थे। लेकिन वोटों के इस तरह बँटने से आने वाले समय में खतरे की घंटी बजने की संभावना ज्यादा हो गयी थी। इस तथ्य के मद्देनजर भूमिहार हरिजनों से खार खाये बैठे थे। एक सहदेव राम के अलावा समस्त हरिजन बस्ती पूरी तरह से भूमिहारों की दया पर आश्रित थी। सहदेव राम के ही पास सिर्फ दो बीघा जमीन थी।

भूमिहारों ने अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिये जिन

जमीनों का पट्टा हरिजनों के नाम था, उसे आगम अभिलेखन में एक भूमिहार जमींदार की कृषि भूमि दिखा रखा था।

किसी लेखपाल की भी हिम्मत इस सच को बताने की नहीं थी। ऐसी ही बहुत सी जमीनों को (करीब सौ बीघा) जो सरकारी अभिलेखों में ज्यादा थी, उसे गंगा की कटान में दिखा दिया। कुछ भूमिहार नेताओं ने राजनीति से प्रेरित हो या राजनीतिक फायदे के लिये भूमिहारों की हत्या को नक्सली हमले का जामा पहनाने की कोशिश की। दो भूमिहारों की हत्या नक्सलियों के नाम पर मढ़ना उनकी सोची–समझी साजिश थी।

शेरपुर की घटना को कोटवा नरायनपुर और सुरनी गाँव से भी जोड़कर देखा जा रहा था, जहाँ कुछ समय पूर्व ही नक्सली हमले हुए थे।

लखनऊ के खुफिया विभाग द्वारा दो बार तफ्तीश करने पर ये पता चला कि सभी घटनायें नक्सलियों से प्रभावित थी। यह खुफिया एजेंसियों एवं राजनीतिक पार्टियों की साठगाँठ को दर्शाता है कि तीनों घटनाओं में शामिल किये गये पर्चे पास के ही छापेखाने में छपे हुए थे और उनका संबंध किसी भी नक्सली संगठन से नहीं था।

दियारा क्षेत्र में जबरन फसल काट लेना एक पुरानी प्रथा रही है। हो सकता है कि कुछ हरिजनों ने भी इसका प्रयास किया हो लेकिन कोटवा नारायनपुर की घटना दो परस्पर विरोधी भूमिहारों की आपसी वैमनस्यता का नतीजा थी जिसे भूमिहार जमींदारों ने नक्सली जामा पहनाकर राजनैतिक रंग देने की कोशिश की थी।

नक्सली परिप्रेक्ष्य को हथियार बना भूमिहारों ने स्थानीय प्रशासन पर दबाव बनाना शुरू किया। जिलाधिकारी चूँकि हरिजन था, तो भूमिहारों ने उसपर नक्सली होने का आरोप मढ़ा। दीवानी बार एसोशियेसन में भी एक ऐसा ही पत्रक

जिलाधिकारी के विरोध में अग्रसारित किया गया। यहाँ रोचक तथ्य ये है कि दीवानी एसोशियेसन में तकरीबन 20 भूमिहार (लगभग अस्सी प्रतिशत) शेरपुर के ही थे।

राजनेताओं ने, खासकर सत्ताधारी पार्टी ने (कांग्रेस, जिसके मुख्यमन्त्री श्री हेमवन्ती नन्दन बहुगुणा थे) इस परिप्रेक्ष्य में कुछ नहीं किया। उनका मानना था कि जो भूमिहारों ने किया वो गलत था लेकिन हरिजन नक्सलियों ने जो किया वो ज्यादा गलत था। प्रशासन का मानना था कि इस समय भूमिहारों पर की गयी कोई भी कार्यवाही इस संपूर्ण प्रकरण को और विस्फोटक बना देगी। देखा जाय तो शेरपुर की घटना इस आत्ममंथन की तरफ प्रेरित करती है कि कैसे राजनीति और अभिजात्य वर्ग हरिजन समूहों का उत्पीड़न करते हैं।

राजनीतिक संरक्षण प्राप्त अभिजात्य वर्ग के दबंगों द्वारा दलितों का दमन व सरकारी एजेंसियों द्वारा मूकदर्शक की भूमिका में रहना, आने वाले समय में कई नक्सली आन्दोलनों को जन्म देगी, ऐसा मेरा मानना है।

विदेशी प्रतिनिधि मण्डल के साथ

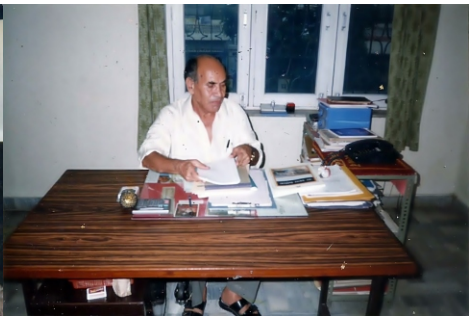

अपने कार्यालय में

बाल–अधिकार कार्यशाला
(24 तथा 25 सितम्बर 1990)
बाल श्रम : घोर परिश्रम जारी है

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल, गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी
उ0 प्र0 स्वैच्छिक स्वास्थ्य संगठन, वाराणसी
(यू0 पी0 वी0 एच0 ए0)
यूनिसेफ (लखनऊ क्षेत्रीय कार्यालय)

बाल–अधिकार, एक विशेषाधिकार

एक भारतीय बच्चे का शब्दचित्र बनाना असम्भव की सीमा तक दुष्कर है। बचपन की अवधारणा तथा अनुभव सामाजिक, सांस्कृतिक और यहाँ तक कि न्यायिक सन्दर्भ में भी बहुत ज्यादा अलग हो जाते हैं। हम धीरे–धीरे यह भी महसूस करने लगे हैं कि यह लैंगिक आधार पर भी अलग है। नियंत्रक तथा धनी वर्ग में सभी कालों तथा सभी समाजों में बचपन विद्यालयों तथा घरों में स्वेच्छा तथा आनन्द से व्यतीत किया गया एक लम्बा समयकाल है। इसके विपरीत जनसाधारण में बचपन अतिशीघ्र समाप्त हो जाता है। बचपन धनी वर्गों के बच्चों के लिए एक विशेषाधिकार है। बाल अधिकार आन्दोलन इसी विशेषाधिकार को धनी वर्ग से जनसाधारण की ओर समान रूप से पहुँचाने के लिए प्रारम्भ किया गया है। यद्यपि हमने बाल कल्याण की ओर कुछ धीमी प्रगति की है फिर भी इस परिप्रेक्ष्य में बाल अधिकारों की छवि हमारे देश में दरअसल अत्यधिक वीभत्स है। विभिन्न क्षेत्रों के मध्य विषमताओं को समाप्त करने के लिये 1975 में संयुक्त प्रगति (बाल) सेवाएँ प्रारम्भ की गईं, जो कि सामान्य रूप में बाल–अधिकारों के लिए उठाया गया प्रथम कदम था। पूर्ण रूप से बाल कल्याण विधान कुछ प्रमुख क्षेत्रों पर केन्द्रित है। 1) कार्यशील बच्चे 2) उपेक्षित बच्चे

3) कमजोर वर्ग के बच्चे जैसे कि सताये गये बच्चे, विस्थापित बच्चे, गृहहीन बच्चे।

बालश्रम में उपर्युक्त सभी श्रेणी के बच्चों को सम्मिलित किया जाता है क्योंकि ये सभी वंचित वर्ग के बच्चे हैं। आधुनिक भारत में बालश्रम, शोषण के सर्वाधिक निम्न स्तर को प्रयुक्त करता है। जब देश आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर था तभी हमें बालश्रम की समस्या का सामना करना पड़ा। हम सभी जानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष 1979 ने हमें बालश्रम की कठोर सच्चाई से अवगत कराया। 1980 के सम्पूर्ण दशक में बालश्रम को कुछ विशेष उद्योगों में तथा सेवा सम्बन्धी कार्यों में जुड़ने से रोका गया। लेकिन कृषि क्षेत्र में बालश्रम के सम्बन्ध में कुछ भी कदम नहीं उठाए गए। क्योंकि कृषि क्षेत्र में पारिवारिक गतिविधि के माध्यम से पूरा परिवार श्रम करता था तथा उन्हें उस शोषण का सामना नहीं करता था जो उद्योगों तथा सेवा क्षेत्र में था। जो भी अनुसन्धान हुए उनका निष्कर्ष यही निकला कि बालश्रम की समस्या निर्धनता के कारण उत्पन्न होती है। 1980 के दशक के अन्त में नया बालश्रम कानून बना जो कि 1986 से पूरे देश में लागू हो गया।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जनमत सर्वेक्षण से यह सिद्ध हो गया कि जनमत बालश्रम के विरोध में है। भारत के वृद्ध मध्यमवर्ग तथा गैर सरकारी संगठनों ने इसके विरोध में तथा समस्या को समाप्त करने के लिए अनिवार्य कदम उठाने प्रारम्भ किये। 1981 की जनगणना से यह ज्ञात हुआ कि एक करोड़ पैंतीस लाख बच्चे भारत में कार्यरत हैं। राष्ट्रीय संगठन ने जबकि 1983 में इन्हें एक करोड़ तिहत्तर लाख बताया। यह दोनों ही संख्या कम थी क्योंकि अत्यधिक बच्चे उन कार्यों में गतिशील थे जो गैर–उत्पादक थे।

अत्यधिक महिला बच्चे, जो कि गैर उत्पादक कार्यों में संलग्न थीं, उन्हें इसमें सम्मिलित नहीं किया गया था।

उत्पादक कार्यों में लड़कों तथा लड़कियों का अनुपात 2:1 था, वहीं गैर उत्पादक कार्यों में लड़कियों की संख्या लड़कों से काफी अधिक 2.51 प्रतिशत थी। राष्ट्रीय श्रम मंत्रालय ने इनकी सही संख्या के बारे में जानने के लिए एक प्रायोजित कार्यक्रम प्रारम्भ किया जिससे इनकी संख्या 4 करोड़ 40 लाख ज्ञात हुई। योजना आयोग की अधिसूचना से ज्ञात हुआ कि बालश्रम की संख्या में तिगुनी दर से वृद्धि हो रही है तथा सरकार द्वारा इसको नियंत्रित करने के सभी प्रयास बेअसर साबित हो रहे थे।

कुल बालश्रमिकों में कृषि क्षेत्र का प्रतिशत 1985 में (कुरूक्षेत्र में) 78.7 प्रतिशत तथा 1991 में घटक में 83 प्रतिशत था। जबकि गैर कृषि क्षेत्रों में इनकी वृद्धि दर अत्यधिक तीव्र थी। 1961 से 1981 के मध्य संकटकारी उद्योगों में, जो कि घरेलू तथा निर्माण उद्योगों से अलग थे, इनकी वृद्धि दर दोगुनी थी तथा कुछ स्थानों पर दूने से भी अधिक थी।

भारत में बाल–श्रमिकों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है तथा उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। यह समस्या अत्यधिक गम्भीर प्रभाव छोड़ती है, न केवल देश की कल्याणकारी नीतियों या शैक्षणिक नीतियों पर बल्कि देश की प्रगति योजनाओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हमारी विकास परियोजनाएँ, मुख्य रूप से निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम, बाल श्रम को कम करने के स्थान पर उसे अधिक ही करते जा रहे हैं।

हमें इस समस्या को समाप्त करने के लिये युद्धस्तर पर योजनाएँ बनानी होंगी। हमारी निर्धनता उन्मूलन योजनाएँ, परिवार नियोजन तथा स्वरोजगार योजनाएँ इसे कम करने की दिशा में अपर्याप्त हैं।

बालश्रम का सकारात्मक लाभ प्रमुख रूप से नियोक्ता प्राप्त करता है। सम्पूर्ण भारत बालश्रम अनुसंधान 1983 के

अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में दो तिहाई बच्चे स्व–रोजगार प्राप्त हैं तथा नगरीय क्षेत्रों में भी इनका अनुपात असंगठित क्षेत्रों में एक समान है। 73 प्रतिशत बच्चों को उनके माता–पिता के द्वारा ही कार्यक्षेत्र में भेजा जाता है और यही तर्क नियोक्ताओं द्वारा बच्चों की नियुक्ति के पक्ष में दिया जाता है। यह कहना सत्य है कि प्रत्येक शोधकार्य इन बच्चों की विषम परिस्थितियों को ही प्रतिबिम्बित करता करता है। श्रीनिवासन (1984) का शोध यह परिलक्षित करता है कि यदि बाल श्रम उन्मूलन हो तो 1.5 करोड़ बालिग व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है अतः बालश्रम उन्मूलन अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त बालश्रम, नियोक्ताओं को वयस्क श्रमिकों को कम पारिश्रमिक प्रदान करने के लिये प्रत्यक्ष उत्प्रेरक का कार्य करता है जिससे पारिवारिक आय कम होती है तथा माता–पिता बच्चों को कार्य पर भेजने के लिये विवश होते हैं। बालश्रम निम्न स्तर की नियुक्तियों में वृद्धि करते हुए श्रम निपुणता को हतोत्साहित करता है जिससे निर्धनता चक्र उत्पन्न होता है। 1986 में स्वायर का कथन पूर्ण रूप से सही है, "बाल नियुक्ति ही निर्धनता का कारण है न कि यह निर्धनता से उत्पन्न होती है।" ग्रामीण क्षेत्रों में पारम्परिक रूप से बचपन में ही बच्चों को कारीगरों के साथ सीखने के लिए लगा दिया जाता है। लम्बी अवधि के प्रशिक्षण काल में ये कारीगर तथा मिस्त्री बच्चों का आर्थिक रूप से तथा मानसिक रूप से पूर्णतया शोषण करते हैं तथा उनके साथ तिरस्कृत व्यवहार करते हैं। बाल श्रमिक प्रत्येक क्षेत्र में नियोक्ताओं को जबर्दस्त आर्थिक लाभ प्रदान करते हैं। वाराणसी–मिर्जापुर–भदोही का कालीन उद्योग इसका ज्वलंत उदाहरण है। अनेकों निर्यातकों को अपना कार्य समाप्त करना पड़ सकता है यदि बालश्रम–उन्मूलन हो जाय। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हमारे कुछ प्रमुख विदेशी मुद्रा प्राप्ति के लिए जिम्मेदार उद्योग बालश्रम के लाभकारी शोषण

के कारण ही प्रतियोगिता का सामना करने में सक्षम हैं। बालश्रम बच्चों के बौद्धिक तथा शारीरिक विकास में बाधक है तथा अनेकों बच्चे खतरनाक बीमारियों से ग्रसित होकर असमय कालकवलित हो जाते हैं। यह अवैतनिक अथवा अल्पवैतनिक बालश्रम का प्रश्न नहीं है, अपितु यह बच्चों की प्राकृतिक सुविधाओं का शोषण है। जैसे कि उनकी आँखों की रोशनी, हाथों की उँगलियों की कार्यक्षमता तथा कार्यात्मक जोश एवं उमंग इत्यादि अनेकों सकारात्मक एवं प्रगति बोधक कारकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। एक वयस्क तथा बच्चे की उत्पादक क्षमता में कोई अन्तर न होते हुए भी एक बच्चे को एक वयस्क की तुलना में लगभग एक तिहाई पारिश्रमिक मिलता है। शिवकाशी के दियासलाई तथा पटाखा उद्योगों में यदि 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को हटा दिया जाय तो लगभग तीन करोड़ अट्ठाइस लाख रुपये का अतिरिक्त भुगतान नियोक्ताओं को प्रतिवर्ष करना पड़ेगा जो कि एक वृहद् रकम है। नियोक्ताओं का यह तर्क कि यदि हम बच्चों तथा महिलाओं से वही कार्य कम पारिश्रमिक प्रदान कर प्राप्त कर सकते हैं तो हम वयस्कों को अधिक पारिश्रमिक क्यों दें? यह प्रमुख रूप से बालश्रम को उत्प्रेरित करता है। पवित्र माँ गंगा के किनारे नियोक्ता छाँव में आराम से बैठकर बच्चों को दहकती धूप में बालू उठाते हुए देखते हैं और पसीने से लथपथ हाँफते हुए बच्चे इस विषम परिस्थिति में चींटियों की तरह घोर परिश्रम करते हैं जो कि बाल श्रम का चरम शोषण है। ऐसे उद्योगों में जहाँ तकनीकी दक्षता की कम आवश्यकता होती है बच्चों को प्रमुखता दी जाती है क्योंकि एक तो लागत कम होती है दूसरी ओर कार्यक्षमता किसी भी प्रकार से कम नहीं होती।

रोजगार की स्थिति – बँधुआ बाल श्रमिक तथा परतन्त्रता बाल श्रम के सभी अध्ययन बच्चों के शोषण के लिए मुख्य रूप से

कम मजदूरी पर सामान्य से अधिक घण्टों तक कार्य करना, स्वास्थ्य सम्बन्धी जटिल परेशानियाँ, अहितकर पर्यावरण, अशिक्षा और बुरा व्यवहार एवं हिंसा को एक अभिशाप मानते हैं। एक समस्या जिस पर अध्ययन कम ध्यान देते हैं, वह बच्चे को प्रशिक्षण के नाम पर अवैतनिक मजदूर बनाकर रखना है। माता–पिता को बहकाकर प्रशिक्षण के नाम पर बच्चों का जबरदस्त शोषण किया जाता है तथा गरीब बच्चों को खरीदा एवं बेचा जाता है। यह क्रय– विक्रय मानव तस्करी को प्रोत्साहित करता है जो कि एक संवैधानिक रूप से एक निर्मम अपराध है। बाल–क्रेता बच्चों के साथ अमानवीय व्यवहार करते हुए उसे एक पशु से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर करता है। यह एक प्रबल विडम्बना है। बँधुआ श्रम रोजगार की एक ऐसी प्रणाली है जो कि अभी भी ग्रामीण, कृषि, नगरीय, औद्योगिक, निर्माण और सेवाक्षेत्रों में प्रचलित है। 1977–78 के शोधानुसार सर्वाधिक बँधुआ श्रम 16 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का है जो कि क्रमशः आन्ध्र प्रदेश 21 प्रतिशत, कर्नाटक 10.3 प्रतिशत तथा तमिलनाडु में 8.7 प्रतिशत है। भारतीय बाल कल्याण परिषद् के आँकड़े बताते हैं कि 8–15 आयुवर्ग के बच्चों में परतन्त्र बच्चों की संख्या एक करोड़ साठ लाख है। आधिकारिक रूप से कालीन उद्योग में लगभग 1 लाख बाल बँधुआ श्रमिक हैं तथा ये विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कि ईंट निर्माण, खनन, कृषि तथा दुग्ध उद्योगों में अत्यधिक हैं। उपर्युक्त तर्कों के तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेकों क्षेत्रों, प्रमुख रूप से औद्योगिक क्षेत्रों, में निर्धनता को ही सर्वाधिक आकस्मिक कारक के रूप में बालश्रम के प्रेरक के रूप में नहीं परिभाषित किया जा सकता। निर्धनता हमारे देश के अनेकों हिस्सों में किसी न किसी रूप में मौजूद है किन्तु इसके साथ ही पारिवारिक विघटन के कारण भी अनेकों बच्चे शोषित जीवन जीने पर विवश हैं। अतः हम निर्धनता को ही

बालश्रम का कारक नहीं मान सकते तथा यह एक अलग प्रकार की समस्या है।

बाल श्रम के प्रकार – सभी प्रकार के बालश्रम बाल प्रगति एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव एवं छाप छोड़ते हैं। नीति निर्माताओं को नीति निर्माण तो करना है पर उन्हें बालश्रम की इन अलग–अलग श्रेणियों पर केन्द्रित होकर एक ऐसी नीति बनानी होगी जो कि सभी श्रेणियों के लिए हितकर हो। यह विभाजन उनकी रोजगार परिस्थिति जैसे कि वैतनिक श्रम या पारिवारिक श्रम, रोजगार की स्थिति जैसे कि कार्यक्षेत्र का अरुचिकर पर्यावरण, गम्भीर स्वास्थ्य समस्या ग्रसित कार्यक्षेत्र तथा नियोक्ताओं से उनके सम्बन्ध जैसे कि बँधुआ श्रम, अवैतनिक श्रम इत्यादि तथा निवास परिस्थिति जैसे कि साम्प्रदायिक अथवा प्रवासी बालश्रम इत्यादि हैं। सामाजिक ढाँचे के अनुसार अत्यधिक बालश्रम पारम्परिक रूप से दलित श्रेणी से सम्बन्ध रखते हैं तथा इनका दोहरा शोषण होता है। एक तरफ तो ये जाति प्रणाली द्वारा शोषित होते हैं, वहीं दूसरी ओर नियोक्ताओं द्वारा अतिशोषित होते हैं। अधिकतर गृहहीन, उपेक्षित तथा तिरस्कृत बच्चे भी इस प्रकार की श्रमशक्ति का एक बड़ा भाग होते हैं। बालश्रम के साथ नियोक्ताओं का सम्बन्ध दोहन तथा शोषण के एक विकराल रूप में प्रस्तुत होता है तथा बँधुआ बालश्रम एवं परतंत्रता किसी भी सम्मानित समाज को शोभा नहीं देता तथा उसे लज्जित करने के लिये पर्याप्त है। आधुनिक भारत में श्रमशक्ति का यह रूप हमें लज्जा तथा हीन भावना से ग्रसित करता है। निकृष्ट पर्यावरण में जीवनयापन करना तथा निवास करना निश्चित रूप से एक अनिवार्य मुद्दा है किन्तु बालश्रम में इन परिस्थितियों में भी कार्यरत बच्चों को भी सामान्य तौर पर सम्मिलित करना चाहिये। साथ ही साथ सभी प्रकार निकृष्ट कार्यों में संलग्न जैसे कि चिथड़ा एकत्रण तथा मल–निस्तारण कार्यों को भी

निकृष्टतम श्रेणी में सम्मिलित करना चाहिये।

स्पष्ट रूप से बालश्रम का यह विभाजन बाल–अधिकारों के साथ सर्वाधिक हिंसक व्यवहार अख्तियार करता है। जो लोग भी उनके अधिकारों का दमन करते हैं उन्हें यह बोध कराना होगा कि हमारी सर्वप्रथम प्राथमिकता और सामाजिक तथा नैतिक कर्तव्य बनता है कि बाल–अधिकारों के साथ शोषण एवं हिंसा किसी भी स्तर पर न होने पाये। इस प्रकार का बालश्रम अवश्य समाप्त होना चाहिये तथा इसके लिये निर्मित विधान कठोर तथा निर्मम होना चाहिए।

बालश्रम नीति तथा कार्यक्रम – बालश्रम विधान, 1986 और इसकी कार्यप्रणाली हमारी योजना की मुख्यवस्तु होनी चाहिए क्योंकि यह बालश्रम उन्मूलन को नियन्त्रित करने का मुख्य अस्त्र है। प्रमुख तथा ज्वलन्त मुद्दे निम्नलिखित हैं –

1. सर्वप्रथम यह सामाजिक अवधारणा कि समाजीकरण के लिए यह अतिआवश्यक है कि परिवार को सुचारू रूप से चलाने के लिए बच्चों का श्रमदान भी अतिआवश्यक है क्योंकि वे परिवार के अंग हैं। यह मान्यता कि ––– निर्धनता उन्मूलन से बाल श्रम उन्मूलन भी हो जाएगा अतः सारी नीतियों को निर्धनता उन्मूलन पर केन्द्रित करना गलत है।
2. सुविधाजनक तथा वैकल्पिक मान्यता जो कि बाल श्रम को सभी परिस्थितियों में बुरा नहीं मानती तथा इस मान्यता पर आधारित है कि कुछ क्षेत्रों में बाल श्रम अनावश्यक है, वहीं कुछ क्षेत्रों में इसकी आवश्यकता है। यह मान्यता कुछ क्षेत्रों में बालश्रम के लिये प्रधान उत्प्रेरक का कार्य करती है। इस मान्यता में परिवर्तन अपेक्षित है।
3. वैधानिक कदमों को निषेधात्मक, नियन्त्रक, निर्देशक तथा सुविधाजनक उद्देश्यों के साथ मिश्रित करना होगा जैसा कि वर्तमान बालश्रम विधान में किया गया है। हमें मानवाधिकार और विकास को एक ही वैधानिक ढाँचे में सम्मिलित करना होगा, तभी हमारा ढाँचा सम्पूर्ण कहने योग्य होगा।

4. बालश्रम निषेधक तथा नियन्त्रक विधान, 1986 के प्रभावी तथा अप्रभावी कारकों का एक समुचित विश्लेषण अनिवार्य है। दुर्भाग्यवश इस ओर अरुचि का ही प्रस्तुतिकरण हुआ है। कालीन उद्योग तथा शीशा उद्योग के प्रेक्षण यह दिखाते हैं कि वैकल्पिक श्रम तथा बालश्रम इन दोनों प्रकार के उद्योगों में समानान्तर ही चल रहे हैं। दूसरी तरफ एक बड़ा गुट लगातार कालीन उद्योग को अहितकर उद्योग से हटाने के लिए निर्बाध रूप से प्रयासरत है।
5. यद्यपि बालश्रम निषेधक तथा नियंत्रक विधान, 1986 कुछ हद तक अहिंसक है। कुल मिलाकर इसने अपने लक्ष्यों का आधा भी प्राप्त नहीं किया है फिर भी इसकी समीक्षा तथा आलोचना करने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की गयी।
6. माता–पिता की उदासीनता के कारण श्रम विधान अप्रभावी सिद्ध हो रहे हैं क्योंकि वे एक न्यूनतम आय के प्रति आश्वस्त हो जाते हैं। इसका विधान कठोर आज्ञात्मक न होने के कारण तथा कठोर अर्थदण्ड न होने के कारण नियोक्ताओं को हतोत्साहित करना दुष्कर हो जाता है।
7. एक वैधानिक बाल मानवाधिकार आयोग का गठन पूर्णतया अपेक्षित हो जाता है।

हमारा सामाजिक उच्चवर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग केवल बालश्रम की निन्दा करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है जबकि हमें सकारात्मक आलोचना की आवश्यकता है ताकि समस्या का हल प्राप्त हो। निन्दा तो कोई भी कर सकता है किन्तु आलोचना करना, मुख्य रूप से समालोचना, अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि इसके लिए तर्क तथा तथ्य प्रस्तुत करने पड़ते हैं जिसके लिए गूढ़ ज्ञान अत्यावश्यक है। काश भारतीय समाज समालोचक हो सके ––– ?

एक पत्र सरदार खुशवन्त सिंह के नाम

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी
11 अक्टूबर, 2007

प्रिय खुशवन्त सिंह जी ———

आपका 'हिन्दुस्तान' में पिछले शनिवार का कॉलम पढ़ने के बाद मन बहुत दुःखी है। वर्षों से यह कॉलम पढ़ता आ रहा हूँ और मुझे लगता था कि सरदार खुशवन्त सिंह तो हमेशा के लिए हैं। मेरी उदासी में मेरा अपना डर भी शामिल हो सकता है। यह कि अगर खुशवन्त जिन्दगी से आजिज आ सकते हैं तो मेरे जैसे दुखवन्त का क्या हाल होगा! मैं आपसे बस 10–11 साल ही पीछे हूँ।

आपने लिखा कि आपको पुरानी यादों में खो जाने का मन करता है। मैंने सोचा, मैं भी आपकी कुछ मदद करूँ। इस संस्मरण में यादों में खो जाने के लिए आपकी पहली पसन्द कोई महबूबा तो नहीं होगी। हाँ, यह आपको उस दौर में वापस ले जाएगा जब आप महबूबाओं से घिरे रहते होंगे। उस दौर में, जिसमें राहुलसिंह अपने बापजान की 'रिवाल्ड्री' के किस्से दुनिया को सुना रहे थे। फिर इस संस्मरण के केन्द्र में एक ऐसी शख्शियत है जिसे आप अवश्य याद करना चाहेंगे। संयोग से आज (11 अक्टूबर) उनकी जन्म–जयन्ती भी है।

सारे बिहार में 1966–67 में अवर्षण के कारण अकाल जैसे हालात पैदा हो गये थे। जयप्रकाश नारायण (जेपी) की अध्यक्षता में बिहार रिलीफ कमिटी बनी थी, समकालीन मुख्यमंत्री कृष्ण बल्लभ सहाय और नेता प्रतिपक्ष कर्पूरी ठाकुर आदि उपाध्यक्ष थे। जेपी के प्रेरणादायक नेतृत्व में देश में ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बड़े पैमाने पर राहत और स्वयंसेवी जुटाये गये थे। मैं भी जेपी का ऑफिस संभालने के

लिए पटना में था।

आपने 1967 के शुरुआती दिनों में जेपी को फोन किया, शायद कसौली से, कि आप बिहार में सूखे से पैदा हालात का जायजा लेने आना चाहते हैं। तारीख भी तय हो गयी। जेपी पशोपेश में थे कि आपको कहाँ ठहराया जाय! महिला चरखा समिति में, जिसमें वे दो कमरों के किरायेदार थे, आपको ठहराने लायक कमरा नहीं था। आपका होटल में ठहराना सोचा गया। मैं उधार की एम्बेसडर गाड़ी लेकर आपको रिसीव करने एयरपोर्ट गया था। आपने बताया कि आप बोरिंग कैनाल रोड पर अपने दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ ठहरेंगे।

जैसे ही कार बोरिंग कैनाल रोड पर पहुँची, आपने इसके नाम से जुड़ा एक मजेदार किस्सा सुनाया। यह कि एक बार बिहार में आयी भारी बाढ़ का सर्वेक्षण करते हुए, प्रधानमंत्री नेहरू, पटना शहर के ऊपर से उड़ रहे थे। साथ में बिहार के मुख्यमंत्री (या राजस्व मंत्री) थे। नेहरू जी ने कमेंट किया, 'इट्स नाइस आइडिया, ए कैनाल रनिंग थ्रू दि सिटी'! साथ में बैठे प्रदेश के मंत्री महोदय ने इसे प्रशंसावत समझते हुए 'हाँ हाँ' करते हुए अपना सिर हिलाया। उस समय यह नाला खुला रहता था। बाद में सड़कों के नीचे कर दिया गया। आपको बोरिंग रोड पर उतारते–उतारते इतना तो लग गया कि आपके साथ फॉर्मल हुआ ही नहीं जा सकता। यह भी समझ में आ गया कि आपकी वी0 के0 कृष्ण मेनन जैसे खुश्क आदमी के साथ क्यों नहीं बनी होगी।

अगले दो–तीन दिन आपके साथ कई जगह गया। आपके लिए बनाए गए कार्यक्रम के अनुसार, दूसरे दिन हमको दो–तीन जगह रुकते हुए भभुआ पहुँचना था। साथ में जेपी और दीदी (प्रभावती जी) को भी जाना था। भभुआ अनुमण्डल, खासकर उसका पहाड़ी हिस्सा अधौरा, चेनारी आदि हाल के वर्षों में माओवादी प्रभावित क्षेत्र के रूप में चर्चित, तब अत्यन्त

सूखा–प्रभावित क्षेत्रों में शुमार थे। यह आपकी 'स्टोरी' के लिए चुना गया एक 'रण–क्षेत्र' था।

भभुआ में दो कमरे का एक छोटा सा 'डाक बंगला' (!) था। जेपी सरकारी अफसरों और रिलीफ कमिटी के कार्यकर्ताओं से रिपोर्ट लेते रहे। शाम तक हम कुछ गाँवों में गये। बीच–बीच में आपने कुछ 'सिख जोक्स' भी सुनाए। तब बहुत चलते थे, सुने भी थे, पर आपका जोक्स सुनाने का अंदाज कुछ अलग था। उनमें से एक याद दिलाता हूँ, आपको जरूर 'लिफ्ट' करेगा। वही लहंगा सिंह, महंगा सिंग वाला! कि दो सरदार तरखान (कारपेन्टर) पैसा कमाने इंग्लैण्ड जाते हैं। कमाते भी हैं। एक दिन उन्हें लगता है कि वहाँ की अच्छी चीजों का मजा लेने में एक ही कमी रह गई।

किसी 'मेमनी' की सोहबत नहीं की। एक दिन 'मेमनी' वह शाम उनके साथ बिताने के लिए तैयार भी हो गई। अंग्रेजी आती नहीं है, बस मेम का चेहरा ताकते रहते हैं। इशारों की बोली भी काम नहीं आयी। तब मेम ही डाइनिंग टेबल पर पड़ी प्लेट के पीछे अपनी लिपिस्टिक से सांकेतिक चित्रण कर अपनी फरमाइश बताती रही। खाना–पीना हुआ। उसने कोच की शक्ल बनाई। पर लहंगा–महंगा की 'हॉर्स सेंस' ऐन वक्त पर गच्चा खा गई; 'ये स्साली मेम' किथों जाण गई कि असां तरखान हैं!" मैं देहरादून कॉलेज गया था, मेरे सर्किल में कई पंजाबी, सिख और मोना मित्र थे, जोरदार 'बन्टर' चलता था। पर पहला सिख मिला जो इतनी मस्ती से सिख जोक्स सुनाता था।

उस शाम जब डाक बंगला वापस आए, सूखे की बात करते–करते आपका गला भी 'सूखने' लगा था। इंतजाम करके तो आप आए थे, पर कोई महफूज जगह तो मिले! डाक बंगले में बहुत सारे सर्वोदय कार्यकर्ता तथा अन्य लोग जेपी से मिलने आ–जा रहे थे। आपने इशारों में मुझसे पूछा, कहाँ बैठा

जाय, मैनें आपको बताया कि अगर जेपी ने देख भी लिया तो दूसरी ओर देखने लगेंगे पर अगर दीदी ने देख लिया या किसी ने उन्हें बता दिया, जिसकी पूरी गुंजाइश है, तो वे हड़काए बगैर नहीं रहेंगी। मैने बाथरूम में कुर्सी लगाने का इशारा किया। मैं तब बहुत सिगरेट फूँकता था, मेरे साथ भी ऐसा ही होता था। अगली शाम हम जेपी के सोखोदेवरा आश्रम में थे। वहाँ बहुत जगह थी। आश्रम की पवित्रता बची रही या नहीं, आप ही जानें।

उस बिहार–यात्रा पर आपका 'दि स्टेट्समैन' के एडिट पेज पर दो किश्तों में एक लेख छपा था। उसकी कतरन जेपी के डाकपैड में रख दी गयी। उन दिनों उन्हें पढ़ने का समय कम ही मिलता था। हफ्ता–दस दिन में डाक पैड की छँटाई होती थी। आपके लेख की कतरन लौटाते हुए, पूछ बैठे, 'आपने इसे पढ़ा है?' उसे दो–तीन जगह रेखांकित भी किया था। बोधगया क्षेत्र के गाँवों की हालत बयान करते हुए आपने एक जगह 'कूइंग' शब्द का उपयोग किया था, कि एक सर्वोदय कार्यकर्ता ने 'कूइंग' किया...। वहाँ उंगली रखते हुए पूछा कि किसके लिए लिखा है? मैंने जरा लापरवाही से कह दिया, किसी ने उनके कान में 'कूइंग' कर दिया होगा, वहीं जानें।

जाहिर था कि जेपी को मेरा जवाब अच्छा नहीं लगा था, कहा बस इतना ही आपने उनसे कुछ सीखा, बहुत अच्छा लिखते हैं। सो तो है ही! लिखते रहिए!

मैं खास तौर पर आपके लिए प्रार्थना करूँगा। वैसे करता नहीं पर आपके लिए करूँगा।

आदर भाव के साथ

बी0 एन0 जुयाल
1–महामनापुरी एक्सटेंशन, पो0–बी.एच.यू.
वाराणसी–221005
(juyal_bn@rediffmail.com)

तराई की प्रगति के पीड़ित : थारू–बुक्सा जनजातियाँ

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश वॉलण्टरी हेल्थ ऐसोसिएशन

अपने ही घर से बाहर

नई दिल्ली से लिपूलेह और अपने कैलाश–मानसरोवर, राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारे बनबसा के पास 24–25 घरों की एक झोपड़पट्टी दिखाई देगी। यह बस्ती अपने गाँव से उखड़े थारू जनजाति के लोगों की है। इनमें से तीन परिवार गंगू सिंह थारू के बेटों के हैं। कुछ ही साल पहले तक गंगू सिंह की बनबसा के सटे पचपखरिया गाँव में 398 बीघा (लगभग 80 एकड़) अच्छी, उपजाऊ जमीन थी।

1950 के दशक में जब नैनीताल का उपनिवेशीकरण हो रहा था तो 'मॉडल फार्म' के नाम पर भी बड़े–बड़े भूखण्ड आवंटित हुए। उनमें से 'ट्रांग फार्म' भी एक है। ऊपर से इसे मिशन गुड शेफर्ड (एग्रीकल्चरल मिशन) भी कहते हैं और गंगू सिंह की अधिकतर जमीन इसी फार्म में समाहित हो गयी है। गंगू सिंह स्वयं इसी फार्म पर बन्धुआ मजदूर बन गये और इसी फार्म में वह और उसके बेटे और परिवार की महिलाएं, मजदूरी करते रहे हैं।

बीच में गंगू सिंह ने भरसक प्रयास भी किया, एक स्वयंसेवी संस्था (उत्तरांचल विकास संस्थान) की मदद से कुछ जमीन जो बाद में दबाई गई, उसे पुनः हासिल करने का। इस मामले में तत्कालीन एस.डी. एम. की कोर्ट से पुलिस को आदेश हुआ कि गंगू सिंह की जमीन का कब्जा दिलायें, परन्तु ट्रांग फार्म के दबदबे के सामने पुलिस नतमस्तक ही रही। लगभग यही कहानी है, सभी परिवारों के सीमान्तीकरण की। बेजमीन, बेघर

होकर सार्वजनिक स्थल पर 'अवैध' उपवेशी बन जाने की।

सभी को याद होना चाहिये कि उत्तर प्रदेश से अलग राज्य निर्माण का मामला, कुछ तत्वों की ऊधम सिंह नगर जिले को अलग रखने की मांग के कारण, लटका दिया गया था। इस मांग को लेकर सबसे आगे था एक अन्य राज्य, पंजाब, का शिरोमणि अकाली दल। असल में अकालियों के विभिन्न धड़ों में उग्र से उग्रतर विरोध प्रदर्शन की होड़ सी लगी हुई थी। बाद में, अपेक्षाकृत छोटी बंगलाभाषी फॉर्म लॉबी के उकसाये पर, इसमें तृणमूल कांग्रेस की जुझारू नेता ममता बनर्जी भी कूद गईं।

इस विरोध में भूमि सुधारों का भाव मुख्य था। और यह खुले तौर पर व्यक्त भी हुआ। भूमि सुधार की बात तो अब देश में कहीं भी नहीं हो रही है। असली डर था, आदिवासियों से हिंसा या धोखे से हड़पी जमीनों के चिन्हित होने का। वैधायिकता हासिल करने की दृष्टि से मीडिया को बताया गया और मीडिया वालों ने मान भी लिया कि पंजाबियों/ बाहर से आये अन्य किसानों ने ही अपनी जान जोखिम में डालकर जंगली जानवरों और मच्छरों से भरे हुए तराई क्षेत्र को आबाद किया। परन्तु असलियत कुछ और ही है। 'द्वितीय विश्व युद्ध' में हुए विनाश से उत्पन्न अकाल (बंगाल के अकाल की विभीषिका को स्मरण करें) की स्थिति पर काबू पाने के लिए 'अधिक अन्न उपजाओ' कार्यक्रम के तहत भारत सरकार ने ही तराई के उपनिवेशन की योजना बनाई –

भूमि सुधार

वास्तव में तराई क्षेत्र, खासकर नैनीताल जिले से काटकर ऊधमसिंह नगर में परिवर्णित सम्भाग के भूमि सुधार का इतिहास बिल्कुल उल्टा है। जब सारे प्रान्त में जमींदारी उन्मूलन का दौर चल रहा था (हालांकि शोर ही ज्यादा था), इस तराई क्षेत्र में नई जमींदारी व्यवस्था कायम हो रही थी।

अधिक से अधिक इसे सामन्तवादी–जमींदारी के बजाय 'राष्ट्रीय' जमींदारी राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में कह सकते हैं। क्योंकि इसमें विस्थापितों के लिए ही नहीं, स्वतंत्रता सेनानियों, फौज के अधिकारियों, मॉडल फार्म बनाने वालों, चीनी मिल्स के लिए वृहद भूखण्ड आवंटित करने का प्रावधान था।

उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन विधान, 1950 में पारित हुआ परन्तु इस पर अमल 1 जुलाई 1952 में शुरू हुआ। इस बीच घोड़ा अस्तबल तोड़ चुका था। बहरहाल, उस समय की कुंमायूँ कमिश्नरी (आज का उत्तराखण्ड), को इस विधान के बाहर रखा गया था, क्योंकि इसे जमींदारी क्षेत्र नहीं माना गया। यह अधिकांश सही भी था, परन्तु नैनीताल जिले की तराई क्षेत्र की भूमि व्यवस्था पर्वतीय सम्भाग से बिल्कुल भिन्न थी। यह सम्भाग तो 1891 में ही नैनीताल में सम्मिलित किया गया था। उसके पहले यह रूहेलखण्ड के समीपस्थ जिलों का भाग था। जमींदारी उन्मूलन के समय तराई भाभर की हलद्वानी और खटीमा तहसील, एक तरह की सरकारी स्टेट थी। खटीमा में ही अधिकांश थारू गांव उपस्थित थे। इसे खाम जमीने कहा जाता था इसलिये इन्हें जमींदारी उन्मूलन के बाहर रखा गया। खाम जमीनों का बन्दोबस्त एक अलग अधिकारी खाम सुपरिटेण्डेंट (अधीक्षक) करता था और गवर्नमेंट ग्राण्ट ऐक्ट के तहत वह जमीन का आवंटन करता था। केवल सादे कागज के टुकड़ों पर उसे अर्जी देना काफी था। 1948 से तराई के उपनिवेशीकरण और वहां की आबोहवा और सुविधाओं में सुधार के बाद बाहर से यहीं आकर बसने वालों ने खूब खाम जमीनें हथियाई। खाम व्यवस्था 1957 तक चली।

तराई उपनिवेशीकरण की योजना में देश के विभाजन से शरणार्थी बने लोगों को बसाने का भी प्रावधान था। इस कारण यहां पंजाबियों का रेला सा लग गया। इनमें से कुछ को खाम जमीनें मिल गईं। कुछ ने स्थानीय किसानों से जमीनें खरीदी

और बहुतों ने तो वैसे ही जमीनें दखल कर ली। पंजाब, हरियाणा में जमीनों की कीमतें तराई से बहुत ऊंची थी। बहुतों ने वहां की थोड़ी जमीन बेचकर यहां अधिक जमीन खरीदी।

थारू जनजाति के लोगों का (वैसे उन्हें वह दर्जा बहुत बाद में मिला) जमीन के प्रति कुछ भिन्न ही दृष्टि थी। यह स्वाभाविक भी था। जमीन की भूख उन्होंने अनुभव ही नहीं की थी। तराई के इतने बड़े हिस्से में वे ही या उनके पड़ोसी बुक्सा लोग रहते थे। अपनी श्रम से जितनी जमीन पर खेती कर सकते थे, करते थे। तराई के पूर्वी छोर पर बनबसा–टनकपुर के पास पर्वतीय क्षेत्र से जो पशुपालक किसान आते थे, वे थारूओं को यहां का 'राजा' कहते थे। जिन्हें यहां बसना होता, उन्हें थारूओं से जमीन मिल जाती थी।

तराई का उपनिवेशीकरण योजना में स्वतंत्रता सेनानियों को भी भूमि आवंटन का प्रावधान था। क्षेत्र के बाहर से और पूर्वी उत्तर प्रदेश से बहुत से स्वतंत्रता सेनानियों को यहां जमीनों के चेक मिले। उनमें से अधिकांश अनिवासी जमींदार ही रहे, उनके जरिये पूर्वी जिलों से भी बहुत से लोग यहां पहुंचने लगे। आज कई पुराने थारू गांवों की जगह उनके गांव बस गये हैं। क्षेत्र में जमीनों के बन्दोबस्त के अभिलेख नहीं थे या अधूरे थे। 'नजरी पैमाइश' पर ही अधिकतर काम चलता था। यह भी एक कारण बना, जमीनों के छिनने का।

खाम जमीनों का हस्तांतरण नहीं हो सकता था परन्तु महज 'पावर ऑफ एटोर्नी' पर ही हजारों एकड़ जमीनों का हस्तान्तरण हो चुका था। इसलिए उत्तर प्रदेश सरकार ने यह नियम बनाया कि 1966 तक जो हस्तान्तरण हो चुके हैं उन्हें 10 एकड़ की सीमा तक नियमितीकरण किया जा सकता है। इस आदेश की आड़ में जायज, नाजायज, (नाजायज ही अधिक), हड़पी गई सभी जमीनों का नियमितीकरण भी हो गया।

इस क्षेत्र में जमीन के लिए जो मारामारी शुरू हुई, उसमें महज जमीन ही नहीं बल्कि अपना 'सामाजिक स्पेस' गंवाने वालों में अधिकांश जनजाति समूह जनसंख्या आकार के क्रम में थारू और बुक्सा ही थे।

तराई क्षेत्र के आदिवासी किसानों की भूमि से बेदखली का प्रश्न 1950 के दशक तक बीच–बीच में उठता रहा। 1981 में आखिरी बार, प्रशासन के स्तर पर ऐसी जमीनों को चिन्हित कर उन्हें वापस दिलाने का कुछ इरादा बनाया भी गया परन्तु जैसा कि पहले भी होता रहा है, मुद्दे का स्वरूप ही बदल गया। यह कि तराई से पंजाबी किसान बेदखल किये जा रहे हैं, यहां बसे पंजाबियों से भेदभाव हो रहा है, इत्यादि।

इस तरह 'राष्ट्रीय एकता' के हित में इन जनजाति समूहों को सामाजिक–आर्थिक न्याय दिलाने की बात दबा दी गई। इसके बाद तो यह मुद्दा ही जमीन के नीचे दब गया।

उस समय के आंकलन के अनुसार लगभग 4500 एकड़ जमीन गैर–कानूनी कर्जदारों के चंगुल में चली गयी थी। खटीमा के 84 गांवों की करीब 5727 एकड़ जमीन पर और सितारगंज के 86 गांवों की 4322 एकड़ जमीन गैर कानूनी तरीके से हस्तान्तरित हो चुकी थी। ध्यान रहे कि लगभग 60 प्रतिशत थारू खटीमा तहसील में रहते हैं। सन् 1985 के आस–पास कुछ बुक्सा गांवों के सर्वेक्षण से प्राप्त भूमि हस्तान्तरण के आंकड़े अपनी कहानी कहते हैं –

गांव का नाम	बुक्सा परिवार	सम्मिलित जमीन (बीघा)		भूमिहीन बने परिवार
		पूर्व में	वर्तमान में	संख्या
कोपा कृपाली	34	982	717	11
चांदनी	28	1520	764	5
माजरा हसन	34	1385	1155	13
घीमर खेड़ा	22	555	279	9

सन् 1990 आते–आते तराई क्षेत्र में भूमि सुधार का मामला लगभग दफना दिया गया। इसका समय–संदर्भ भी कम अर्थपूर्ण नहीं है। सन् 1969 में थारू–बुक्सा समूहों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया। इसके साथ इनकी जमीनों का हस्तान्तरण भी जमींदारी उन्मूलन ऐक्ट की धारा 157 के तहत निषिद्ध हो गया। इस विषय में राजकीय अधिसूचना 6 जून 1970 के दिन जारी हो गई पर जाने–अनजाने में पांच रूपये के स्टाम्प पेपर पर या तो बहुत कम दाम पर खरीदी गई या हड़पी हुई जमीन का हस्तान्तरण जारी रहा। फिर भी तराई क्षेत्र में पहली बार चकबन्दी प्रक्रिया लागू करने के बीच में (कहने कि आवश्यकता नहीं कि इसका हमेशा विरोध होता रहा है, निहित स्वार्थ द्वारा) जून 1989 में अनुसूचित जाति के किसानों से गैरकानूनी तरीके से हड़पी हुई जमीन की वापसी कर अधिनियम भी जारी हो गया पर उतनी ही जल्दी इसपर उच्चतम न्यायालय से निषेधाज्ञा भी प्राप्त कर ली गयी, तराई कृषक संघ एवं भूतपूर्व सैनिकों के आवेदन पर। इस वक्त का भूतपूर्व सैनिक एक 'प्रबल' और स्वीकार्य 'लॉबी' के तौर पर उभर गया था और निःसन्देह इन्होंने (जिनकी संख्या तब 8000 आंकी गई थी, उनके अलावा कुछ ऐसे भी थे जो अभी सेवा में थे)। अपनी गाढ़ी कमाई का बड़ा हिस्सा तराई क्षेत्र में थोड़ी बहुत जमीन खरीदने में लगा दिया था। इसी प्रकार गैर–सैनिक किसान भी कुमांयूँ जन कल्याण परिषद के बैनर में संगठित हो गये। इस सबकी मांग थी कि पहले बन्दोबस्त हो, और बाद में चकबन्दी। इन सबका एक राजनैतिक परिणाम यह हुआ कि 'बाहर' से आकर बसे बड़े–बड़े फार्म मालिकों का काम आसान हो गया। उन्हें आगे के मोर्चे पर लड़ने के लिए, उनसे कुछ अधिक 'वैधायिकता' और संख्या बल वाले संगठन मिल गये। और भूमिबंचना के शिकार आदिवासियों की ओर मांग आनी ही मुश्किल हो गई।

उम्मीद है कि इस सम्मेलन से यह मुद्दा फिर उभरेगा परन्तु इसके लिए यदि थारू ही नहीं उनके पारम्परिक पड़ोसी, बुक्सा, ठोंगिया, वे पहाड़ी किसान जो भंवर क्षेत्र में 'झाला' डाला करते थे, एकजुट हों, तो सभी दृष्टि से श्रेयकर होगा।

विद्वान वक्ताओं के साथ

जे0 पी0 के सम्मुख बागियों का आत्मसमर्पण (चम्बल घाटी में द्वितीय गाँधी शांति मिशन)

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
सितम्बर, 1972

सोमवाली और शिवपुरी के बीच उत्तर–दक्षिण और बेहत से शिवपुर के मध्य पूर्व–पश्चिम के बीच फैला हुआ इलाका राजपूताना और गंगा–यमुना दोआब से निकाले गये क्षेत्रीय आदिवासी सरदारों की शरण–स्थली रहा है। इसी इलाके में पगारा से 42 कि0मी0 दूर एक डाकबंगला है जिसमें शायद ही कोई भयाक्रांत प्रशासनिक अधिकारी कभी ठहरा हो। हाँ, इस डाक बंगले ने कुख्यात डकैतों की मेजबानी बहुतेरी बार की है।

इसी डाक बंगले ने एक और ऐतिहासिक घटनाक्रम में अपनी भूमिका जरूर निभायी है। 11 सितम्बर, 1972 को यहाँ गाँधीवादी नेता और अपने समय के प्रमुख समाज सुधारक जयप्रकाश नारायण इसी डाक बंगले में रुके थे। तत्कालीन समय के सबसे दुर्दान्त डकैत, मोहर सिंह, ने जयप्रकाश जी से यहीं मुलाकात की थी। इसी डाक बंगले में जयप्रकाश जी ने डकैतों से आत्मसमर्पण कर सामाजिक मुख्यधारा में आने का आग्रह किया जिसे डकैतों ने सहर्ष स्वीकार किया। स्थानीय जनमानस, प्रशासनिक अमला और डाक बंगला इस ऐतिहासिक क्षण के साक्षी बने थे।

पुलिस द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली खाकी वर्दी में तमाम लाव–लश्कर और हथियारों से सुसज्जित हो डकैतों ने सम्पूर्ण गिरोह के साथ यहीं आत्मसमर्पण किया। कुछ एक तो तमाम तमगों वाली पुलिस की वर्दी में भी थे, संभवतः यह गिरोह में उनकी प्रमुखता और ओहदे के द्योतक थे।

माँ काली और माता शारदा का आशीर्वाद लेकर मस्तक पर

तिलक और ताव दी गयी मूँछों में सभी डकैत उपस्थित थे। पूजा की वजह से डकैतों के सरदार, सारू सिंह, विलंब से, आधे पहर के बाद पहुँचे। समूह में, रुद्राक्ष की माला धारण किये, डकैतों के पुजारी भी मौजूद थे। आध्यात्म और डकैती परम्परा से परिपूर्ण आत्मसमर्पण करने आये डकैत देशी घी में पके भोजन ही ग्रहण करते थे। आत्मसमर्पण के लिए तैयार कैम्पों में भी जाति आधारित वर्ण व्यवस्था साफ झलक रही थी। जाति आधारित, पदानुक्रम अनुसार, डकैत अपनी जाति द्वारा संचालित लंगर में ही भोजन करते थे।

12 अप्रैल की शाम तक असम नदी के किनारे बने डाक बंगले के आस–पास का इलाका स्थानीय नागरिकों और प्रशासनिक अमलों की मौजूदगी से ठसा–ठस भरा हुआ था। कौतूहल, भय और उम्मीद से परिपूर्ण माहौल में सभी डकैत आत्मसमर्पण के लिए उपस्थित थे। पूरा क्षेत्र डकैतों और वहाँ उपस्थित उनके परिवारजनों की 'राम–राम!' से गुंजायमान हो रहा था। एक क्षण तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे सरहद से सेना के जवान लौटकर घर आये हों। सबसे प्रसन्न और उत्साहित स्थानीय बनिया समुदाय था, जो भय और शोषण का खात्मा होकर रामराज्य के आने से नई संभावनाओं से ओत–प्रोत था।

मोहर सिंह एक गुर्जर ठाकुर और बड़े गिरोह का सरगना था। गुर्जर बाहुल्य इलाका होने की वजह से वो सबसे ज्यादा ख्यातिप्राप्त था। सारन सिंह भी गुर्जर ही था और कुख्यात डकैत मोहर सिंह की एक छोटी इकाई का सरगना था। बॉलीवुड फिल्मों के प्रभाव से परे सभी डकैत सज्जन ही प्रतीत हो रहे थे। छायाचित्रों के किरदारों की तरह डरावने नहीं। डकैतों का गिरोह में पदानुक्रम, कितनी हत्यायें और अपराध किये गये हैं, इस बात पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण बागी बनने के लिये हत्या जैसे जघन्य अपराध सीढ़ी बनते हैं। घर वापसी

का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि सभ्य समाज में इन बागियों का इंतजार कानून या फाँसी का फंदा कर रहा होता है।

डकैतों के जीवन की शुरुआत "फरारी" से शुरू होती थी जिनके कारण अनेक थे। इन सब में सबसे प्रमुख कारण बदला और जाति–आधारित दमन होता था। बीहड़ का रास्ता सामाजिक भेदभाव, खासकर जाति आधारित झगड़े, भूमि हड़पने और नीची जाति की महिलाओं का अभिजात्य वर्ग द्वारा दैहिक एवं मानसिक शोषण था। एक दूसरा समूह डकैतों का वो था जो पंचायत–पटवारी, भ्रष्ट पुलिस और उच्च वर्ग के उत्पीड़न से त्रस्त था। तथाकथित अभिजात्य वर्ग ने पुलिस मुखबिर, और पुलिस के मकड़जाल का बखूबी उपयोग कर दमन एवं शोषण का साम्राज्य कायम किया।

इकट्ठा हुई डकैतों की भीड़ में 16 वर्ष के, कुरही सिंह से, साठ वर्ष की अवस्था के डकैत थे। सभी की औसत आयु 27 साल ही थी। सबसे वयोवृद्ध डाकू डोंगर सिंह थे जो मान सिंह गिरोह के थे। डोंगर सिंह ने बीहड़ों का रास्ता तब चुना जब उनकी चार बीघा जमीन हथिया ली गई और पंचायत ने उनकी एक न सुनी।

किसी भी गिरोह की सक्रियता उसके द्वारा फैलाये गए डर के साम्राज्य पर निर्धारित थी। गिरोह में सदस्यों की संख्या, और वो भी जाति आधारित, और समाज में उनका भय ही राजनैतिक संरक्षण के प्रमुख कारण थे। राजनैतिक संरक्षण ही भ्रष्ट पुलिसिया तंत्र को जन्म देता था। कोई भी गिरोह बिना राजनैतिक संरक्षण के नहीं रह सकता था और यही कारण था कि उच्च वर्ग के सत्ताधारी अपनी जाति के डकैतों का समर्थन और संरक्षण करते थे। 1950 के उत्तरार्द्ध में हरिजन और अन्य छोटी जातियों के डकैतों का वर्चस्व भी स्थापित हुआ।

क्षेत्रीय वर्चस्व का दरवाजा डकैतों के जातिगत गिरोहों और उनकी राजनैतिक रसूख से होकर गुजरता था। तो जब

हरबिलास करछी या रत्ना चमार का समय आया तो साधारण हरिजन भी ठाकुरों की आँख में आँख डालने की हिम्मत कर सके थे। कालांतर में डकैती का संस्थागत इस्तेमाल बेगारी के लिए भी किया गया।

बागियों ने कैम्प में पहुँच, सर्वप्रथम जे0 पी0 से अपने परिवारों की सुरक्षा की गुजारिश की क्योंकि वो जानते थे कि आत्मसमर्पण के बाद उनका परिवार हाशिये पर चला जायेगा और विरोधियों के आतंक का शिकार बन सकता है। जे0 पी0 ने उन्हें आश्वस्त कर उनको महिला सर्वोदय नेत्रियों से राखी बंधवाई। इस रक्षाबन्धन ने माहौल में प्रेम और करूणा भर दी और डकैतों ने सुब्बा राव जी के स्वर से स्वर मिला भजन गाया।

14 और 16 अप्रैल को डकैतों ने गाँधी जी की मूर्ति के कदमों में हथियार रख दिये और पूरा इलाका "गाँधी जी की जय! संत विनोबा की जय! की हुंकार से भर गया। तीस हजार लोगों की करतल ध्वनियों से पूरा इलाका गूँज उठा, जब एक–एक कर डकैत मंच पर आये और अपने हथियार रखे। सभी डकैतों को राम–चरित मानस और विनोबा कृत गीता भेंट की गयी।

जे0 पी0 ने इस सभा के बाद ग्वालियर का रूख किया जहाँ दुर्दान्त डकैत नाथू सिंह आत्मसमर्पण के लिए उनका इंतजार कर रहा था। जे0 पी0 स्वयं में इस पूरी घटना को भगवान की देन मानते थे और प्रेरणा के स्त्रोत विनोबा जी को।

एक साल के अंतराल में इस क्षेत्र में करीब 20 और डकैतों ने आत्मसमर्पण किया। जेल में उनसे प्रशासन ने अच्छा व्यवहार किया और सभी डकैतों ने रिहाई से पहले जेल में ही शिक्षित होने का बीड़ा उठाया।

कोलः पहचान व अधिकार के लिये संघर्ष

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

आजादी के 57 सालों बाद भी आदिवासियों की हालत ज्यों की त्यों है। उत्तर प्रदेश में सबसे बड़े आदिवासी समुदाय कोल को आज भी अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त नहीं है।

पूर्वान्चल, कैमूर व बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अच्छी खासी जनसंख्या के रूप में निवास करने वाले 'कोल' आज भी विकास की दौड़ में पीछे हैं। इनके सामने आजीविका का संकट भी मुँह फाड़े खड़ा हुआ है। बहुत कम मजदूरी पर काम, बेगार, वन सम्पदा का उपयोग करने पर उत्पीड़न, फर्जी इनकाउण्टरों का शिकार बनना, आदि कुछ ऐसी वर्तमान समस्यायें हैं जिनसे यह समुदाय जूझ रहा है। कैमूर क्षेत्र में नक्सलवाद के नाम पर कोल समुदाय के सदस्यों का उत्पीड़न आम बात है । वहीं बुंदेलखण्ड क्षेत्र में गुडवर्क दिखाने में लिए पुलिस द्वारा इस समुदाय के सदस्यों का फर्जी इनकाउण्टर आम बात है।

यहीं नहीं, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें भी इस समुदाय में आम हैं। मामूली पेट दर्द व मलेरिया से मृत्यु के उदाहरण यहां आम हैं। कुपोषण की समस्या तो इस समुदाय के बालक – बालिकाओं में उपस्थित हैं ही। जागरूकता न होने के कारण ये संक्रामक रोगों की चपेट में भी आ जाते हैं । कैमूर क्षेत्र में तो कोल महिलाओं की प्रसव के दौरान मृत्यु कई बार इस कारण से हो जाती है कि कुपोषण की वजह से शरीर कमजोर होता है और स्वास्थ्य केन्द्र अत्यन्त दूर। भूपतियों द्वारा कोल महिलाओं का उत्पीड़न भी किया जाता है जो कि मजदूरी छिनने के डर से चुप रहती हैं । विरोध करने पर नक्सली घोषित करने की धमकी दी जाती है।

इस प्रकार इनके सामने विकट परिस्थितियाँ हैं। एक ओर

सरकार इनसे आंखें फेरें हुए हैं दूसरी ओर भूपतियों व पुलिस द्वारा उत्पीड़न जारी हैं ।

कोल समुदाय – अधिकार / उत्पीड़न :

शोषण व जुल्म की दास्तां अपने चरम पर है। स्वतन्त्रता के बाद से आज तक कोल समुदाय अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। लेकिन वही ढाक के तीन पात! बल्कि दुखद स्थिति तो यह है कि दिन–ब–दिन इस समुदाय पर अत्याचार व उत्पीड़न की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। विगत् पांच वर्षों में फर्जी इनकाउण्टर के द्वारा अब तक कई कोल समुदाय के लोग नक्सली आन्दोलन के नाम पर बेवजह मार दिये गये हैं। इस समुदाय की महिलाओं के साथ बलात्कार, हिंसा व छेड़खानी आम बात है। अधिक शारीरिक परिश्रम करने के बावजूद महिलाओं का ठेकेदारों द्वारा आर्थिक, मानसिक व शारीरिक शोषण करना, संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार व मानवाधिकार का मजाक बनाते हैं।

कोल समुदाय के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह रही कि स्वतन्त्रता के बाद से उन्हें अपनी सही पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ा लेकिन उस संघर्ष का उन्हें आज तक अपेक्षित परिणाम नहीं मिला। कोल समुदाय में जनजाति के गुणों पर सवाल के जवाब में प्रसिद्ध मानवशास्त्री, प्रो0 नदीम हसनैन कहते हैं कि अनुसूचित जाति की सबसे बड़ी पहचान है कि उनमें अस्पृश्यता / छुआछूत पायी जाती है, जबकि कोल समुदाय के साथ ऐसी कोई समस्या नहीं है। बल्कि कोल लोगों में अनुसूचित जनजाति के तमाम लक्षण मौजूद हैं। जैसे, ये गांवों से दूर अपनी colonies, hamlets and habitation बनाकर रहते हैं। कोल समुदाय एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं जिस वजह से एक अलग समुदाय के रूप में इनकी पहचान सुनिश्चित रहती है। ब्राह्मण, पुरोहितों को यह अपने धार्मिक अनुष्ठानों में आमंत्रित नहीं करते हैं। यह प्रकृति

पर आधारित देवी, देवताओं की पूजा करते हैं जैसे बिरमा देवी, लखना देवा, दुल्हा देवा, बाबा देवा, भगत, भसुरिया, असन्न, अमीना, सुब्बन और भरहेर देवी।

कोल समुदाय रोगों के इलाज के लिए आज भी ओझाओं पर विश्वास करते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में बकरे, सुअर आदि अन्य जानवरों की बलि चढ़ाते हैं व मदिरा का सेवन करते हैं। कोल समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विशेषताओं के मद्देनजर हम यह कह सकते हैं कि कोल समुदाय में अनुसूचित जाति की बजाय अनुसूचित जनजाति के गुण विद्यमान हैं।

भारत सरकार के अध्यादेश —— 1936 के अनुसार ——

"Non Aryan Tribes and Kolarion groups of Mirzapur" like Kols, Agariya, Patari, Chero, Bhuiya/Bhuinya were included as "Untouchable and Depressed Classes" in United Province and later on they were included in the list of scheduled caste in Uttar Pradesh in 1950. The other Non Aryan and Kolarian Group communities viz. GOND, KHARWAR, SHARIA, PARHIYA, BAIGA, PANKHA/PANIKA, AGARIYA, PATARI, CHERO, BHUUINYA were also included in the list of Untouchable and Depressed Castes in 1936 but were declared as scheduled caste and scheduled tribe via Order (Ammendment) Act- 2002 but Kols were left out.

उत्तर प्रदेश के कोलों का अपने पड़ोसी राज्यों, मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड के कोलों के साथ में विवाह सम्बन्ध है।

कोलों को उत्तर प्रदेश में क्र0सं0 48 में 66 अन्य जातियों के साथ अनुसूचित जाति का दर्जा, क्र0सं0 30 में छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश में अनुसूचित जनजाति एवं क्र0सं0 32 में बिहार एवं झारखण्ड में अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त है। उत्तर प्रदेश में कोल चित्रकूट (बाँदा), सोनभद्र, इलाहाबाद एवं वाराणसी जिलों में पाये जाते हैं। ये मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़,

बिहार एवं झारखण्ड के कोलों से भिन्न नहीं हैं। इनके सामाजिक सरोकार भी लगभग एक जैसे हैं। यदि मध्य प्रदेश की कोई कोल जाति की लड़की यू0 पी0 के कोल लड़के से विवाह करती है तो उसकी सन्तान को अनुसूचित जाति का ही दर्जा मिलेगा किन्तु यदि उसका विवाह मध्य प्रदेश या बिहार में ही होता है तो उसकी सन्तान अनुसूचित जनजाति कहलायेगी।

कोल समुदायों का मुख्य ठिकाना निम्नवत है ——

	जनपद	**विकास खण्ड**
1	इलाहाबाद	मांडा, उर्वा, मेजा, शंकरगढ़, करछना, चक
2	चित्रकूट (बाँदा)	मानिकपुर, मऊ, चित्रकूट
3	मिर्जापुर	हलिया, मड़िहान
4	सोनभद्र	रॉबर्ट्सगंज, मड़िहान, हलिया, राजगढ़
5	वाराणसी	नौगढ़, साहबगंज

कोलों की जनपदानुसार जनसंख्या निम्नवत है :–

क्र0 सं0	**जनपद**	**कुल जनसंख्या**	**ग्रामीण**	**% with total (Kol)**
1	इलाहाबाद	80344	79290	98.69
2	मिर्जापुर	90653	90260	99.57
3	सोनभद्र	38527	38202	99.16
4	बाँदा	31842	30601	96.11
5	वाराणसी	2264	2098	92.68

Note: - The source of data is 1991 Census.

वैसे वर्ष 2002 के में कोल समुदाय को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किये गऐ एक अध्ययन के आधार पर रिपोर्ट बनाकर मंत्रालय को भेजी गई थी कि कोल समुदाय को भी अनुसूचित जनजाति में शामिल किया जाये। लेकिन मंत्रालय द्वारा कोल की रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष अनुमोदन के लिए भेजी ही नहीं गयी। वजह पूछने पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शोध संस्थान के उप निदेशक डा0 कौशल किशोर बताते हैं, चूंकि मंत्रालय को जो रिपोर्ट उत्तर प्रदेश सरकार

द्वारा भेजी गयीं थी, उसमें कई खामियां थीं। रिपोर्ट में कोल समुदाय की जनजातीय विशेषताओं पर गहन अध्ययन की कमीं का प्रभाव स्पष्ट नजर आ रहा था। क्योंकि रिपोर्ट में कई ऐसे तथ्यों का समावेश था जो खुद कोल समुदाय की जनजातीय विशेषताओं के प्रतिकूल था। यानि एक सही व पूर्ण रिपोर्ट के अभाव में ही मंत्रालय द्वारा कोल समुदाय के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रेषित रिपोर्ट को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमोदन हेतु नहीं रखा गया।

कोल समुदाय उत्तर प्रदेश के करीब 5 जिलों में फैला हुआ है। एक जगह इनका संगठित रूप में न होना इन्हें जनजाति का दर्जा दिलाने में दिक्कत पेश करता है।

लेकिन इस सवाल के जवाब में प्रो0 नदीम कहते हैं कि वर्तमान में आजीविका की समस्या इतनी गम्भीर हैं कि ऐसे भी समुदाय के लोगों को दो वक्त की रोजी–रोटी हेतु अपना मूल निवास स्थान कभी न कभी छोड़ना ही पड़ता है। ऐसे में किसी समुदाय की पहचान पर ही सवाल उठा देना कतई उचित नहीं है। और कोल समुदाय तो वैसे भी बेगारी, शोषण, उत्पीड़न व भुखमरी की समस्या से परेशान है। ऐसे में आजीविका हेतु अपना मूल निवास छोड़ना उसकी मजबूरी है लेकिन उत्तर प्रदेश के कोल समुदाय के लोग बिहार, झारखण्ड व मध्य प्रदेश के कोल जनजाति के लोगों के बींच परस्पर वैवाहिक, सम्बन्ध बनाते हैं। ऐसे में हम उत्तर प्रदेश के कोल समुदाय को भी अनुसूचित जनजाति के तहत रख सकते हैं।

गांधी विद्या संस्थान की वर्तमान दुर्दशा
नारदजी की बन्दगी, नारदवा के घर को गन्दगी

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल
जुलाई, 2012

जो मण्डली धूमधाम से नारद जयन्ती मना रही है, जिसमें वाराणसी के सांसद डॉ मु. म. जोशी मुख्य अतिथि के रूप में बिराजमान होंगे, उसी से जुड़े कुछ तत्व शहर के एक कोने में रहनेवाले नारद (गोंड) के घर में गंदगी भी डाल रहे हैं।

तस्वीर में पीछे जो दो मंजिला भवन है, उसमें संघ परिवार से गहरा रिश्ता जोड़ने वाली एक बड़ी 'विदुषी' महिला रहती हैं और उनके सहयोगी श्रीमान रामेश्वर मिश्र। वैसे पुराने दिनों में जब वे समाजवादी युवा संगठन में थे तब मिश्र ढका रहता था। राजनीतिक–राजनैतिक नहीं, जोड़–तोड़ की कुशल कला के बूते पर ये आज लोक नायक जयप्रकाश नारायण द्वारा 1960 में राजघाट स्थित साधना केन्द्र, सर्व सेवा संघ परिसर में संस्थापित 'दी गांधियन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज' हिन्दी में प्रचलित नाम, गांधी विद्या संस्थान, पर काबिज हैं और पूरी तरह मालिकाना कंसेप्ट से प्रेरित होकर संस्थान की परिसम्पत्तियों का उपयोग उपभोग करते हैं और नीचे गड्ढे में, इस धरती का नारद गोंड रहता है, एक झोपड़ेनुमा टिनशेड में अपने पूरे परिवार के साथ। पत्नी, दो जवान बेटियां, दो जवान बेटे। दुर्भाग्य से बड़ी बेटी और बेटा मानसिक तौर पर विकलांग है। बेटी तो बेचारी एक गया गुजरा केश है, इलाज महंगा है और आजीवन। गांधी विद्या संस्थान से इसके नए मालिकों द्वारा नौकरी से बाहर करने के बाद, नारद मेहनत मजदूरी करते हैं और स्कूल ड्रॉपआउट छोटा बेटा एक दुकान पर चौकीदारी। कोशिश तो उसको इस जगह से भी बाहर

करने की रही है, और जगह आदमियों के रिहायश के लायक कतई नहीं रह गई है। बगल में बांस का झाड़, साँप, बिच्छू का अभयारण्य, शीलनभरी जगह और वह भी घुप्प अंधेरे में, बिना बिजली के पर, बेचारे नारद जायें तो जायें कहाँ?

एक भूमिहीन परिवार के सदस्य, नारद गोंड, गंवई बोली में भूझ जवानी के दिनों में पड़ोसी गाजीपुर जिले से काम की तलाश में वाराणसी आए थे। गांधी विद्या संस्थान में काम मिल गया, फिर नियमित भी हो गये। अनपढ़ थे पर काम करने और बात करने का सलीका आता था। खूब पुष्ट, छः फुटा शरीर, पर इस पर कोई गुमान नहीं। लाठी लेकर खड़े हो जाय तो कोई भी दहल जाय। पर सब सहने की अनोखी साधना।

खैर, नारद इस जगह तब से रहते हैं, जब कैम्पस की इस मालिकन का साया भी यहां नहीं पड़ा था और इसे अपनी मेहनत से रहने के काबिल बनाया था। बिजली का कनेक्शन भी था। काम के कोई निश्चित घंटे/समय नहीं थे, इसलिए यहीं रहना सुविधाजनक था। नौकरी ले ली, पर वेतन बकाया, भविष्यनिधि ग्रेच्युइटी का भुगतान नहीं हुआ। वैसे भी यह जगह सर्व सेवा संघ की थी और नारद इसका रख रखाव, किराया भी देता रहा। इसलिए यहां रहने का उसे पूरा अधिकार है। कुछ अजीब सा लगता है कि सर्व सेवा संघ के व्यवस्थापक ने मालकिन से ऑर्डर लेना बेहतर समझा।

पर उसको इस जगह को छोड़कर जाने के लिए भय और दबाव डालने की कोशिशें चलती रहीं। पहले पीने के पानी की टोटी बन्द कर दी गई। फिर बिजली, जो एक लट्टू जलता था, वह भी गुल कर दिया गया। घर के सामने थोड़ी सी जगह में जो साग–सब्जी पैदा करते थे, उसे बन्द करवा दिया, बाद में घर की औरतों के नहाने के लिए जो आड़ थी, वह भी तुड़वा दी। बेटियों से घर में बेगार करवाई जाती थी, वे अब यह नहीं करना चाहतीं, इससे रोष और बढ़ा है।

और भी एक अनोखा कृत्य। उनके घर का बाथरूम, किचन, धोवन वगैरह का पानी एक पक्की नाली से बांस के झाड़ की तरफ बहाया जाता था। नारद की झोपड़ी की सीध लेकर नाली तोड़वा दी, ताकि यह सीधे उसके घर में बहे। चलते–चलते एक बात हमारे इस नारद मुनि के नैतिक मूल्यों के बारे में। इन्हें कानूनी सहायता के लिए एक स्थानीय बसपा नेता के पास भेजा गया। उन्होंने किसी वकील के सुझाव पर कहा कि शिकायतपत्र में जोड़ दिया जाय कि मैडम ने उन्हें जातिसूचक गालियां दीं, केस मजबूत हो जाएगा। नारद अड़े रहे, गालियां नहीं दी हैं तो कैसे लिखवा दूं? सोचनीय है, हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान (2003), डॉ0 जोशी के कर–कमलों से नारद को मिलना चाहिए था या साइटेशन में हीं असत्य है कि 2002 से गांधी विद्या संस्थान की निदेशिका हैं?

सामाजिक सरोकार के प्रतिनिधि सेवी के रूप में

गांधी विद्या संस्थान की वर्तमान स्थिति दर्शाता प्रो0 बी0 एन0 जुयाल का मुख्यमंत्री के नाम पत्र

9 मई, 2012
श्री अखिलेश यादव
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

प्रिय
आपने प्रदेश में चले आ रहे ''स्क्वाइल सिस्टम'' की जगह विकास की उम्मीद जगाई है। हम आपकी सम्पूर्ण सफलता की कामना करते हैं।
हम इस पत्र के द्वारा जिस ऐतिहासिक संस्था की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह कई मायने में देश की विकास यात्रा का आईना है। हम आशा करते हैं आप पिछली सरकार के निहायत गैरवाजिब फैसलों की समीक्षा के तौर पर कम से कम इस पर भी ध्यान देंगे।
ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के तौर पर स्वतन्त्रता के पहले दशक में स्वैच्छिक भूमि–सुधार के अभिनव प्रयोग, भूदान–ग्रामदान आन्दोलन के आरोहण से प्रेरित होकर श्री जयप्रकाश नारायण स्वयं समाजवाद एवं गांधीवाद के बीच सेतु बने और उन्होंने एक ऐसे संस्थान की कल्पना की जो सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक समाज विज्ञान के बीच सेतु बने। इसे साकार करने की दिशा में 1960 में राजघाट, वाराणसी में ''दी गांधियन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज'' की स्थापना की। संस्था इसी नाम से सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1860 के तहत पंजीकृत हुई जिसका हिन्दी में प्रचलित नाम ''गाधी विद्या संस्थान'' रखा गया। आरभिक दौर में वे स्वयं इसके मानद निदेशक भी रहे और उनके नेतृत्व में राष्ट्रीय और अन्तर्राश्ट्रीय ख्याल के

समाज चिन्तकों व वैज्ञानिकों का सहयोग भी मिला ।

संस्थान 1975–76 में इमरजेंसी की मार पड़ने पर भी अगले 40 साल तक अच्छी तरह चला। 1972 में भारतीय समाज विज्ञान परिषद, मानव संसाधन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त परिषद और उत्तर प्रदेश सरकार की मैचिंग स्कीम के अन्तर्गत भी आ गया। इसकी गिनती राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों में होने लगी थी।

तब एन0डी0ए0 सरकार (1998–2004) बनी और डॉ0 मुरली मनोहर जोशी (मानव संसाधन मंत्री)। उनके भगवाकरण के ऐजेण्डे के मुताबिक कई स्तर पर पाठ्यक्रम बदलने लगे, नया इतिहास लिखवाया जाने लगा, चुनिंदा अध्ययन संस्थानों में दखलंदाजी होने लगी इत्यादि। इस दौर में 'दी गांधियन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज' में भी कुछ और भी निम्न स्तर का षडयन्त्र रचा गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में लेक्चरर, डॉ0 कुसुमलता केडिया भारतीय जनता पार्टी सरकार में भाजपाई नेताओं के प्रभाव से, तीसरे प्रयास में, संस्थान में सीधे प्रोफेसर का पद हासिल करने में सफल हो गई थी। डॉ0 जोशी के मानव संसाधन मंत्री बनते ही उनकी संस्था का निदेशक बनने की महात्वाकांक्षा जाग गई। सीधे रास्ते से असफल होने पर उनहोंने पहले तो अपने ही एक आदमी रामेश्वर मिश्र, जिसका संस्था से कोई सम्पर्क नहीं था, महज उनको आवंटित मकान में उनके साथ रहता था, के नाम से संस्थान में वित्तीय अनियमितताओं की शिकायत सीधे मंत्रीजी के पास भेज दी। दो तीन तरह की जॉच हुई। काम न बनते देख एकतरफा निर्णय लेते हुए मंत्रीजी के आदेश पर समाज विज्ञान परिषद से संस्था का अनुदान बन्द करवा दिया गया। साथ–साथ प्रदेश सरकार का समतुल्य अनुदान भी बन्द कर दिया गया। इसके बाद प्रदेश स्तर पर संस्था का पंजीकरण निरस्त करने की कारवाई शुरू हुई और इसमें वे सफल हो

गए।

संस्थान का मामला कई बार संसद में उठा। कई राष्ट्रीय स्तर के राजनेताओं द्वारा संस्थान के पक्ष में हस्तक्षेप किया गया जिसमें पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखरजी, वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह प्रमुख थे। माननीय मुलायम सिंह यादव ने लोकसभा में 23 जुलाई, 2003 के दिन संस्थान के मामले में अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए सरकार से उचित कार्रवाई की मांग की थी। डीरजिस्ट्रेशन कराये जाने की आशंका राज्यसभा में तत्कालीन नेता विपक्ष ने पहले ही व्यक्त कर दी थी।

सहायक निबन्धक फर्म, सोसाइटीज एवं चिट्स वाराणसी ने तत्कालीन भाजपा राज्य सरकार के प्रभाव से विघटन का वाद वाराणसी के जिला जज के सामने पेश कर दिया और उन्होंने महज एक तकनीकि बिन्दु कि, अमुक समय में संस्था के संचालक मण्डल की सदस्य संख्या सात से कम हो गई थी, दस्तावेज सबूतों को नकारते हुए संस्था को भंग कर दिया गया और अन्तरिम व्यवस्था के तौर पर उत्तर प्रदेश शासन में सचिव उच्च शिक्षा को संस्था के संचालन के हेतु तौर तरीकों पर सुझाव देने के लिए एक समिति गठित करने का आदेश दे दिया जिसमें यह भी व्यवस्था दी कि संस्थान के निदेशक उक्त संचालन समिति के सदस्य सचिव/निदेशक द्वारा नियुक्त किए जायं। न्यायालय के इस स्पष्ट निर्देश के बावजूद प्रदेश सरकार में तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री, जो भाजपा से दल बदल कर ब्राह्मण भाईचारे में बसपा में गए थे, उक्त डॉ0 कुसुमलता केडिया, जो कभी भी संस्था की निदेशक नहीं, बल्कि इस बीच अनवरत अनुशासनहीनता के कारण निदेशक के प्रस्ताव पर संचालक मण्डल द्वारा बर्खास्त कर दी गई थी, उसे ही संचालन समिति का कन्वीनर बना दिया और अपने मनमुताबिक लोगों को संचालन समिति में रख लिया।

'बहिनजी' को खुश करने के लिए आगे चलकर संस्थान को 'मान्यवर कांशीराम शोध संस्थान' में बदलने और मायावती जी की बिरूदावली गाने की बातें भी तय हो गई ।

संस्था के वैधायी प्रबन्धन की ओर से अतिरिक्त जिला जज के उक्त फैसले के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील की गई । अपील तो स्वीकार हो गई पर दुर्भाग्य से उपरोक्त आदेश पर रोक नहीं लगी । अपील अभी भी लंबित है । सालों तक तो उच्च शिक्षा सचिव की ओर से कोई कॉउन्टर अफिडेविट भी उच्च न्यायालय में दाखिल नहीं हुआ । शासकीय समिति के सहयोग से इस बीच डॉ0 केडिया ने संस्थान का ताला भी जिला प्रशासन और पुलिस से मिलकर खुलवा लिया और संस्था की परिसम्पत्तियों पर कब्जा हासिल कर लिया ।

आप से आग्रह है कि निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दें :

1. भूतपूर्व न्यायाधीश श्री गिरिधर मालवीय की अध्यक्षता में पहला न्यायिक काम तो यह किया कि संस्था के सभी 40 के लगभग कर्मचारियों को डिसमिस कर दिया : कहा संस्था समाप्त हो गई, उसके साथ तुम्हारी सेवाएं भी। पी0 एफ0 और ग्रेचुइटी तक की जिम्मेदारी से हाथ धो लिए। यद्यपि विभाग ने वाद हिन्दी में प्रयुक्त नाम गांधी विद्या संस्थान के विरुद्ध चलाया था पर विद्वान न्यायाधीश ने भंग किया ''दी गांधियन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज'' पंजीकृत नाम को। और कुछ समय बाद उक्त संचालन समिति ने गांधी विद्या संस्थान के नाम से स्वयं को पंजीकृत करवा लिया उक्त शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों से दबाव डलवाकर, महज चार सदस्यों के हस्ताक्षरवाले स्मृतिपत्र पर। अब तिकड़म यह है कि ''गांधी विद्या संस्थान'' तो भंग नहीं हुआ था। संस्था इस आधार पर भंग की गई थी कि एक समय उसके सदस्यों की संख्या सात से एक दो कम

हो गई थी और अब जेपी द्वारा संस्थापित मूल संस्था होने का दावा किया जा रहा है ।

2. नई पंजीकृत संस्था को भारतीय समाज विज्ञान परिषद ने मान्यता ही नहीं दी। उ0 प्र0 सरकार से भी वित्तीय सहायता नहीं मिली। अब डॉ0 केडिया और उनके खास सहयोगी रामेश्वर मिश्र ने अपना रोजगार चलाने के लिए कई रास्ते अपनाए जैसे –
   - संस्था के भवनों में बाहर के किराएदार बसाना और उनके नाम प्राइवेट बिजली कनेक्शन दिलवाना।
   - इस मामले में लगभग 6 माह पूर्व एक प्राइवेट कॉलेज के मालिक से कम से कम लाखों रूपये की मासिक किराये पर संस्था के शोध कक्षों तक को छात्रावास में बदलना, उक्त व्यक्ति (कोई पुनीत मिश्र) जो टाटा ट्रक के डीलर हैं, और दावा करते हैं कि उनका पड़ाव मुगलसराय जीटी रोड पर 60–90 बीघा या एकड़ जमीन है, उनको संस्था में घुसने की क्या जरूरत पड़ गई?क्या उन्हें बिना आवश्यक सुविधाओं के मैनेजमेंट संस्थान चलाने की इजाजत मिल गई?इससे आशंका होती है। लीज हासिल करने के पीछे क्या ''स्कीमिंग'' हो सकता है? इसके अलावा भी डॉ0 केडिया/मिश्र का कई ऐसे तत्वों से सम्बन्ध रहा है जो संस्था के परिसर को ''हालीडे रिजोर्ट'' में बदलना चाहते हैं।
   - संस्था के सामानों को बेचना जैसे सागौन का मूल्यवान फर्नीचर, पंखे, पुस्तके, दस्तावेज इत्यादि।

इस प्रकार मूल संस्था की किसी भी गतिविधि का संचालन तो दूर, पुस्तकालय तक नहीं खोला गया और उसे बर्बाद होने दिया गया। गतिविधियों के नाम पर संघ परिवार के "महानों" का महिमा मण्डन जिसके लिए मध्य प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग से मोटा चारा पानी मिल जाता है, एक दो घंटे के

सेमिनार, व्यावसायिक एस्ट्रोलॉजर का दरबार लगाना इत्यादि।

जिस संस्था को जेपी की और राष्ट्रीय महत्व की संस्था होने का सम्मान मिलना चाहिए था उसे इस डॉ0 केडिया/रामेश्वर मिश्र जैसे साजिशकर्ता व्यक्तियों की धोखाधड़ी का पूरी तरह शिकार हो जाना रोकने के लिए हम आप से अपील करते हैं कि :

1. क्योंकि कानूनन संस्था उत्तर प्रदेश सरकार के संरक्षण में हैं और शासकीय संचालन समिति के कार्य–कलापों के लिए सरकार की जवाबदेही बनती है, अतः संचालन समिति को आगे खुराफात करने की क्षमता पर रोक लगाना जरूरी है। इसलिए इसे भंग कर नई संचालन समिति का गठन करें और विधिसम्मत तरीके से संस्था के तत्कालीन निदेशक प्रो0 दीपक मलिक को समिति का सदस्य सचिव नामित करें।
2. ''गांधी विद्या संस्थान'' के नाम से धोखाधड़ी से पंजीकृत संस्था का पंजीकरण रद्द किया जाय और इसमें शामिल अधिकारियों के विरुद्ध जॉच की कार्यवाई की जाय।
3. यदि उचित समझें तो वर्तमान में उच्च न्यायालय के विचाराधीन अपील के मामले में पिछली उ0 प्र0 सरकार के विरोध पक्षकार बनने के निर्णय की समीक्षा करें और संस्थान के पक्ष को समर्थन देने का निर्णय लें।

अन्त में आपको यकीन दिलाता हूँ कि मेरा इस मामले में किसी प्रकार निजी स्वार्थ नहीं जुड़ा हुआ है।

धन्यवाद

जया जी का विचार–निखार

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

जी हाँ, यहाँ बात हो रही है जया बच्चन के समाजवादी या समाजवादिक विचारधारा में निखार आने की। इस शोध पत्रक के शुरू में यह बतलाते चलें कि यह विषय महत्वपूर्ण तो है, इस वक्त समाजवादी पार्टी यानि सप्पा, जैसे आम आदमी बोलता है, लखनऊ की लड़ाई लड़ रही है और पार्टी सुप्रीमो डंके की चोट पर कह रहें हैं कि यदि यह चुनाव दंगल जीत गए तो दिल्ली ढहाना मुश्किल नहीं होगा। वैसे भी लखनऊ में जो नए होर्डिंग लगे हैं, उनमें धार्मिक कैलेण्डरों की कला शैली में पृष्ठभूमि में दूर आकाश से जया जी और जयाप्रदा जी रंग भूमि में बिल्कुल 'लगन नई' के साथ खड़े मुलायम सिंह ब्रदर्स एण्ड सन्स (इस बार प्रतीक भी) को शक्ति प्रदान करती दिखाई देती हैं। क्या फर्क पड़ता है, यदि महिला आरक्षण पर बहस में पार्टी नेता इस कोटि की महिलाओं को बालकटी कहें। फिर वे मुलायम सिंह, अमर सिंह की अति महत्वपूर्ण प्रेस वार्ताओं की शोभा भी बढ़ाती हैं जैसे कि डी0ए0 (डियरनेस अलाउंस) नही के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर। और संकेत हैं सपा में उनके बढते कद के। एक अकेले वे ही रोड शो देने वाली थीं वह भी बुन्देलखण्ड से। चुनौतियों से भरी जगह है, किसानों द्वारा आत्महत्या की सबसे अधिक खबर यहीं से आई हैं ––– मुआवजे में सिंगल डिजिट रकम में सरकारी बैंक चेक बंटने की भी। वैसे खतरनाक जगह भी है पर कोई चिन्ता की बात नहीं। पीएसी और वर्षों से लगीं दस्यु शिरोमणि, एस0ओ0जी0 की कई बटालियनों को बचाकर रखना किस दिन काम आएगा?

वैसे जया जी का यहां के दद्दू जी लोगों से एक अलग प्रकार

का लगाव भी हो सकता है। उनके पिताश्री (स्वर्गीय) टी0 सी0 भादुड़ी ने 1960 के दशक में चम्बल, बुंदेलखण्ड के दस्यु दलों पर सरकार केन्द्रित दो पुस्तकें लिखी थीं, 'वैली ऑफ टेरर' और 'वियोण्ड द वैली आफ टेरर'। बिनोबा शान्ति मिशन, 1962 के उपरान्त मैंने भी उनसे परामर्श लिया था, जयप्रकाश नारायण के द्वितीय चम्बल शान्ति मिशन, 1972 के सिलसिले में। विषय में मेरी रुचि की एक वजह यह भी हो सकती है। मैंने जया जी को देखा है साक्षात, भोपाल में, उनके सिने तारिका बनने के कुछ पहले।

फिर मैं भी एक किस्म का समाजवादी रहा हूँ। इसी बारे में आज कुछ ज्यादा ही कन्फ्यूज्ड हूँ। सोचता हूं यह शोध पत्रक को लिखने की प्रक्रिया में कुछ रोशनी मुझे भी मिले।

सूत्र 1. बात असली नकली ठाकुर की

संदर्भ–वर्ष 2003, महानायक तब तक सपा के लिए सरोगेट (छद्म) प्रचार तक ही सीमित थे जैसे सपा के लिए रक्तदान शिविर में अमर सिंह के साथ दिखाई देना। पर जया जी खुले तौर पर प्रचार में उतर आई थीं। वाराणसी की चिरईगांव विधानसभा सीट के लिए उपचुनाव था। क्षेत्र में ठाकुरों का खासा दबदबा है, संख्या बल में और उससे बढ़कर धन बल में भी यानि दबंगई के मजबूत आधार। स्वाभाविक है कि सीट ठाकुरोभिमुख रही है। याद होगा, इस चुनाव में श्री राजनाथ सिंह के सुपुत्र, पंकज सिंह, ने यही क्षेत्र अपनी पहली उड़ान भरने के लिए चुना था। पहले कुछ इस तरह की खबर उड़ रही थी कि शायद सपा अपने बसपा दलबदल कर आए वर्तमान ठाकुर विधायक को इस बार टिकट न दे। इन विधायक मंत्रीजी का भी इस प्रकार का बयान छपा कि मैं बहिनजी से कब अलग हुआ था। यही राय फंसा भी गया था इसलिए पिता पुत्र कुछ दिन तक कार्यकर्ताओं द्वारा दबाव के ड्रामा के बाद

नैतिकता की बात ओढ़कर बलिदान की मिशाल कायम कर अलग हो गए।

वर्ष 2003 के उपचुनाव में सपा की मुश्किल यह थी कि उसका उम्मीदवार ठाकुर नहीं था। यही दल बदल कर हासिल हुए ठाकुर नेता तब बसपा के टिकट पर चुनवा लड़ रहे थे। इस परिस्थिति में चुनाव को वीरेन्द्र सिंह बनाम अमर सिंह बनाना आवश्यक हो गया। दोनों नेताओं के पीछे लामबन्दी शुरू हुई। अमरसिंह भी रंगीन पगड़ी पहने (छींट की) और नंगी तलवार उठाए पोस्टरों पर छा गए। जया जी भी अपने वक्तब्यों में उनके असली ठाकुर होने का दावा प्रमुखता से प्रस्तुत करने लगीं और ठाकुर मतदाताओं से उनके उम्मीदवार को अपना मत देने की दलील पेश करने लगी। जयाजी को असली–नकली का प्रमाण पत्र देने का पूरा अधिकार भी था आखिर जन्मजात ब्राह्मण जो ठहरीं। बात इतनी सतही भी नहीं है, इसके पीछे गहरा ऐतिहासिक अनुभव है। उस समय का जब नेताजी यानि मुलायम सिंह के नेता चौधरी चरण सिंह के बारे में कहा जाता था कि वे जिसको यादव (यहाँ फॉर्मूला चल सकता था) कह दें, वही असली यादव है। यादव उम्मीदवारों के एक ही सीट पर चुनाव लड़ने की स्थिति में नेताजी की राजनैतिक जड़ें भी उसी दौर की हैं। पर यह तीर यहां लगा नहीं। ठाकुर मतदाता इतना लचीले भी नहीं थे कि (अमर सिंह के कहने पर मर भले जायें), राजभर को वोट दे देते।

सूत्र 2. जाको राखे सांइया .....

संदर्भ–वर्ष 2006, जया जी को लाभ के पद के चक्कर में राज्यसभा की सदस्यता छोड़नी पड़ी थी। आनन–फानन में दुबारा चुने जाने और सदस्यता की सपथ लेने के बाद वे मीडिया से मुखातिब थीं। उनका एक ही साउण्ड वाइट

सबकों याद होगा : जाको राखे सांइया ————

यह खुलासा करना जरूरी नहीं कि सांइया कौन है और मारने वाला कौन?इसी संदर्भ में उन्होंने पहले भी कहा था कि सपा वाले यदि हाथ पकड़ते हैं तो छोड़ते नहीं।

सूत्र 3. सपा अकेली मर्दों की पार्टी है

संदर्भ–वर्ष 2007, उच्चतम न्यायालय द्वारा बसपा विधायकों की पहली खेप के दलबदल को असंवैधानिक घोषित करने और पार्टी सुप्रीमो के पास आय के ज्ञात श्रोतों से अधिक सम्पत्ति के मामले में सीबीआई द्वारा प्रारम्भिक जांच पर रोक लगाने की पुनर्वीक्षा अपील अमान्य घोषित होने से उत्पन्न आसन्न संकट के साये में पार्टी का हंगामा सम्मेलन हो रहा था, लखनऊ में। जया जी भी मुख्य वक्ताओं में थी (यद्यपि कह बोलती हैं)। उन्होंने एक सूत्र वाक्य में बहुत कह दिया : "सपा अकेली मर्दों की पार्टी है।'' कृपया ध्यान दें, यह एक तरह से डॉ0 लोहिया के ''हल्ला बोल'' के सिद्धान्त का विस्तार है।

संयोग से यह लिखते वक्त जया जी फिर वाराणसी में हैं, अमर सिंह के साथ कम और चिरईगावं में उन्हीं गैर कम असली ठाकुर उम्मीदवार के प्रचार के लिए। उत्तर प्रदेश की बहू होने का हवाला देकर, मुंह दिखाई में वोट मांग रही हैं।

कमलापति त्रिपाठी और वह इमरजेंसी की दोपहर

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

स्व0 कमलापति त्रिपाठी (पंडित जी) को पिछले साल उनके 103 वें जन्मदिवस पर खास तरह याद किया गया। उन्हें कांग्रेस की संस्कृति का प्रतीक बताया गया। यह आज की कांग्रेस संस्कृति के बारे में कितना सही है यह तो मैं नहीं कह सकता, पर आपातकाल के दौर का यह प्रसंग उनके द्वारा स्थापित राजनैतिक 'सिविलिटी' (शिष्टता) का एक आदर्श प्रतिमान होगा।

जिन्होंने आपातकाल का, खासकर शुरू के सात–आठ महीनों का, माहौल जिया है, वे समझ सकते हैं, इमरजेंसी और सीधे इन्दिरा गांधी के एक कटु आलोचक के प्रति शिष्टता का ऐसा व्यवहार, वह भी सार्वजनिक मंच पर, कितना दुश्वार हो सकता था।

यह वास्तव में उस दौर की दस्तावेजीकरण लायक परिघटना है। इसे कई बार लिखने का सोचा पर कुछ पूर्वाग्रहों : इस संदर्भ में यही कहेंगे, ऐसा नहीं हो सका। पहली बात तो यह है कि किसी कांग्रेसी नेता, विशेषतः वे जो इमरजेंसी के बाद भी श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ बने रहे, को, बाँया हाथ का सैल्यूट देने में भी भारी संकोच होता रहा। धीरे–धीरे यह हिचकिचाहट हटने लगी, इमरजेंसी विरोधी नेताओं की सामाजिक, आर्थिक नीतियों और राजनैतिक व्यवहार ने कोई खास फर्क नहीं छोड़ा, भले ही दूसरी आजादी की जंग के सिपाहियों को आज राजनैतिक पेंशन देकर अपनी 'इमेज' बनाए रखे हों।

दूसरी बात, मेरी पंडितजी के साथ 'इमेज' की एक समस्या रही है जिसमें दूरी भी एक कारण थी। वैसे भी कांग्रेस की राजनीति

में पश्चिमी उत्तर प्रदेश उनके विरोधी गुट के नेता चन्द्रभानु गुप्त का प्रभाव–क्षेत्र था। पंडितजी के बारे में कुछ कम ही छपता था, वह भी एक ही ऐंगल से। उस जमाने में राष्ट्रीय अखबारों के पास भी नेताओं का एक ही फोटो ब्लॉक होता था। वही सालों साल चलता था। पंडितजी का वह कुन्तलकेश, बब्बुगोशा सा चेहरा, माथे पर गोल सा चन्दन–टीका बानगी वाला फोटो ब्लॉक चलता था। कुल मिलाकर एक पुरातनपंथी, महन्त की सी छवि उभरती थी।

पंडितजी को नजदीक से देखने का पहला अवसर मुझे 1965 में गांधी विद्या संस्थान, वाराणसी में मिला। उन्हें 'इम्पेडिमेण्ट्स टू डेबलपमेण्ट' (विकास में अवरोध) पर एक राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार के अंतिम सत्र के उद्‌बोधन के लिए आमंत्रित किया गया था। उनके उद्‌बोधन के पहले सेमिनार में चली चर्चाओं के निष्कर्ष प्रस्तुत हुए। जो उन दिनों प्रचलित ट्रेडिशन एवं/बनाम मॉडर्निटी और डेवलपमेण्ट इंडिकेटर्स की अवधारणाओं के इर्द–गिर्द चलीं थी।

पंडित जी ने एक अनौपचारिक सा भाषण दिया जिसमें उनकी विनोदप्रियता भी खूब झलकी। उन्होंने प्रारम्भ ही इस तरह से किया : मैं तो काशी का भैरव हूं, मैं सोच रहा था कि यह संस्थान यहां इतने दिनों से चल रहा है, मुझे पहले क्यों नहीं बुलाया गया?काशी में आकर जो पहले सीधे बाबा भैरवनाथ के पास नहीं जाता उसके ऊपर उनके भैरव का डण्डा पड़ता है। उन्हें लगा होगा कि तब तक हुए विकास के स्तर को कमतर आंका गया था। उन्होंने विकास के इंडिकेटर्स पर चुटकी लेते हुए कहाः यह बताइए आजकल कोई 'चिंउटा' खाता है?सब सफेद चीनी खाते हैं विशेश्वरगंज (वाराणसी की आढ़त) में ढूंढे नहीं मिलेगा। आपमें से किसी ने खाया है? हमने खाया है।

इमरजेंसी लगी, संस्थान पर डण्डा तो पड़ा पर पंडितजी ने कम से कम डण्डे का जोर बढ़ाने का काम नहीं किया जैसा कि

अनेक थोथे–हल्के नेता अपना वजन बढ़ाने के लिए कर रहे थे। वे जिन गांधियन संस्थाओं से जुड़े थे, अपने पद पर बने रहे। यह सही है कि संस्थाए सीधे जेपी आन्दोलन से जुड़ी भी नहीं थी, पर ऐसी संस्थाएं भी लपेटी जा रही थी।

अभी आपातकाल लागू हुए छः महीने भी नहीं हुए थे और उसका घोर दमनकारी दौर चल रहा था। गांधी जयन्ती (2 अक्टूबर, 1975) के दिन श्री गांधी आश्रम, वाराणसी ने अपनी शास्त्री नगर सिगरा शाखा का उद्घाटन कार्यक्रम रखा था और आचार्य जेबी 'दादा' कृपलानी को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया था। ऊहापोह के बीच, कार्यक्रम यथावत कायम रहा।

'दादा' कृपलानी एक दिन पहले वाराणसी पंहुचे और राजघाट स्थित गांधी विद्या संस्थान के अतिथि गृह में ठहराए गए। दादा शरीर से बहुत क्षीण तो हो ही गए थे, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। उन्होंने बताया कि वे दिल्ली में बहुत घुटन महसूस कर रहे थे, इसलिए बाहर निकलना चाहते थे। गांधी आश्रम की एक शाखा का उद्घाटन तो बस उपलक्ष मात्र था। उनकी राजनैतिक घुटन की रोषपूर्ण अभिव्यक्ति दूसरे दिन उनके भाषण में भी हुई।

शास्त्री नगर में जहां आज एक छोटा सा पार्क है, वहीं शामियाने तले उद्घाटन समारोह हुआ। समारोह का माहौल तो बिल्कुल नहीं था। आपातकाल घोषित होने के बाद, ऐसी सार्वजनिक सभा होना ही अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं था। मंच पर दादा कृपलानी के साथ विचित्र भाई (विचित्र नारायण शर्मा) और पंडित जी बैठे थे। दोनों ने गांधी आश्रम की स्थापना और अपना अस्तित्व निर्माण करने के संघर्ष में दादा के नेतृत्व के बारे में बताया। अधिकांश खादी और रचनात्मक कार्य धारा की बात की।

'दादा' का भाषण पूरी तरह राजनैतिक था। उन्होंने आजादी के

बाद आजीवन प्रतिपक्ष की राजनीति की थी । प्रखर वक्ता रहे, संसद में और बाहर भी। अपनी तेजाबी जुबान के लिए भी मशहूर थे। वे पूरी तरह जयप्रकाश जी के आन्दोलन के पक्षधर तो नहीं थे। विशेष में उनके सम्पूर्ण क्रान्ति के आह्वाहन को चीन (सांस्कृतिक क्रान्ति) से प्रभावित कह चुके थे। पर अधिनायकवादी नेतृत्व शैली और आपातकाल से बहुत आक्रान्त थे। उनका भाषण उफनती नदी के प्रवाह की तरह उग्र और विध्वंसक था। पंडितजी धीरे धीरे असहज लगने लगे पर उन्होंने बहुत सहजता और शालीनता से दादा पर विराम लगाने का प्रयास किया : "दादा आप काफी देर से बोल रहे हैं। आपका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। आप थक गए होगें।" पर दादा थमने के लिए तैयार नहीं थे। वे माइक पर ही झिड़कते हुए बोले, मुझे क्यों बाहर छोड़ रखा है। मुझे भी बन्द कर देते। और उनका भाषण और भी तल्ख हो गया। कोई भी इसके बाद जरूर बंद हो जाता।

चार–पांच मिनट के बाद पंडितजी ने फिर दादा को रोकने का प्रयास किया : दादा आप क्या कहना चाहते हैं हम समझ रहे हैं। हम इतने तो नालायक नहीं हैं। पर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं। इसे सभा का नाटकीय अंश ही समझिए, पंडित जी के राजनैतिक वारिस, लोकपति त्रिपाठी मेरे आगे ही बैठे थे। बहूजी भी साथ थी। लोकपति तमतमाते हुए खड़े हुए और आस–पास बैठे लोगों को सुनने लायक आवाज में बड़बड़ाये : बाबूजी मंच पर बैठे हैं, नहीं तो मैं बुढ़्डे को अभी बंद करवा देता। और सभा स्थल छोड़कर चले गए।

सर्व सेवा संघ, गांधी विद्या संस्थान के इर्द गिर्द उन दिनों बहुत सारे खुफियागिरी करने वाले मंडराते रहते थे, उनमें से एक आई बी के अफसर भी थे। जिन बेचारों को आई.टी.जी. (इण्टरमीडिएट टेक्नॉलजी ग्रुप) लंदन कोई विदेशी खुफिया एजेन्सी नहीं है, यह समझने के लिए न जाने कितने चक्कर

लगाने पड़े, उन्हें कहते सुना गया कि कृपलानी का भाषण होते होते करीब एक हजार टेलीग्राम पंडितजी की मलामत करते हुए प्रधानमंत्री के कार्यालय को भेजे जा चुके थे।

पंडितजी को गांधी आश्रम में दादा के सानिध्य में काम किए हुए पचास वर्ष से अधिक हो गए होगें। स्वातन्त्रोत्तर राजनीति में वे कभी, साथ नहीं रहे। दादा उनकी पार्टी के कटु आलोचक रहे थे। दादा के प्रति उनके सम्मान और शिष्टता को, वह भी एक असामान्य परिस्थिति में, एक आदर्श उदाहरण मानना पड़ेगा।

आपातकाल के दौरान पंडितजी के अपनी जगह खड़े रहने के और भी प्रकरण हो सकते हैं। एक वरिष्ठ पत्रकार के अनुसार मई 1976 में जब 'शुक्लानीति' (तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री विद्या चरण शुक्ला की प्रेस स्वातंत्र्त्रय विनाश नीति) को वैधानिक स्वरूप देने के विचार पर अंतिम निर्णय लिया जा रहा था तो कमलापति त्रिपाठी ने इसका विरोध किया और इसे विधिक मान्यता मिलने से रोका। सी0 राघवन : स्टोरी ऑफ इमरजेंसी पीपल मस्ट नोः मेनस्ट्रीम, नई दिल्ली, 2 अप्रैल 1977। इन्दिरा काँग्रेस के अन्दर की ऐसी कुछ और भी स्टोरी होंगी।

आदिवासी जनस्वास्थ्य और मानव अधिकार आयोग : एक निराशाजनक अनुभव

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

अक्टूबर 2004 झारखण्ड में दुमका जनपद के काठीकुण्ड, आमरा पाड़ा, शिकारीपाड़ा आदि, आदिवासी–बाहुल प्रखण्डों में तब एक नया पर्यावरणीय द्वन्द्वउमाड़ पर था। प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित हाथियों के लिए संरक्षित पलामू राष्ट्रीय प्राणी–विहार से निकला हुआ हाथियों का झुण्ड गावों को रौंद रहा था। पर्यावरणीय चेतना से ओत–प्रोत अधिकारियों का कहना था कि जंगली हाथियों और 'पालतू' (सबजुगेटेड) आदिवासियों को साथ ही रहना है और आदिवासियों को अपनी 'स्पेस' हाथियों के साथ 'शेयर' करना सीखना होगा। पारिस्थितिक कारणों से इस प्रकार की नई सोच का परिणाम पहाड़िया जनजाति के गाँवों को सबसे अधिक झेलना पड़ रहा था। जिन विद्रोही समूहों को 'आदिम' अंग्रेज, उपनिवेशी शासक काबू में रखने के लिए उनके पहाड़ों से नीचे बसाई गई कॉलोनियों में नहीं उतार सके, उन्हें जंगली हाथियों के उत्पात के कारण नीचे के गाँवों में शरण लेने के लिए विवश होना पड़ था। संथाल परगना गजेटियर (1956) में दर्ज है कि यहाँ आखिरी जंगली हाथी का शिकार 1893 ई0 में हो गया था। इसी द्वन्द्व को समझने के सिलसिले में मैं दुमका के इलाके में था।

इसी बीच 'प्रभात खबर' (देवघर संस्करण) अक्टूबर 9 और 10 में, उन्हीं पहाड़िया समूहों के विषय में छपे शीर्ष समाचार : भूखे हैं, बीमार हैं, आसनबनी चापुड़िया के आदिवासी; क्या टी0बी0 मरीजों की बस्ती है, करकुटिया? और ठीक उसी के नीचे ''दुमका में एक ही पहाड़िया टोला में कालाजार के 37

रोगियों की पहचान'' आदिवासी स्वास्थ्य की दयनीय स्थिति के संकेत दे रहे थे। मैंने सोचा मानव अधिकारों में स्वास्थ्य के प्रति प्राथमिकता देने की बात हो रही है, क्यों न इस परिस्थिति से उबरने में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की मदद ली जाये। मुझे लगा कि खास कर कालाजार सम्बन्धित रिपोर्ट का आयोग के सामने जनहित याचिका का आधार बनाया जा सकता है। एक तो यह एक प्रशासनिक स्तर पर दौरे पर गए स्वास्थ्य निरीक्षकों के दल की रिपोर्ट पर आधारित है और इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगने चाहिए। दूसरा इसमें इस बीमारी की व्यापकता के बारे में पूरा अनुमान मिलता है। परीक्षण में शामिल कुल 42 व्यक्तियों में से 37 कालाजार और 4 'ब्रेन मलेरिया के मरीज। यानि 42 में से 41! रिपोर्ट में समीपस्थ रानेश्वर प्रखण्ड के गांवो में भी कालाजार के भयंकर प्रकोप का जिक्र था। साथ ही स्वास्थ्य अधिकारी के हवाले से यह भी कहा गया था कि कालाजार के मरीजों को दवा नहीं दी जा सकती थी क्योंकि वे खाली पेट थे। उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं था और ऐसे में दवा देना और घातक होता। सामूहिक स्तर पर भूख और बीमारी की एक भयावह तस्वीर सामने आती थी। मैंने अखबार की कतरनों के साथ एक याचिका राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को भेज दी। आयोग ने इसका संज्ञान ले लिया और 3 दिसम्बर, 2004 को झारखण्ड सरकार के मुख्य सचिव के नाम नोटिस भी जारी हो गया। लगा कि एक बड़ी उपलब्धि हासिल हुई है। बड़ा रोमांच सा होता है जब कोई उच्च न्यायिकपीठ किसी मामले में सरकार को नोटिस जारी करती है।

याचिका तो दायर हो गयी – केस नं0 1022/34/2004–05। झारखण्ड सरकार को 4 सप्ताह में अपनी रिपोर्ट आयोग को देनी थी। चूक होने पर उसके खिलाफ भी कार्यवाही का स्पष्ट संकेत था। परन्तु 4 सप्ताह क्या, पूरे 24

सप्ताह के बाद, दिनांक 03 जून 2005 (राँची) के पत्र के साथ झारखण्ड सरकार ने अपनी रिपोर्ट आयोग को भेजी, किसी उपसचिव के हस्ताक्षर से। आयोग ने इस अवज्ञा या चूक को संज्ञान में भी नहीं लिया। हो सकता है झारखण्ड सरकार ने इतने गम्भीर प्रश्न पर एक तथ्यपरक रिपोर्ट तैयार करने के लिए अतिरिक्त समय मांगा हो, जिसकी कोई सूचना याची को नहीं थी।

और रिपोर्ट भी क्या? 625 सीधी सपाट टेलेग्राफिक पंक्तियाँ, कालाजार–ग्रसित घाजापाड़ा के बारे में, और 2 पंक्तियाँ नीचे कुछ नामों के साथ आसनबनी और चापुड़िया के बारे में और मुख्य आशय ये कि कुछ राहत पहुँचा दी गई है। इसी को अग्रसारित करने वाले उपसचिव ने विस्तृत विवरणी कहा था। इस बात का मुझे कुछ अंदेशा था कि स्याह को सफेद करने की कोशिश हो सकती है। इसलिए इस बीच आयोग से एक स्मरण–पत्र में मैंने यह भी प्रार्थना की थी कि बेहतर तो यही होना चाहिए कि आयोग अपने स्तर पर किसी सुयोग्य व्यक्ति या संस्था द्वारा जाँच करवा ले। यह इसलिए भी कि यह एक अत्यन्त संवेदनशील मुद्दा है, क्योंकि पहाड़िया 'आदिम जातियों' की श्रेणी में शामिल है जिसके वर्गीकरण का प्रमुख आधार ही 'डेमोग्राफिक डिक्लाइन' याने जनसंख्यकीय ह्रास है; जनगणनात्मक या गुणात्मक या दोनों। यह भी कि मैं निजी हैसियत से आयोग के पास आया हूँ, मैं क्षेत्र से दूर वाराणसी में रहता हूँ, 75 वर्ष का वृद्ध हूँ और यदि आवश्यक हुआ तो एक काउन्टर रिपोर्ट तैयार करने के साधन मेरे पास नहीं है। सचमुच में मैंने अपनी इस सीमा को समझते हुए एक–दो दुमका–स्थिति गैर सरकारी संगठनों से इस मामले को आगे बढ़ाने के लिए कहा भी पर किसी ने रूचि नहीं दिखाई।

ठीक 9 महीने बाद, 30 मार्च 2006 को झारखण्ड सरकार की उक्त रिपोर्ट आयोग के सम्मुख रखी गई। मार्च 30 की

सुनवाई पर पारित आदेश 10 अप्रैल की डाक डिसपैच मुहर के साथ 22 अप्रैल को मुझे मिला, यानि ठीक 3 सप्ताह बाद, और मुझे सप्ताह के अन्दर उक्त रिपोर्ट पर अपना पक्ष प्रस्तुत करने का समय दिया गया था।

मैंने बिना समय खोए, क्योंकि क्षेत्र में जाकर एक समुचित काउन्टर रिपोर्ट बन नहीं सकती थी, आयोग से प्रार्थना की किः

1. प्राथमिक टिप्पणी के तौर पर मेरा यह कहना है कि जाँच उसी प्रशासनिक स्तर पर करवाई गई है, जिसकी अकर्मण्यता, अकुशलता या सरासर लापरवाही जाँच का मुख्य विषय है। जाँच किसी स्वतन्त्र व्यक्ति या उच्च समिति द्वारा करवाया जाना उपयुक्त होता। कम से कम नागर समाज संगठन के किसी प्रतिनिधि को जाँच से सम्बद्ध किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, जाँच प्रक्रिया की पारदर्शिता पर कई प्रश्न उठते हैं। आयोग द्वारा केवल इसी एक आधार पर सरकारी रिपोर्ट को अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए।
2. मुझे प्रथम दृष्टि में ही तथाकथित जाँच रिपोर्ट अपूर्ण, अविश्वसनीय और अपवचनापूर्ण और टालू (इवेसिव) लगती है। मेरी याचिका का सरोकार मुख्यतः पहाड़िया जनजाति में सामूहिक स्तर पर व्याप्त कालाजार की बीमारी से था पर जाँच रिपोर्ट ने इस तथ्य को छुआ तक नहीं। मेरी याचिका का आधार ही 'प्रभात खबर' अक्टूबर 10, 2004, में इसका जिक्र नहीं है। परोक्ष में केवल इतना कहा है कि लोगों का समुचित इलाज किया गया और विटामिन की गोली दी गई। किसका और किस रोग का समुचित इलाज हुआ है और कब? इसका खुलासा नहीं किया गया है। क्या एक बार गाँव जाने से समुचित इलाज हो सकता है?कालाजार जैसी किसी बीमारी का क्या विटामिन की गोली अपने में एक इलाज है?'प्रभात खबर'

स्वास्थ्य अधिकारी, डॉ0 दिलीप भगत के हवाले से छपी इस खबर का खण्डन भी नहीं किया गया कि कालाजार के रोगियों को उसकी सुनिश्तिच दवा नहीं दी जा सकती क्योंकि वे खाली पेट थे, उनके पास खाने की कोई सुविधा नहीं थी और ऐसे में कालाजार की दवा खाना जानलेवा हो सकता था।

3. जाँच रिपोर्ट में इतना ही कहा गया है कि परिवारों में अन्त्योदय कार्ड और कल्याण विभाग द्वारा चिकित्सा अनुदान बाँटे गए। परिवारों की संख्या, पहचान या अन्य तथ्यात्मक विवरण नहीं दिए गए है, जिनका सत्यापन हो सके।
4. 'प्रभात खबर' में इनसेट में दिए गए नामों में से बाबूलाल देहरी की पैरालाइसिस (पक्षाघात) से मृत्यु हो जाना बताया गया। कब मृत्यु हुई, कैसे पता चला कि पक्षाघात से ही मृत्यु हुई है?बाकी के बारे में लिखा गया है ''बीमार था/थी, ठीक हो गया/गयी है। क्या बीमारी थी?किसने इलाज किया? आदि सभी तथ्य गायब हैं।
5. मेरी याचिका में यह स्पष्ट आग्रह किया गया था कि : (अ) पहाड़िया गाँवों में कालाजार महामारी की तरह पाँव पसारे हुआ है और भुखमरी भी। (ब) पहाड़िया कल्याण के लिए एक अलग विभाग है और इस मद में काफी बड़ा आवंटन सरकार द्वारा किया जाता है। यह पूछा जाना चाहिए, इसका क्या उपयोग होता है? (स) माननीय उच्चतम न्यायालय ने खाद्य सुरक्षा अधिकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रभावी तौर पर क्रियान्वयन के लिए स्पष्ट निर्देश दिए हैं। इनका अनुपालन क्यों नहीं हो रहा है?राज्य सरकार की रिपोर्ट में ये सभी प्रश्न टाल दिए गये हैं।

मैंने अपना उत्तर ई–मेल और डाक, दोनों से आयोग को भेज दिया था। उसकी एक और प्रति अपने दिनांक 25 अगस्त

2006 के स्मरण–पत्र के साथ भेजी। अक्टूबर 2006 में (तिथि ठीक से याद नहीं) आयोग के मुख्यालय 'फरीदकोट हाउस' स्वयं जाकर केस की स्थिति जानने का प्रयास भी किया। मुझे सिर्फ लॉ सेक्सन के किसी असिस्टेंट तक पहुँचने का अवसर मिला जिसने बिना केस फाइल देखे अपने आने का उद्देश्य लिखकर देने के किए कहा। इस आश्वासन के साथ कि सूचना भेज दी जायेगी, जो कभी नहीं आयी। इस तरह दिल्ली तक की दौड़ व्यर्थ रही।

15 फरवरी, 2007 को आयोग के कार्यालय से यह सूचना आती है कि 31.01.2007 को मामले की सुनवाई हुई। यह आदेश दिया गया कि शिकायतकर्ता की ओर से कोई उत्तर न आने के कारण अधिकारियों द्वारा भेजी गई रिपोर्ट को रिकॉर्ड पर लिया जाता है और केस बन्द किया जाता है। फिर भी मैंने अपने 10 मार्च, 2007 के माननीय अध्यक्ष को सम्बोधित प्रार्थना पत्र में यह बताते हुए कि कब और कैसे मैंने अपना उत्तर भेज दिया था, यह याचना की कि केस को इस तरह खारिज किया जाना और इसका दोष मुझे देना सही नहीं है। अतः इस मामले में आगे की कार्यवाही हो। पर आयोग से किसी प्रकार की सूचना मुझे नहीं मिली। केस एक बार 'डिस्पोज ऑफ' (खारिज) हुआ तो हुआ। इसमें भी लगभग 2.5 महीने लग गए, यद्यपि मामला एक संकटापन्न (इन्डैंजर्ड) मानव समुदाय से सम्बन्धित था।

क्या यह केस राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की कार्य पद्धति के बारे में कई बुनियादी प्रश्न खड़े नहीं करता?क्या मानव अधिकार अतिक्रमण/संरक्षण के मामले भी वाद–परिवाद के दायरे में ही चलेंगे?बिना अधिवक्ता या अभिकर्ता के केस की पैरवी नहीं होगी?याची को महज एक वादी या शिकायतकर्ता क्यों माना जाय?यह तो जनहित का मामला था। आखिरकार आयोग स्वयं ही राज्य सरकार द्वारा

भेजी गई रिपोर्ट की समीक्षा क्यों नहीं कर सकता था, जबकि जाँच रिपोर्ट की अपूर्णता, त्रुटियाँ और पद्धति सम्बन्धी दोष प्रत्यक्ष थे! और यदि मेरे उत्तर पर ही आगे की कार्यवाही निर्भर थी तो मुझे एक तो नोटिस भेजा जा सकता था कि मेरा उत्तर न मिलने की अवस्था में क्यों केस खारिज नहीं कर दिया जाय? मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करने में क्या प्रक्रियागत बाधा थी कि आयोग अपने किसी सुयोग्य रिपोर्टियर कमिश्नर से एक स्वतंत्र जाँच करवा ले। जबकि मैंने आयोग को स्पष्ट लिखा था कि काउण्टर रिपोर्ट तैयार करने के संसाधन मेरे पास नहीं है और आयोग ने 30 मार्च 2006 की सुनवाई में मेरी इस असमर्थता को संज्ञान में भी लिया। राज्य सरकार ने कुछ राहत पहुँचाने की बात कर दी। आयोग सन्तुष्ट हो गया। सबसे बुनियादी मानव अधिकारों के लिए स्वतः हनन जवाबदेही व जिम्मेदारी की कोई बात नहीं!ऐसे मामले में भी सुविधा–सन्तुलन सरकारों के पास में ही रहेगा?

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नोटिस को राज्य सरकार के मुख्य सचिव ने कितने सम्मान व गम्भीरता से लिया, यह उनकी रिपोर्ट में स्पष्ट झलकता था। जांच समिति के तीन सदस्य दुमका सदर के ही अनुमण्डल अधिकारी, पहड़िया कल्याण अधिकारी और सहायक असैनिक शल्य चिकित्सा अधिकारी थे। जमीनी स्तर पर जवाबदेही भी इन्हीं अधिकारियों की थी। शायद इसीलिए जवाबदेही के पहलुओं को छोड़कर रिपोर्ट में क्या राहत पहुँचाई गई, इसी का हवाला दिया गया।

यद्यपि याचिका में उठाया गया मुद्दा जन–स्वास्थ्य से सम्बन्धित था। जाँच प्रक्रिया में इस विषय क्षेत्र से जुड़े अधिकारों की भूमिका कुछ संशयात्मक लगती थी। रिपोर्ट में उनका पदनाम ऊपर कुछ और नीचे कुछ और था। समिति के सदस्यों की नामावली में सहायक असैनिक चिकित्सा

अधिकारी और उनका नाम खाली छोड़ी गई जगह में हाथ से लिखा गया था और अन्त में हस्ताक्षर के नीचे असैनिक शल्य चिकित्सक सह–मुख्य स्वास्थ्य अधिकारी। यदि यह तीन सदस्यीय समिति की संयुक्त रिपोर्ट बनी तो पदनाम की जगह खाली छोड़ने की क्या जरूरत थी।

क्या यह बेहतर नहीं होता कि आयोग जांच के बिन्दु और दायरे के बारे में स्पष्ट निर्देश देता। इस दशा में राज्य को एक ही गम्भीर समस्या को इस प्रकार हल्के ढंग से लेने की छूट तो नहीं मिलती।

सबसे बुनियादी सवाल तो यह है कि एक बार कुछ रिलीफ (राहत) पहुँचा देना भर मानव अधिकार के संरक्षण के बराबर है? कहाँ तो प्रश्न बीमारी और भुखमरी के गर्त में गिरे या यों कहें, गिराए गए एक पूरे आदिम जाति समूह के जीवन जीने के अधिकार का था और कहाँ बात राशन कार्ड बांटने तक ही सीमित हो गई। यह भी सवाल नहीं उठा कि अभी तक क्यों नहीं बँटे थे?शायद यह मानव अधिकार संरक्षण का एक लीडिंग केस बन सकता था, पर बना नहीं।

वॉलन्टरी हेल्थ ऐसोशियेशन नई दिल्ली कार्यालय में

टिहरी बांध के विरुद्ध रिपोर्टों को सरकार ने दबाया

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

भाखड़ा बांध से स्वतंत्र भारत में बांधों की परम्परा शुरू हुई। बड़े बांधों के प्रति आस्थावान जवाहरलाल नेहरू ने 'भाखड़ा' को 'आधुनिक भारत के मंदिर' की संज्ञा से नवाजा था लेकिन वर्तमान में अतिविशाल बांधों के दोष सामने आने लगे हैं। जिसके कारण बांध विकास की जगह विनाश उत्पन्न करने लगे हैं। इन्हीं बांधों में 'टिहरी बांध' भी एक है। टिहरी बांध अपनी विशालता, निर्माण की स्थिति एवं सांस्कृतिक विरासत, 'गंगा' की दृष्टि से महाविनाशक तथा खतरनाक है।

टिहरी बांध परियोजना का आरंभ–भागीरथी गंगा की घाटी में टिहरी के आस–पास जल विद्युत उत्पादन परियोजनाओं की खोज से 1960 के आस–पास हुआ। प्रारम्भिक सर्वे में वर्तमान स्थान को अनुपयुक्त माना गया था तथा टिहरी से लगभग 12 किलोमीटर ऊपर डोब्रा स्थान का चयन किया गया था। वहां पर कुछ कार्य भी प्रारम्भ हुआ था लेकिन अन्त में भागीरथी और भिलंगना के संगम के समीप टिहरी में इस प्रस्ताव को स्वीकृत किया गया।

1969 में गांधी जन्म शताब्दी के अवसर पर उत्तराखण्ड सर्वोदय मंडल ने अनेक क्षेत्रों में जागरण का कार्यक्रम संचालित किया। इसी जागरण के बाद चिपको सहित अन्य आन्दोलन प्रारंभ हुए। इनमें टिहरी की भूमिका प्रमुख थी। टिहरी परियोजना के निरीक्षण के लिए जब केन्दीय मंत्री के. एल. राव उस परियोजना को देखने गये तो उनको परियोजना के विरोध में पत्रक दिया गया। टिहरी के प्रमुख लोगों ने मंत्री से मिलकर टिहरी बांध परियोजना का विरोध किया। टिहरी के लोगों का मुख्य विरोध ऐतिहासिक टिहरी शहर के संरक्षण से

जुड़ा था। उस समय मंत्री ने कहा था कि वे जनता से सम्पर्क करेंगे। इस बड़ी परियोजना के विषय के रूप में दो या तीन छोटे बांधों की परियोजना से उन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता था परन्तु उसकी उपेक्षा की गयी। इसके बाद भी सुन्दर लाल बहुगुणा ने इस आन्दोलन का नेतृत्व संभाला तथा परियोजना का वैकल्पिक ढांचा भी सुझाया।

टिहरी बांध परियोजना का प्रारंभ एक राज्य परियोजना के रूप में हुआ। 1972 में उ०प्र० सरकार के द्वारा योजना आयोग से इसकी मंजूरी प्राप्त की गयी। इसी के साथ–साथ विरोध भी प्रारंभ हुआ परन्तु टिहरी बांध परियोजना को स्वीकृति अगस्त 1976 में आपातकाल के दौरान मिली तथा राज्य सिंचाई विभाग ने योजना पर कार्य प्रारंभ किया। जन विरोध शांतिपूर्वक जारी रहा। 1977 में 100 सत्याग्रही गिरफ्तार भी हुए तथा पूरा टिहरी शहर पुलिस छावनी में बदल गया।

संसद में अपीलः टिहरी बांध परियोजना के विरोध में एक हजार प्रमुख लोगों के हस्ताक्षर वाला आवेदन संसद की प्रतिवेदन समिति को दिया गया। इस समिति ने अपना कार्य पूरा कर लिया। परन्तु समिति द्वारा रिपोर्ट देने के पूर्व ही 1977 में लोक सभा भंग कर दी गयी। जिसके कारण पूरी प्रक्रिया धरी की धरी रह गयी। आपात काल के बाद जनहित याचिका के भी प्रयास किये गये तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी एक याचिका प्रस्तुत की गयी परन्तु याचिका में उठाये गये बिन्दुओं के संदर्भ में केन्द्र एवं उत्तर प्रदेश सरकार ने विशेषज्ञों की राय का हवाला देकर अपना पक्ष रखा और न्यायालय द्वारा अगली सुनवाई नहीं हो सकी। इसके बाद भी जनता का विरोध जारी रहा।

परियोजना की जांच–अगस्त 1978 में डबरानी (उत्तर काशी) के समीप हुए लगभग 13 घंटों के भू–स्खलन के कारण बांध का कार्य पूर्णतः क्षतिग्रस्त हुआ। इस बीच भूस्खलन से

प्रभावित लोगों के पुनर्वास की समस्या तो रही ही साथ ही भू–स्खलन से हुई क्षति की समस्या थी। इन सब कारणों से बांध विरोधी आन्दोलन एक नये रूप में प्रारंभ हुआ।

टिहरी बांध विरोधी आन्दोलन और समय दोनों आगे बढ़ते रहे। 1980 में जब श्रीमती इंदिरा गांधी पुनः सत्ता में आयीं तो उन्होंने इसी विरोध के कारण विज्ञान और टेक्नालॉजी विभाग को इस बांध परियोजना का गहराई से निरीक्षण का आदेश दिया। परिणामतः 1980 में डॉ० सुनील राय की अध्यक्षता में विज्ञान एव टेक्नालॉजी विभाग ने विशेषज्ञों की एक समिति टिहरी बांध परियोजना से जुड़े तकनीकि पक्षों की जांच के लिए गठित की। इस अध्ययन दल ने 6 वर्षो की गहन जांच के उपरान्त 1986 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। डॉ. सुनील राय जांच समिति ने गुप्त रूप से यह सुझाया कि 'तीव्र भूकम्पीय खतरे के कारण बांध नहीं बनाना चाहिए'। इसके आधार पर केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने इस परियोजना को अनुमति देने से इन्कार किया। इसके बावजूद बांध का कार्य चलता रहा।

सोवियत सहायता के कारण आगे बढ़ा कार्य : सोवियत संघ के तत्कालीन राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाच्योव (25–28 नवम्बर, 1986) के भारत आगमन पर उत्तर प्रदेश के तात्कालीन मुख्यमंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने टिहरी बांध के लिए आर्थिक सहायता का प्रस्ताव रखा। सोवियत संघ ने प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 200 करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता के साथ–साथ मशीन, तकनीक एव विशेषज्ञ सहायता भी उत्पलब्ध करायी। इस सोवियत सहायता से अधर में पड़ी टिहरी बांध परियोजना को जीवनदान मिला। इसी समय टिहरी बांध परियोजना 'केन्द्र और उत्तर प्रदेश सरकार की संयुक्त परियोजना के रूप में परिवर्तित हुई। इसके संयुक्त उपक्रम के लिए संचालक के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी

'टिहरी हाइड्रो डेवलपपेण्ट कॉरपोरेशन की स्थापना की गयी।' इसके उपरान्त यह परियोजना एक राज्य की परियोजना के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की परियोजना में बदल गयी।

इस विशाल परियोजना पर डॉ0 सुनील राय समिति द्वारा उठाये गये बिन्दुओं को निष्प्रभावी करने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति बनायी गयी। इस समिति ने नये संदर्भों को जोड़ते हुए अपनी रिपोर्ट दी। इसके उपरान्त इस परियोजना के संबंध से प्रधानमंत्री कार्यालय सक्रिय हुआ। इस समय तक इस परियोजना पर भी कार्य एवं व्यय जारी था। इसी के साथ–साथ सुनील राय समिति की संस्तुतियों को निष्प्रभावी करने के लिए 'जिओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के निदेशक की अध्यक्षता में गठित समिति एव केन्द्रीय जल आयोग द्वारा भी परियोजना के पक्ष में संस्तुति प्राप्त करने के प्रयास हुए। इन रिपोर्टों के बाद टिहरी बांध परियोजना के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार ने नकारात्मक पक्षों की उपेक्षा का प्रयास किया। जबकि 1990 फरवरी में प्राप्त एनवाइरन्मेंट एप्राइजल कमेटी (रिवर वैली प्रोजेक्ट) की रिपोर्ट एनवाइरन्मेंट परियोजना के खिलाफ थी। इस समिति की प्रमुख संस्तुतियां अधोलिखित प्रकार थीं –

भूकम्पीय खतरे, भूभौतिकी कारणों, सामुहिक एवं पर्यावरणीय प्रभागों के साथ–साथ टिहरी बांध परियोजना से जिस प्रकार के लाभ का अनुमान किया गया है तथा उससे संबधित जो आंकड़े दर्शाये गये हैं उससे समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि यह परियोजना पर्यावरण की दृष्टि से अनुमति योग्य नहीं है। सरकार ने इस समिति की रिपोर्ट के तुरन्त बाद एक और समिति नियुक्त की जिसका उद्देश्य बांध की सुरक्षा से जुड़े प्रश्नों का उत्तर तलाशना था। इस समिति ने कुछ सप्ताह में 'एनवाइरन्मेट एप्राइजल कमेटी' की आपत्तियों को रद्द करते हुए अपनी संस्तुति दी, जिसके आधार पर

जुलाई 1990 में टिहरी बांध परियोजना को अगली अनुमति मिली। यद्यपि इसमें वैधानिक त्रुटियां रह गयीं। 1996 में प्रधानमंत्री देवगौड़ा ने सुन्दरलाल बहुगुणा के अनशन के बाद एक समिति पुनः नियुक्त की।

आन्दोलन का दूसरा चरण : टिहरी बांध का विरोध जारी रहा। सरकारें आती जाती रहीं परन्तु बांध की प्रगति जारी रही। इसके पीछे बांध से जुडे नौकरशाह–ठेकेदार के लाभ मूल कारण भी रहे। इसी कारण पर्यावरण आदि के बिन्दुओं की उपेक्षा कर इच्छित रिपोर्ट भी बनती रहीं। लेकिन दिसम्बर 1998 में टिहरी बांध आन्दोलन का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। क्योंकि इसी समय नदी के प्रवाह को मोड़कर बांध का आगे का कार्य आरंभ हुआ था। आन्दोलनकारियों द्वारा इस भू–क्षेत्र पर कब्जा करने के कारण कार्य रोकना पड़ा। इस प्रकार शांतिपूर्ण आन्दोलन जनवरी 1990 तक चला। इसी बीच बांध के विरोध में सुन्दरलाल बहुगुणा ने भागीरथी के किनारे बांध निर्माण स्थल पर अनशन आरंभ किया। सुन्दरलाल बहुगुणा ने पर्यावरण से जुडे सवालों को उठाते हुए 'गंगा–हिमालय बचाओ' आन्दोलन प्रारंभ किया।

गंगासागर से गंगोत्री साइकिल यात्रा एवं विरोध : सुन्दरलाल बहुगुणा ने गंगासागर से गंगोत्री तक की साइकिल रैली का नेतृत्व भी किया। अक्टूबर 1991 में उत्तर काशी में भूकम्प आने के कारण साइकिल यात्रा को गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ, उ०प्र०) के समीप स्थगित करना पडा। इसके बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री पी0 वी0 नरसिंहा राव ने भूकम्प के बाद उत्तरांचल की यात्रा के दौरान बहुगुणा से भेंट की तथा परियोजना की समीक्षा का आश्वासन भी दिया। इसके बाद स्वतंत्र रूप से निष्पक्ष विशेषज्ञों से योजना की समीक्षा की मांग हुई। लेकिन समीक्षा नहीं हो सकी। इस बीच निर्माण की ठेका वाली कम्पनी एवं आन्ध्र प्रदेश के कुछ सत्ताधारी सांसदों के रिश्तों का प्रश्न

रहा क्योंकि इसी कारण समीक्षा नहीं हो सकी थी। यहां तक कि समीक्षा के बदले निर्माण कार्य के ठेके वाली कम्पनी को व्यापक सुरक्षा दी गयी। 1 दिसम्बर, 1991 को जन विरोध आरंभ हुआ था जो फरवरी के अन्त तक जारी रहा। 28 फरवरी के रात में पुलिस ने सुन्दरलाल बहुगुणा और श्रीमती विमला बहुगुणा सहित 40 लोगों को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। इन गिरफ्तार लोगों में दो 12 वर्ष की बच्चियां तथा 84 वर्ष की बूढी महिला भी थी। 45 दिनों के बाद प्रधानमंत्री के आष्वासन के बाद बहुगुणा ने अपना अनशन तोड़ा। फिर भी परियोजना की समीक्षा नहीं हो सकी। छिट–पुट आन्दोलन चलता रहा। पुनः 14 अप्रैल, 1995 को चिपको की तर्ज पर मशीन के सामने जमीन पर चिपको के द्वारा विरोध प्रारंभ हुआ। यह आन्दोलन 26 दिन जारी रहा तथा बहुगुणा को पुनः गिरफ्तार किया गया और 22 मई, 1995 को हिरासत में ले लिया गया। बाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्देश एवं प्रधानमंत्री के द्वारा आश्वासन देने पर सुन्दरलाल बहुगणा ने अनशन समाप्त किया परन्तु इस बार भी प्रघानमंत्री का आश्वासन सिर्फ आश्वासन ही रहा।

अपनी मांगों को लेकर सुन्दरलाल बहुगुणा ने पुनः अनशन किया। इस बार प्रधानमंत्री देवोगौड़ा ने टिहरी बांध परियोजना की समीक्षा के लिए विशेषज्ञों के दो दलों को नियुक्त किया। विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट एक वर्ष बाद दी, जो मुख्यतः सुरक्षा कारणों से जुडी थी। इसके बाद भी विरोध चलता रहा और परियोजना पर कार्य जारी रहा। इसके अलावा समीक्षा के प्रयास एवं जांच के कार्य पुनः हुए परन्तु परिणाम ज्यों का त्यों रहा।

बांध की विभीषिका से जुड़े वैज्ञानिक तथ्य : बड़े बांधों के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने टिहरी बांध क्षेत्र को भूकम्प की दृष्टि से खतरनाक घोषित किया है। वैज्ञानिकों के अनुसार 8.5 रिक्टर

स्केल के भूकम्प की स्थिति में बांध का जीवन नष्ट हो सकता है। बांध में लगे रूसी वैज्ञानिकों के अनुसार बांध की डिजाइन 7.2 रिक्टर रकैल तक सुरक्षित है।

1973 में भूकम्प एवं हिमालय क्षेत्र विषय पर दिल्ली में संपन्न अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला में विश्व के प्रमुख भूकम्प विशेषज्ञों ने भाग लिया। उन विशेषज्ञों ने सर्वसम्मति से टिहरी बांध को खतरनाक माना। कार्यशाला की रिपोर्ट सम्पादक प्रो० बी० के० गौर सहित अन्य भूकम्प विशेषज्ञों ने प्रधानमंत्री को इस संदर्भ में पत्र भेजा। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि भूकम्प विशेषज्ञों एवं वैज्ञानिकों की राय में टिहरी बांध का निर्माण खतरनाक एव गेर जिम्मेदाराना है।

टिहरी बांध से जुडे तथ्यों के साथ छेड़छाड़ : उत्तरकाशी के भूकम्प के बाद टिहरी बांध के संदर्भ में भूकम्प का प्रश्न मुख्य हो गया है। डॉ० सुनील राय के अनुसार सरकार जान–बूझकर समस्याग्रस्त इस परियोजना की समीक्षा नहीं कर रही है। उन्होंने इस बांध तथा इसकी डिजाइन को अनुपयुक्त माना (दी टाइम्स ऑफ इंडिया, 31 अक्टूबर, 1991)। इस प्रकार यह सत्य है कि विशाल बांध उस क्षेत्र में सर्वथा अनुपयुक्त है।

उक्त के अलावा यह भी तथ्य महत्वपूर्ण है कि टिहरी बांध की उम्र लगभग 100 वर्ष आंकी गयी है परन्तु गंगा ऐक्शन प्लान प्राधिकरण ने इसकी उम्र लगभग 63 वर्ष ही आंकी है तथा कुछ वैज्ञानिकों ने इसकी उम्र 40 वर्ष ही आंकी है। टिहरी बांध के बिल्डरों ने भी अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार टिहरी बांध की सफलता 50% आंकी है। इसी प्रकार वैज्ञानिकों की दृष्टि में भी 50% बांध खतरनाक है। इस संदर्भ में जे. एन. एडवांस साइंटिफिक रिसर्च, बंगलोर ने हिमालय क्षेत्र के संबंध में व्यापक कार्य किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूकम्पविदों, वैज्ञानिकों आदि की

दृष्टि से अनुपयुक्त एवं खतरनाक टिहरी बांध परियोजना जारी है। उत्तर काशी के भूकम्प के बाद 'दी स्टेट्समैन' ने संपादकीय में लिखा था कि 'टिहरी बांध क्या होगा? इसके साथ ही गंगा के नष्ट होने का खतरा भी महत्वपूर्ण है।

पर्यावरण मंत्रालय के दस्तावेज में टिहरी बांध के टूटने की दशा में सम्भावित नुकसान को दर्शाने वाली निम्न तालिका दी गई है। जलाशय 22 मिनट में खाली हो जायेगा और कितनी ऊँची पानी की दीवार उन क्षेत्रों का सर्वनाश करने कितनी देर बाद कहाँ पहुंच जाएगी? यह विवरण इस तालिका में है :–

स्थान (कि.मी.)	बांध से दूरी (कि.मी.)	बाढ़ के पानी के पहुँचने का समय	पानी की दीवार की ऊंचाई मीटर में
ऋषिकेश	80	63 मिनट	260.00
हरिद्वार	104	80 मिनट	232.00
बिजनौर	179	4 घण्टा 45 मिनट	17.72
मेरठ	214	7 घण्टा 25 मिनट	9.85
हापुड़	246.5	9 घण्टा 50 मिनट	8.78
बुलन्दशहर	266.5	12 घण्टा	8.50

दो अंदाज ये भी

संस्मरण

प्रो0 बी0 एन0 "जुझारू"

प्रो0 एस0 सुन्दरम
अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी, वाराणसी

मेरा जुयाल साहब से परिचय 1965 में हुआ परन्तु वे 1964 में बनारस आ चुके थे। परन्तु मैं मिला था जनवरी 1965 में क्योंकि मैनें गांधी विद्या संस्थान जनवरी में ही ज्वाइंन किया था। मेरा पहला प्रोजेक्ट एक साल तक किसी दूसरे प्रोफेसर के निर्देशन में था। एक साल बाद जुयाल साहब के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जहाँ तक सम्बन्ध की बात है वह दो तरह से था। एक तो उनका रिसर्च से सम्बन्धित, तो मुझसे पूछिए तो वह बी0 एन0 जुयाल नहीं बल्कि बी0 एन0 जुझारू थे और दूसरा बाद में चर्चा होगी। रिसर्च के सम्बन्ध में मैनें उनमें जो खासियत देखी, बनारस के अलावा उत्तर प्रदेश के पूर्वी इलाकों में, पर्वतीय अंचल में, मध्य प्रदेश के चम्बल इलाकों में, बंगाल के वर्धमान जिले के गाँवों में भी मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला। तो जो एक खासियत देखी कि वह बहुत ज्यादा मेहनती थे। इसके अलावा क्षेत्र अध्ययन में सूचनाएँ एकत्र करने में बहुत माहिर थे। इसी तरह की एक रिपोर्ट जयप्रकाश नारायण जी ने जुयाल साहब से तैयार करायी, जिसको लेकर वे (जयप्रकाश जी) तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी, उप प्रधानमंत्री वाई0वी0 चौहान और उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश जैसे कई राज्यों के मुख्यमन्त्रियों से मिले थे। उसके बाद उन डाकुओं का समर्पण संभव हो सका था। तो जो मैं मिशाल देना चाहता हूँ कि वह (जुयाल जी) "इंफार्मेशन पम्पाउट" कराने में बहुत एक्सपर्ट थे। एक बार जब हम लोग भिण्ड जिले (मध्य प्रदेश) में थे तो वहाँ के बहुत रिर्सोसफुल राजनीतिक कार्यकर्ता हम लोगों के साथ

गये थे कुछ गाँवों में जहाँ पर मिलना था। और जुयाल साहब समाज के एक खास तबके से मिलकर बात करना चाहते थे और वे राजनीतिक कार्यकर्ता उसी को नजर अंदाज कर रहे थे। लेकिन जुयाल साहब अपने अनुभव के आधार पर जानते थे कि समाज का वह तबका ग्रामों में किस दिशा में रहता है। और बातों में बहकाकर जुयाल साहब उसी दिशा में बढ़ते गये, और अन्तत्वोगत्वा यह हुआ कि हम लोग समाज के सबसे कमजोर तबके के क्षेत्र में थे। और यह अच्छा हुआ कि मैं वहाँ मौजूद था क्योंकि उन्होंने जो इन्फॉर्मेशन निकलवाई वह मेरे लिये आई ओपनर जैसी थीं। पुराने डकैतों के सम्बन्ध में अक्सर रॉबिन हुड की इमेज प्रस्तुत की जाती है कि वो गरीबों की बहुत मदद करते हैं, इत्यादि। लेकिन वहाँ जो उस तबके के लोगों ने बताया कि हम लोगों के खाने के लाले पड़े रहते थे और उनका दल आता था, फलां तारीख को आऊँगा, इतना इकट्ठा करके रखना वरना तुम जानते हो तुम्हें क्या भुगतना पड़ेगा और जाते समय सर के कुछ बाल कटाकर चाकू से छीलकर वहाँ नमक डालकर जाते थे। इस प्रकार मेरे दिमाग में पढ़ी–पढ़ाई या बतायी गयी, वहीं रॉबिन हुड जैसे उनकी तस्वीर बनी हुई थी। लेकिन वहाँ के बुर्जुर्गों, जिनकी आयु 80 से ऊपर रही होगी; ने जो बताया तो मेरी आँखें फटी रह गयीं। और यह काबिलियत केवल जुयाल साहब में थी कि वे हमें उस स्थान पर ले जाकर इतनी कीमती एवं आश्चर्यजनक जानकारियाँ दिला सके। बाद में एक बार हम लोग गाजीपुर के गावों में एक प्रोजेक्ट के सिलसिले में गये थे, तो वहाँ पर हमलोगों ने देखा वह आश्चर्यजनक था। गावों से शाम को लौटकर गाजीपुर शहर, जहाँ हम लोगों का हेडक्वार्टर था, बगल में कुछ और परिचित लोग थे जो हमारे मित्र ललित चन्दोला जी से परिचित थे तो शाम को एक घन्टा वहाँ बैडमिण्टन भी खेल लिया जाता था। रात को खाने के बाद हम

लोग तो सोने चले जाते थे। जनवरी–फरवरी की रात की ठण्ड में जब कभी रात में डेढ या दो बजे बाथरूम के लिए उठते थे तो देखते थे कि जुयाल साहब टेबल पर बैठे काम में लगे हुए हैं। इस तरह उनके मेहनत करने का जो जज्बा मैनें देखा, वह सराहनीय है। रिसर्च के अलावा जो मेरी घनिष्ठता उनसे बढी, वह मेरी कमजोरी कह लीजिए या विशेषता कि मेरा संपर्क उनसे ज्यादा बढ़ता है जिनको खेल में रूचि हो। मुझे तो केवल क्रिकेट का शौक था, परन्तु जुयाल साहब को हर खेल का शौक था। इस वजह से मेरी उनसे थोड़ी घनिष्ठता बढ़ी। शायद और भी लोगों को मालूम हो कि रिसर्च में आने से पहले जुयाल साहब एयर फोर्स में थे और जब वह एयर फोर्स में हैदराबाद में पोस्टेड थे, वहाँ पर (हैदराबाद में) एक मशहूर फुटबॉल टूर्नामेन्ट चला करता था। और जुयाल साहब के इलाके का कोई पहाड़ी साथी उस टूर्नामेन्ट में बतौर खिलाड़ी भाग ले रहा था लेकिन वह उस टूर्नामेन्ट में नहीं पहुँच पाया और जुयाल साहब को उक्त टूर्नामेन्ट में खेलने के लिए राजी कर लिया गया। जुयाल साहब फुटबॉल के अच्छे खिलाड़ी थे। दुर्भाग्यवश, विरोधी टीम में एक मशहूर, बल्कि कुख्यात, कहना उचित होगा, खिलाड़ी था, मोहन नामक फाउल प्लेयर। उसने जुयाल साहब को इस तरह फाउल मारकर गिराया कि उनका कमर फ्रैक्चर हो गया और वे महीनों तक हॉस्पिटल में रहे। एयर फोर्स ऑफिसर्स भी मिलने आये और बोले कि तुम्हें मालूम था कि टूर्नामेन्ट में एयर फोर्स ने भी भाग लिया है। फिर तुम उस क्लब से क्यों खेलने गये। एयर फोर्स की तरफ से खेले होते तो इस हालात में एयरफोर्स तुम्हारे पूरा दवा–दारू का खर्चा उठाती। जुयाल साहब ने कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की और नॉर्मल हेल्थ हुई तो एयरफोर्स छोड़ कर के अपनी एक अलग ही दिशा बना डाली उन्होंने। दूसरी उनकी रुचि जो देखी – उपन्यास पढ़ने की रूचि, वह चाहे हिन्दी की हो या

अंग्रेजी की। मैं कॉलेज के दिनों से एक किताब ढूंढ रहा था – "All is the Point on the Western Front" (ऑल इज् दि प्वाइंट ऑन दि वेस्टर्न फ्रंट)। इसमें एक सैनिक घायल अवस्था में था और उसे किन–किन बाधाओं का सामना करना पड़ा, उसका बहुत ही मार्मिक वर्णन है। वह किताब मुझे बहुत ढूंढने पर भी नहीं मिली थी। गांधीयन इन्स्टीट्यूट में था 1969–70 में, एकाएक दिमाग में आया कि हो सकता है जुयाल साहब को मालूम हो कि वह किताब कहाँ मिलेगी। जुयाल साहब ने तुरंत कहा कि अरे वह तो रिमार्क की किताब है। मेरे पास है, दे दूँगा। दूसरा, कि मुंशी प्रेमचन्द के सन्दर्भ में जो पहला बड़ा आयोजन लमही गाँव में किया गया था, उसमें अहम भूमिका जुयाल साहब ने निभाई थी। तीसरी चीज जो जुयाल साहब के शौक की देखी वह थी कुछ खास तरह की फिल्मों के देखने की। एक फिल्म सरहदी की थी – "हमलोग" जो 1951 में रिलीज हुई थी। मैं "हमलोग" टी0वी0 सीरियल की बात नहीं कर रहा हूँ बल्कि 'जियाद सरहदी' की फिल्म की। और उसमें बलराज साहनी थे। बलराज साहनी भी कॉमरेड थे और जुयाल साहब के भी कुछ हद तक झुकाव उसी तरफ था। वह (जुयाल साहब) बलराज साहनी के साथ 1957 या 62 के इलेक्शन में (शायद बरेली में) निकट रहे थे। 1981 में ओमपुरी की फिल्म "आक्रोश" आयी और मैंने उस फिल्म का जिक्र किया कि सर इस फिल्म में हमलोगों से मिलती–जुलती कुछ चीजें मिलेंगी। जुयाल साहब देखने गये और दूसरे दिन ऑफिस में पहुँचते ही उस फिल्म की तारीफ की, लेकिन वह घूमफिर कर फिर "हमलोग" पर आ गये। मैं उनके साथ 1977 में सिमुल तल्ला गया था। वहाँ पर ग्रामीण अंचलों में जो स्वयं–सेवी संस्थाएं थीं, उनकी एक बड़ी पाँच दिवसीय सभा आयोजित की गयी थी। ट्रेनिंग कोर्स यानि वर्कशॉप की तरह। जुयाल साहब को फिल्मी गानों का भी शौक था। तो उसमें उन्होंने

वहाँ पर "हमलोग" फिल्म का वह गीत, जिसके बोल हैं, "पुकारता है आसमां, दहल ही जाएगा जहां। फिजाएं बीत जाएंगी, बहार आ ही जाएगी।। ऐ रात है जहान् की ए गीत नसीब का, अमीर खा चुका बहुत, जमाना है गरीब का।" वह मुझसे वहाँ गवाये। उसी तरह शाहिर लुधियानवी का लिखा हुआ 'फिर सुबह होगी' फिल्म का जो मशहूर गीत है "वह सुबह कभी तो आएगी"। उसमें उन्होंने मुझसे पहले ही कह दिया कि रिकार्ड में जो भाग नहीं है, जहां से वह शुरू करता है कि 'वह सुबह हमीं से आएगी' उसको मत छोड़ना। तो उनका जो जुझारूपन था वह चाहे उपन्यास हो, गीत हो, फिल्म हो या अन्य बातें हों, में झलकता था। और इस जुझारूपन के साथ ही, वह गाँधी विद्या संस्थान में जबतक रहे, तब तक थे। चाहे वह रिसर्च हो या कोई और बात, उसमें वह शौक से बात करने में, आयोजित करने में और हर मदद के लिए तैयार रहते थे। ऐसे महापुरुष को शत–शत नमन।

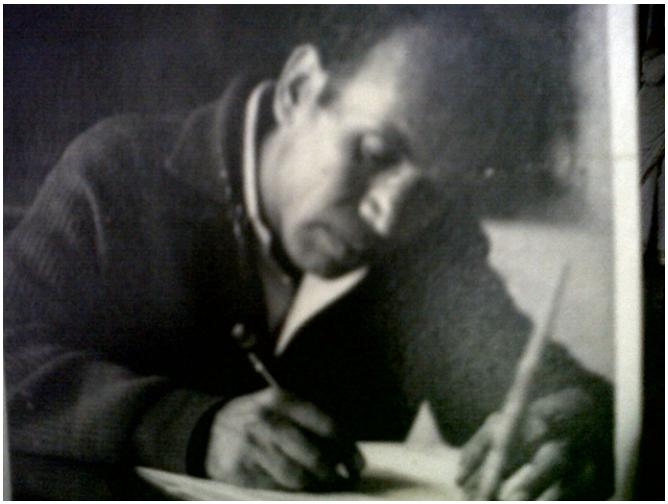

कार्य भक्ति में तल्लीन

एक सहृदय व सक्षम व्यक्तित्व

डॉ0 बी0 पी0 मैठाणी
अध्यक्ष, आर0 टी0 आई0 क्लब, उत्तराखण्ड

प्रोफेसर बी0एन0जुयाल एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे जिनकी बहुआयामी क्षमताओं का भरपूर उपयोग तो हुआ परन्तु सही मूल्यांकन नहीं हुआ। मेरी दृष्टि में उन्हें वह पहचान और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जिसके वे अधिकारी थे। उनका जीवन पूर्णतः सामाजिक सरोकारों से जुड़े हुए विषयों के अध्ययन और चिन्तन के लिए समर्पित था। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जो सिर्फ देना जानते थे और कभी किसी से कुछ लेने का विचार भी उनके मन में नहीं होता था। वे न केवल एक समाजशास्त्री थे अपितु सही अर्थों में एक समाजसेवी और ऐसे सामाजिक व्यक्ति थे जो स्वयं और अपनों से अधिक दूसरों के हित के लिए चिंतित रहते थे। मैं उन अनेकों सौभाग्यशाली व्यक्तियों में हूँ जिसे उनके सानिध्य और मार्गदर्शन में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ और उससे भरपूर लाभान्वित भी हुआ। मैंने अपने क्रियाशील जीवन काल में जो कुछ भी मान सम्मान प्राप्त किया उसके प्रवर्तन में प्रो0 जुयाल का बहुत बड़ा योगदान रहा। इसलिए मैं उन्हें अपना पथ प्रदर्शक और प्रेरणा स्रोत मानता हूँ।

प्रो0 जुयाल से मेरा सम्पर्क होना एक सुखद संयोग था। मैंने 1965 में डी0एस0बी0 कॉलेज नैनीताल (वर्तमान में कुमाऊँ विश्वविद्यालय) से भूगोल विषय में एम0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण कर पीपुल्स कॉलेज हल्द्वानी में शिक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उधर मेरे संरक्षक और प्रेणता श्री सुन्दर लाल बहुगुणा जी ने प्रो0 जुयाल, जो भारतीय समाज विज्ञान शोध परिषद से सम्बद्ध गांधी विद्या संस्थान वाराणसी में कार्यरत थे

से मेरा उल्लेख करते हुए कहा कि यदि सम्भव हो तो मुझे भी गांधी विद्या संस्थान में बुला दें। गांधी विद्या संस्थान में तो मेरे लिए उस समय कोई जगह नहीं थी। परंतु उन्ही दिनों दिल्ली स्थित एक नामी शोध संस्थान को सामाजिक आर्थिक परिवर्तन विषय पर देशब्यापी अनुसंधान कार्य के लिए शोध सहायकों की आवश्यकता थी। उन्होंने वाराणसी स्थित गांधी विद्या संस्थान से शोध सहायक उपलब्ध कराने का अनुरोध किया। प्रो0 जुयाल ने तुरन्त मुझे पत्र भेजकर दिल्ली के शोध संस्थान में आवेदन करने की सलाह दी। मैंने भी उनकी सलाह मानते हुए आवेदन कर दिया और नियुक्ति मिलने पर हल्द्वानी छोड़ दिल्ली चला गया। यह मेरे व्यावसायिक जीवन में एक महत्वपूर्ण पहला मोड़ था जिससे मेरी आगे बढ़ने की दिशा निर्धारित हुई। इस परिवर्तन के सूत्रधार बने प्रो0 जुयाल जिनको तब तक मैं न जानता था और न मिला था। इस प्रकरण से प्रो0 जुयाल की एक अज्ञात व्यक्ति के प्रति भी संवेदनशीलता का परिचय मिलता है जो साधारण लोगों मे नहीं पाई जाती है।

लगभग एक वर्ष पश्चात 1967 में मीडिया में खबर आई कि भारत के कुछ शोध संस्थानों में संयुक्त राज्य अमेरिका के केन्द्रीय सूचना संगठन (सी0आई0ए0) का जाल बिछा हुआ है। संस्थानों की सूची में उस संस्थान का नाम सबसे ऊपर था जिसमें मैं कार्य कर रहा था। संस्थान बन्द होने की कगार पर था और वहां काम करने वाले शोधकर्ता रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था के लिए चारों तरफ भागदौड़ करने लगे। मैं भाग्यशाली रहा जो मुझे गांधी स्मारक निधि राजघाट में स्थित सीमा क्षेत्र समन्वय समिति जिसे अब हिमालय सेवा संघ के नाम से जाना जाता है, में समन्वयक का कार्य मिल गया। यह संगठन 1962 के भारत चीन सीमा संघर्ष के बाद सीमान्त क्षेत्रों के लोगों के साथ भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए

गठित किया गया था। सीमा क्षेत्र समन्वय समिति सीमान्त क्षेत्रों में गांधीवादी रचनात्मक कार्यों में संलग्न संस्थाओं के कार्यक्रमों और कार्यकर्ताओं के बीच तालमेल व समन्वय स्थापित करने का काम करती थी। वहां काम करते हुए मुझे प्रो0 जुयाल से विभिन्न बैठकों और विचार गोष्ठियों में मिलने का अवसर मिला और घनिष्ठता बढ़ी।

इस बीच एक और घटना घटी। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74) में पहली बार देश में विकेन्द्रित स्थानीय विकास की वैज्ञानिक विधि विकसित करने के लिए भारत सरकार ने एक पायलट प्रोजेक्ट इन रूरल ग्रोथ सेन्टर्स प्रारम्भ किया। इसकी अवधारणा ग्रामीण क्षेत्रों में हाट बाजारों, मण्डियों और कस्बों से सम्बद्ध गांवों को इकाई मानते हुए स्थानीय आवश्यकताओं और सम्भावनाओं के अनुकूल योजना बनाने पर आधारित है। यह कार्य दो संस्थाओं : (1) गांधी विद्या संस्थान वाराणसी और (2) राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद को सौंपा गया। शोध कार्य क्षेत्रीय नियोजन से सम्बन्धित था इसलिए उसमें अन्य विशेषज्ञों के अतिरिक्त एक भूगोलविद् की आवश्यकता थी। गांधी विद्या संस्थान में कोई भूगोलविद नहीं था। संयोगवश वहां पर इस प्रोजेक्ट के निदेशक प्रो0 जुयाल थे। स्वाभाविक था कि उन्होंने सीमा क्षेत्र समन्वय समिति दिल्ली से मुझे गांधी विद्या संस्थान वाराणसी भेजने का आग्रह किया जिसे स्वीकार कर दिया गया। इस प्रकार वर्ष 1970 में मैं गांधी विद्या संस्थान वाराणसी में प्रो0 जुयाल के अधीन शोध अधिकारी के पद पर नियुक्त हो गया। लगभग दो वर्षों तक मैंने उनके सानिध्य में काम किया जिससे मुझे उन्हें नजदीक से जानने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात मैं 1972 में राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ मे प्रवक्ता, 1979 में राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान

हैदराबाद में उपनिदेशक और 1983 में उत्तर पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र के निदेशक के रूप में गौहाटी पहुंच गया। निसंदेह मेरी इस व्यावसायिक प्रगति में गांधी विद्या संस्थान में प्रो0 जुयाल के साथ दो वर्षों के कार्य अनुभव का बड़ा योगदान रहा। दूर जाने के कारण हमारा परस्पर संपर्क काफी कम हो गया था। हालांकि मेरे मन में उनके प्रति सम्मान की भावना दूर जाने पर बढ़ती रही। एक बार उन्हें गौहाटी बुलाया जहां अधिकारियों के अतिरिक्त स्थानीय बुद्विजीवियों के साथ भी उनका विचार विमर्श हुआ। फिर संयोगवश में वर्ष 2000 में कपार्ट के सदस्य सचिव के पद पर लखनऊ में पोस्टिंग हुई तो फिर प्रो0 जुयाल से सम्पर्क साधा और हम कई बार मिले भी। उनके साथ एक प्रकार से पारिवारिक सम्बन्ध बनाये गये थे। उनसे मेरी अन्तिम मुलाकात फरवरी 2005 में देहरादून में हुई जब मैंने ग्रामीण प्रोद्योगिकी विषय पर आयोजित कार्यक्रम में उन्हें यहां बुलाया था। सब कुछ ठीक ठाक रहा परन्तु अन्तिम क्षणों में एक अशुभ घटना घट गई। उनकी वाराणसी वापस जाने की यात्रा का टिकट लेने जब हम दोनो रेलवे स्टेशन पहुंचे तो वहां पर उनकी जेब कट गई। टिकट तो ले लिया गया था परन्तु उनके बटुवे में पैसों के अलावा पैन कार्ड, क्रेडिट कार्ड, ए0टी0एम0 कार्ड आदि आवश्यक वस्तुयें थीं जो गुम हो गईं। तुरंत पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई परन्तु वे दस्तावेज नहीं मिल पाये। इससे उनका काफी परेशान होना स्वाभाविक था। मुझे भी बड़ी आत्मग्लानि हुई कि मानों मेरी वजह से उनके साथ वह दुखद घटना घटी हो। उसके पश्चात दूरभाष पर बातचीत होती रही, परन्तु कुछ सयम बाद सम्पर्क टूट गया। नववर्ष की बधाई का संदेश भेजा तो उनका उत्तर कुछ इस तरह आया कि जैसे वे थक गये हों। उनके निधन की सूचना काफी विलम्ब से योगेश जी के माध्यम से मिली। इस बात का मलाल रह गया कि अन्तिम समय में उनसे सम्पर्क नहीं साध सका। शायद नियति

को यही स्वीकार था।

प्रो0 जुयाल की एक समाजशास्त्री के रूप में मार्क्स, गांधी, विनोबा, जयप्रकाश नारायण, लोहिया आदि चिंतकों की विचारधाराओं पर गहरी पकड़ थी। वे स्वयं वैचारिक दृष्टि से वामपंथी थे लेकिन गांधी और जयप्रकाश नारायण की अहिंसक सहभागिता से समता मूलक समाज के निर्माण की सम्भावनाओं पर विश्वास करते थे। इस परिप्रेक्ष में ग्रामीण विकास की दिशा क्या हो इस विषय पर उनकी अपनी मौलिक अवधारणायें थी जो उनके शोधपत्रों और लेखों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। गरीबी उन्मूलन और पिछड़े वर्गों और पिछड़े क्षेत्रों के विकास में उनकी विशेष रूचि थी और इस दिशा में उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई थी। तथापि उन्हें बौद्धिक जगत में अपने मौलिक विचारों के लिए प्रसिद्धि नहीं मिल पाई। दुर्भाग्यवश कोई 'गाड फादर' न होने के कारण उनको उनकी क्षमता और योग्यता के अनुकूल पद या सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा उनकी लेखन क्षमता का खूब उपयोग किया गया परन्तु वे अधिकांशतः पर्दे के पीछे या एक 'घोस्ट राइटर' के रूप में कार्य करते रहे। उनकी दो बड़ी विशेषतायें थी – किसी भी विषय पर वैचारिक स्पष्टता और उच्च कोटि की आंग्ल भाषा का ज्ञान। इन दो कारणों से वे समाज विज्ञान व ग्रामीण विकास शोध वृत में काफी प्रचलित थे। मेरा मानना है कि उनके लेखों और कृतियों का संकलन कर उनकी यादगार को शास्वत बनाया जा सकता है। यद्यपि यह स्वयं में एक शोध का विषय होगा।

इक्कीसवीं सदी का कबीर

प्रो0 दीपक मलिक
पूर्व अध्यक्ष, गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी

कुछ लोगों के साथ मृत्यु शब्द जुड़ता नहीं, बहुत अटपटा लगता है। प्रो0 बी0 एन0 जुयाल ऐसी शख्सियत थे, जिनके साथ हम 'मृत्यु' शब्द को जोड़ भी नहीं पाते। जुयाल साहब एक जीवंत हस्ती ही नहीं थे बल्कि वे अपने आप में एक संस्था थे। निहायत छोटे से छोटे आदमी, निहायत अदने आदमी की दरख्वास्त लेकर दौड़ने वाले! उनके लिए किसी से भी मोर्चा लेने का दम और बड़े से बड़े सवालों पर भी लड़ने का दम, ये जो दोनों का तालमेल था, यही मेरे ख्याल से जुयाल साहब को परिभाषित करता है।

हमारे शहर या क्षेत्र में प्रतिवाद का स्वर, माहौल या संस्था या, वह शायद स्तब्ध या चुपचाप हो गया है। इस तरह का प्रतिवाद जो जुयाल साहब में था, मैंने अन्यत्र नहीं देखा।

जुयाल साहब मुझे 'कॉमरेड' कहकर पुकारते थे। अब शायद कोई नहीं रहा, जो मुझे इस उच्चारण से पुकारेगा।

शुरुआती जिन्दगी में (जब वह पहाड़ी क्षेत्र में थे) वह वामपंथी आन्दोलन से जुड़े थे। बाद में जय प्रकाश नारायण से जुड़े और गाँधीयन इन्स्टीट्यूट में तो उनका एक लम्बा दौर था ही। इन सब के साथ जुयाल साहब की कुछ और खासियत थी और उन खासियतों से भी हमें मरहूम होना चाहिए।

जुयाल साहब में एक असाधारण किस्म की दृष्टि थी, शोध कार्यों के बारे में। मेरे खयाल से शोध कार्यों में बहुत कम लोग होंगे, जो उनकी तकनीक और गहराई में जाते हैं। इसकी खास वजह यह है कि शोध की गहराई में आप तभी जा सकते हैं, जब आप ईमानदार हों। एक गैर–ईमानदार आदमी अच्छा

शोध नहीं कर सकता।

समाज विज्ञान की जो कुछ भी समझ होती है, वह यह कि प्राकृतिक विज्ञानों के साथ यह गुंजाइश होती है कि आप समाज में कुछ और बोलें और प्रयोगशाला में कुछ और करें, लेकिन समाज विज्ञान में इसकी गुंजाइश नहीं होती है। या तो आप अच्छा भाषण देंगे या आप ईमानदारी से कुछ बातों पर टिकेंगे और उनको कहेंगे। जुयाल साहब में यह एक अद्‌भुत ताकत थी।

दूसरी बात, जैसा कि कबीरदास जी ने कहा है कि 'निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय' मध्य युग में यह सही भी था। क्योंकि उस युग में शायद ठीक–ठाक शब्द नहीं थे क्योंकि निन्दक शब्द आज की तारीख में बहुत खराब शब्द माना जाता है। जुयाल साहब कोई निन्दक नहीं थे, लेकिन उस वक्त 'निन्दक' शब्द का शायद इस्तेमाल इसी तरह से होता था। जुयाल साहब एक अच्छे आलोचक थे। और उसमें वह किसी को बख्सते नहीं थे। ये उनकी एक खासियत थी। वह चाहे मैं हूँ, चाहे जयप्रकाश नारायण खड़े हों या कोई भी हो। अगर उनको कोई चीज ऐसी दिखाई पड़ी जिसपर उनको प्रश्न उठाना है तो जुयाल साहब बेझिझक वह प्रश्न उठाते थे। यह एक भारी ताकत होती है, सब लोगों में यह कूबत नहीं होती है परन्तु जुयाल साहब में ये कूबत थी।

गाँधीयन इन्स्टीट्यूट में हम लोगों का आखिरी बड़ा प्रोजेक्ट था 'गाँव के अध्ययन' के बारे में, जिसमें जुयाल साहब की भूमिका बहुत बड़ी थी। ये जो ग्रामदान या भूदान (खासकर भूदान) का पूरा का पूरा हिस्सा जुयाल साहब का लिखा है। खास बात यह है कि इस पूरे आन्दोलन को कैसे देखा जाय, इसमें उन्होंने किसी को भी नहीं बख्सा है, बख्सते तो वे थे ही नहीं।

एक बार मैं और गोरख भाई, जुयाल साहब से मिलने गये

और बात हुई कि लखनऊ चलकर शासन से गाँधीयन इन्स्टीट्यूट के बारे में बात करनी चाहिए, लेकिन जुयाल साहब इतने बेधड़क और बेबाक बोलते थे कि शायद लखनऊ में यदि मुख्यमन्त्री से उनकी मुलाकात होती तो वह बहुत कुछ ऐसा बोल देते, जो उनको नागवार गुजरता। तो हमने और गोरखभाई ने जुयाल साहब से आग्रह किया कि 'नहीं सर आप इन बातों को मत रखिये'। लेकिन उनकी आदत थी कि वह कोई बात जो सही हो, रोक नहीं पाते थे।

मैं कहना चाहता हूँ कि शोध के पक्ष में भी बेहद ईमानदारी से बात करने की जो एक ताकत उनमें थी, वह यहीं से आती थी। इससे हम लोग उनसे काफी सबक लेते थे और हमेशा कुछ न कुछ सीखते रहते थे।

जुयाल साहब का कहना था कि जहाँ तक समाज विज्ञान के अध्ययन की बात है, इसमें न तो कोई बात छिपायी जानी चाहिये और न ही अतिशयोक्ति कहनी चाहिए, 'जो है सो है' वाली नीति अपनानी चाहिए।

आन्दोलन का पाठ, उन्होंने पहाड़ से ही ले लिया था। चाहे वह विद्यासागर नौटियाल हों या नेगी साहब हों या यूँ कहें कि 'चिपको आन्दोलन' (सुन्दरलाल बहुगुणा) और तमाम इस तरह के आन्दोलनों से उनका गहरा जुड़ाव था और आन्दोलन के लिए आन्दोलन नहीं बल्कि आन्दोलन से उसका निश्चित निष्कर्ष निकले और रास्ता बने। जैसा कि हम देखते आये हैं कि वह इन सबको बहुत ही पैनी एवं तार्किक दृष्टि से देखते थे।

जुयाल साहब एक उच्च कोटि के बुद्धिजीवी पुरुष थे, जो हर एक तथ्य के विस्तार में जाते थे। जुयाल साहब में एक व्यापक सोच एवं समझ थी। वह बहुत सारे प्रकरणों से गुजर कर बौद्धिक दुनिया में आये थे। उनकी आँखों से कोई ऐसा पक्ष ओझल नहीं होता था जो बाकी लोगों की आँखों से अक्सर

ओझल हो जाया करते हैं। हम लोग अक्सर विचारधाराओं के गुलाम हो जाते हैं और तब उस विचारधारा की धुन्ध में बहुत सारी चीजें हमें दिखलाई नहीं पड़ती हैं क्योंकि हम बड़े उत्साह के साथ उस विचारधारा विशेष, को डिफेन्ड करते हैं, और करना भी चाहिये। हर एक को विचारधाराओं के साथ रहना चाहिए, नहीं तो आदमी का कोई मतलब नहीं रह जाता। जुयाल साहब भी उनमें से एक थे लेकिन विचारधारा विशेष को डिफेन्ड करते हुए भी वे उसको चीरकर भी अपनी एक दृष्टि बनाते थे और वह देख पाते थे। ये उनकी बड़ी खास बौद्धिक उपलब्धि थी।

ये तो (बनारस) कबीर का शहर है। अगर हम 21वीं सदी का कबीर किसी को कहेंगे तो वह जुयाल साहब को कहेंगे, जो बेबाक हर बातों को कहते थे। जुयाल साहब हम लोगों के भी खिलाफ बोलते थे। लेकिन कभी भी उस असहमति का मतलब यह नहीं होता था कि दोस्ती पर कोई आंच आये या संयुक्त मोर्चा टूट जाए या आन्दोलन कमजोर पड़े या जिन्दगी के दूसरे किसी पहलू पर कोई प्रभाव पड़े। इसी कारण वे कुछ लोग जो उनको समझ नहीं पाते थे, उनसे अलग हो जाते तो उनको मनाना पड़ता था और बताया जाता था कि भाई जुयाल साहब बेहद ईमानदार हैं एवं उनकी भाषा ही कुछ ऐसी है। अतः यह समझना गलत है कि वह आपसे नाराज हैं, वह आपके साथ हैं परन्तु उनको गलत बर्दाश्त नहीं होता है। अतः वह आपकी बात को काटेंगे ही, उनको रोकना बड़ा मुश्किल है।

ये सारी खासियतें जुयाल साहब में थीं और इस तरह का आदमी बनना बड़ा मुश्किल होता है। आज की तारीख में हमारे यहाँ ऐसे लोगों का बनना, जिनमें व्यापक दृष्टि हो, जिनमें लड़ने का माद्दा हो, सहानुभूति हो, बड़ा मुश्किल होता जा रहा है। हिन्दुस्तान में पूंजीवाद या पूंजीतंत्र का समाज जो बना

है और आप उसी के इर्द–गिर्द रहेंगे। आप उससे बहुत आगे नहीं जा सकेंगे। या तो उसके विकल्प के रूप में खड़े हों तो खड़े हो, और नहीं तो आप उसके साथ हैं।

मेरा यह मानना है कि पहले इस तरह नहीं था, बल्कि एक अविकसित पूंजीवाद या अर्द्ध– पूंजीवाद था, जिसमें काफी जगह थी, काम करने की, वह अब गायब होता जा रहा है। खासतौर पर व्यक्ति की जिन्दगियों में से। अतः जो लोग किसी विचारधारा से जुड़कर काम कर रहे हैं वही हैं। लेकिन वह पीढ़ी भी लगभग प्रौढ़ या वृद्ध होती जा रही है जो धीरे–धीरे इसी तरह खत्म हो जाएगी। पहले कुछ विचारधाराओं के लोग होते थे, कुछ बेहद ईमानदार एवं संस्कारी होते थे, अब वे विलुप्त होते जा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि नई पीढ़ी में संस्कार नहीं है, विचारधाराएं नहीं हैं, ये बात नहीं है। बात यह कि ये बनने का जो एक ढांचा था वह उस ढांचे को बचाना होगा जो कि टूट रहा है।

आज की तारीख में जुयाल साहब जैसे आदमी सा बनना बड़ा मुश्किल है, जो पहले के जमाने में शायद कठिन नहीं था। एक सी यही सपाट लाइन खींची हुई थी, बन सकते थे, एक लड़ाई थी, शामिल हो सकते थे। लेकिन आज की तारीख में बहुत तरह के समझौते, बहुत तरह की परिस्थितियाँ एवं बातें ऐसी आ जाती हैं, जिनसे ऐसे महापुरुश का बचना मुश्किल होता है।

जुयाल साहब गाँधीयन इन्स्टीट्यूट एवं उसके बाहर एक दुनिया के लिए (खासकर आन्दोलन की दुनियाँ के लिए) एक मजबूत सिपाही थे। उनके बिना हमलोग बेहद अकेले महसूस कर रहे हैं, क्योंकि हमारी उनसे तमाम बातें होती थीं, जैसे कल के आन्दोलनों के बारे में, विद्यार्थियों के बारे में एवं तमाम परिस्थितियों के बारे में, जो अब किसके साथ होगी?

जैसा कि विदित है कि गाँधीयन इन्स्टीट्यूट अध्ययन एवं

संघर्ष के लिए बना था, 'आर्म चेयर' विद्वानों हेतु नहीं। जुयाल साहब को श्रद्धांजलि देने के लिए अगर हम सोचते हों तो हमें उनके मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित होना चाहिए एवं करना चाहिए। और सम्भवतः अच्छा होगा कि हम सोचें कि क्या उचित है, हमें क्या करना चाहिए!

सामाजिक उत्थान एवं समरसता की प्रतिमूर्ति

जुयाल जी

प्रो0 आर0 एस0 शर्मा
पूर्व अध्यक्ष (अंग्रेजी विभाग)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल मेरे परम मित्र ही नहीं, पड़ोसी भी थे। उनकी पत्नी, बिटिया, दामाद एवं नाती को मैं अच्छी तरह जानता हूँ तथा उनसे पारिवारिक सम्बन्ध हैं। यह मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि ऐसे महान व्यक्ति से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था व प्रतिदिन का मिलना–जुलना था।

उनसे पहली मुलाकात में जो मुझे अच्छा लगा वह ये था कि जुयाल साहब एक भोले बच्चे की तरह थे। बच्चे के समान बात करना, बैठना तथा हँसना। उनका भोलापन अद्वितीय था। लगता था, किसी निश्छल, निष्कपट व्यक्ति से बात हो रही है। किन्तु जब कभी किसी विषय को कुरेदने की बात उछलती तो उनके ज्ञान का समुद्र जैसे छलाँगें मारने लगता। वे आधुनिक भारत के इतिहास के महापण्डित थे। वह इस मजबूती से किसी चीज का विश्लेषण करते थे कि उससे कुछ नई चीज निकलकर आती थी। उनसे वार्तालाप करने में आनन्द के साथ अपनी जानकारी भी बढ़ती थी।

गैर सरकारी संगठनों (एन0 जी0 ओ0) के तो वे धुरन्धर पण्डित थे। शायद ही ऐसा कोई समय हो, जब कोई गाड़ी उनके घर के बाहर खड़ी न दिखे। सभी लोग उनसे सलाह लेने तथा प्रस्ताव तैयार करवाने आते थे। उनकी क्षमता अद्वितीय थी।

स्वभाव से विनम्र तथा सहायक होना जैसे जुयाल जी का धर्म बन गया था। एन0 जी0 ओ0 की ऐसी कोई समस्या नहीं, जिसका समाधान उनके पास न हो। उनसे बात करने व

सहायता लेने के लिये लोगों की भीड़ लगी रहती थी। और उनका दरवाजा सदा–सदा के लिए खुला रहता था। सबकी सुनना व निःस्वार्थ सहायता करना उनका धर्म बन गया था।

मुझे प्रो0 जुयाल जैसे व्यक्ति का सान्निध्य मिला, मेरा सौभाग्य है। मैं उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को कभी नहीं भूल सकता। संसार में ऐसे महापुरुष यदा–कदा ही जन्म लिया करते हैं और एक बार फिर यही कहते हुए अपनी बात समाप्त करूँगा कि उनके समय में मेरा जन्म लेना व उनके जैसा साथी मिलना मेरा सौभाग्य था।

वी0 एच0 ए0, नई दिल्ली

वह बहु–विषयक ज्ञाता

प्रो0 शिव शारद सिंह
गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी

जहाँ तक जुयाल साहब की जीवन गाथा की बात करें तो वह एक ग्रन्थमय है और इतने कम समय में कही नहीं जा सकती। जहां तक मुझे याद है, वह सन् 1963 के अन्त में या 1964 की शुरुआत में गाँधीयन इन्स्टीट्यूट में आये थे और सन् 1965 में मैं आया। यानि उनके एक वर्ष बाद। यह उनकी चौथी या पाँचवीं कार्यस्थली थी जबकि मेरी पहली, अतः स्पष्ट है कि वह मुझसे बड़े ही रहे होंगे। जहाँ तक मेरा खयाल है, उस समय के साथियों में मैं ही बचा हूँ। जहाँ तक शोध एवं ज्ञान का सवाल है, उसमें प्रो0 जुयाल एक समाजवादी विचारक थे और उसमें भी वामपंथ से प्रेरित थे। वे समाज के अति वंचित लोगों की समस्याओं को बड़े प्रखर रूप से प्रस्तुत करते थे। यहाँ तक कि उनके लिए वह किसी भी हद तक किसी से भी संघर्ष करने को तैयार रहते थे। वह प्रखर वक्ता भी थे। आज जो विश्वविद्यालयों में समाज विज्ञान पढ़ाया जा रहा है उसपर जुयाल साहब सहमत नहीं होते थे। वे हमेशा विचार की खोज में रहते थे। जुयाल साहब लिखने में तो इतने निपुण थे कि किसी भी विषय का सेमिनार आयोजित हो, जुयाल साहब उसकी प्रस्तावना बनाते थे। वह एक बहु–विषयक प्रोफेसर थे। उनकी लेखनी और विचार को देखकर ही जयप्रकाश नारायण जी उनको अपने साथ ले गये थे। और जुयाल साहब आन्दोलन और उसके बहुत दिनों बाद भी उनके साथ रहे। यद्यपि जयप्रकाश जी से मिलने दाहिने बाजू (Rightists) वाले आते थे और उनसे पटती नहीं थी फिर भी जुयाल साहब का व्यवहार ऐसा था कि हर कोई उनका मुरीद हो जाता था।

सेवा विमुक्त होने के बाद (रिटायरमेन्ट के बाद) मैं भी कुछ दिनों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान विभाग में शिक्षण करता था। और आजकल (2011 – 2013) वह भी पढ़ा रहे थे। अपने अन्तिम दिनों में उनकी आवाज चली गयी थी। परन्तु इशारा समझ रहे थे। जब मैं उनसे मिलने 2013 में गया था। काफी सुधार हो रहा था, लग रहा था कि पुनः ठीक हो जायेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने मुझे भी कहलवाया कि तुम भी आ जाओ पढ़ाने। लेकिन अचानक ऐसा हुआ कि वह स्वप्न ही रह गया। उम्र उनकी करीब 83–84 वर्ष रही होगी। परन्तु लगते नहीं थे। जैसा कि हम सब देख चुके हैं कि जुयाल साहब पूरे स्टाफ में किसी को अलग–थलग नहीं करते थे। सबसे मिलजुल कर रहते थे और सबकी समस्याओं को देखते थे। वैसे, प्रो0 बी0 एन0 जुयाल आत्मावादी नहीं थे फिर भी मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे महापुरुष की आत्मा को शांति मिले!

पारिवारिक मित्रों के साथ

महापण्डित प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

प्रो0 सुनील सहस्त्रबुद्धे
जागृति संस्थान, वाराणसी

मैं गांधीयन इन्स्टीट्यूट में 1982 में आया और तभी से जुयाल साहब से घनिष्ठ बना रहा। वैसे तो जुयाल साहब हम सबसे उम्र में बड़े थे, लेकिन वे हम सबसे एक दोस्त की तरह बात करते थे। और हम सबसे कार्यों में, जो विशेषकर न्याय के पक्ष में हो, अर्थात जो संघर्ष समाज में चलते रहते थे, के क्षेत्र में बल देते रहते थे। या यूं कहिए कि हम लोगों के लिए प्रेरणा श्रोत थे। आपके चले जाने से, ये जो सामाजिक कार्यों के न्याय की पक्षधारिता, की जो बनारस की दुनिया है, इसमें खालीपन आ गया है। मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूंगा जो अतिशयोक्ति के रूप में हो। आमतौर पर अपूर्णनीय क्षति शब्द का प्रयोग किया जाता है परन्तु मैं उसका प्रयोग नहीं करना चाहता हूं, क्योंकि अपूर्णनीय छति नहीं होती है लेकिन एक महापुरुष के न रहने पर एक खालीपन जरूर आता है।

जो भी लोग जुयाल साहब को जानते थे, इनकी हिम्मत एवं साहस से परिचित थे। छोटी सी बात, लेकिन निश्चित बात, कि जो भी (और बहुत से गरीब एवं उत्पीड़ित लोग) इनके पास मदद के लिए आया करता था, उसकी मदद अवश्य करते थे। मदद यानि कोई प्रशासनिक ज्यादती हुई हो, ऐसे सन्दर्भ में। और उन्हें यह विश्वास होता था कि उनकों खाली हाथ नहीं आना पड़ेगा। अतः वे वेहिचक जाते थे जुयाल साहब के पास। आज की दुनिया में इस तरह निष्कामी मददगार बहुत कम देखने को मिलते है। ये एक ऐसा गुण है जो बेहद मूल्यपरक है, जो सहारा देता है जरूरतमंदों को।

शीला जी (जुयाल साहब की श्रीमती जी) जिनको राजघाट में

सब लोग बिट्टो बहन जी कहकर बुलाते थे, मुझे नहीं पता क्यों कहते थे, लेकिन जब मैं आया तो मैं भी इसी नाम से बुलाता था।

जुयाल साहब की उम्र 80 वर्ष से ज्यादा थी, लेकिन वह एक उत्साही पुरुष थे, अतः एक भरपूर जिन्दगी जीये। ऐसे महापुरुष के महाप्रभाव में शोक करने जैसा कुछ नही होता, लेकिन कष्ट तो अपार होता है। अब हम उनकी स्मृति को सही तरीके से संजो सके यह गौरव की बात हागी। जुयाल साहब के परिवार में पत्नी श्रीमती बिट्टो बहन

जी, एक पुत्र श्री अमित जी, बहू, पेाता एवं पोती तथा एक बेटी, डॉ0 रूपाली जुयाल गौड़ (पाली) एवं दामाद जी, डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़ एवं नाती, काकू हैं।

जुयाल साहब सन् 1964 मे गांधीयन इंस्टीट्यूट ऑफ स्टीडीज् मै आये और रिटायर के बाद भी इसके संघर्ष में अग्रणी रहे। ऐसे महापुरुष को शत्–शत् नमन्।

प्रो0 दीपक मलिक व अन्य के साथ

प्रो. जुयाल : अनूठा, आडम्बर रहित, अविस्मरणीय व्यक्तित्व

प्रो. अरविन्द कुमार जोशी
समाजशास्त्र विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
मो. 9839335199, ईमेल– arvindvns@outlook.com

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक परम पूज्य भारतरत्न पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के निम्नलिखित सूक्त वाक्य–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

अर्थात मुझे न तो राज्य की कामना है और न स्वर्ग की, और न ही मैं पुनर्जन्म से मुक्ति चाहता हूँ। दुःख से पीड़ित प्राणियों के कष्ट दूर करने में सहायक हो सकूँ यही मेरी कामना है, का जब भी मैं ध्यान करता हूँ तो मुझे महामना के साथ–साथ प्रो. बी.एन. जुयाल जी का भी सहसा स्मरण हो जाता है, जिन पर उक्त बातें अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है।

स्वर्गीय प्रो. बी.एन. जुयाल जी से मेरा परिचय करवाने में महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की समाजशास्त्र की तत्कालीन प्रोफेसर गिरिजा सकलानी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यह सम्भवतः वर्ष 1980–81 की बात होगी जब मैं समाजशास्त्र में प्रो. गोपाल सिंह नेपाली जी के निर्देशन में शोध कार्य कर रहा था। मेरे शोध का विषय नवीन था और शोध का क्षेत्र भी दूरस्थ था। उल्लेखनीय है कि मैं अण्डमान–निकोबार के प्रशासकीय क्षेत्र पोर्ट ब्लेयर के उस समुदाय का अध्ययन कर रहा था जिन्हें वहाँ 'लोकल्स' (स्थानीय) के नाम से जाना जाता है। विदित हो कि अण्डमान–निकोबार को अंग्रेजों ने बन्दी उपनिवेश के रूप में

प्रयोग किया था और निर्वासन या देश निकाले ('काला–पानी' शब्द से ज्यादा चर्चित) की सजा के लिए सेल्यूलर जेल में आपराधिक बन्दियों को भेज दिया जाता था। ये वे बन्दी थे जो किसी गम्भीर/घृणित अपराध में फाँसी की सजा से बचने के उपरान्त आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे होते थे। इन्हीं बन्दियों के साथ–साथ स्वतंत्रता आन्दोलनकारियों को (राजनैतिक बन्दियों) को भी सेल्यूलर जेल में भेजा गया। आपराधिक बन्दियों को अंग्रेजों ने विविध योजनाओं के अन्तर्गत वहीं बसने के लिए प्रेरित किया जबकि राजनैतिक बन्दी उपनिवेश समाप्ति के साथ ही स्वदेश वापस लौट गये।

विषम परिस्थितियों में आपराधिक बन्दियों द्वारा निर्मित लोगों के समुदाय को पोर्ट ब्लेयर में 'लोकल्स' के नाम से जाना जाता है तथा अनेक वर्षों तक वहाँ रहने वाले शेष लोग उनसे भय खाते रहे और पर्याप्त दूरी रखते थे।

मैं उपरोक्त लोगों का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर रहा था, जिसके विषय में विभागीय स्तर पर कोई विशेष ज्ञानपूर्ण सहयोग नहीं मिल पा रहा था। अधिकांश प्रोफेसर हतोत्साहित ही कर रहे थे। विषय परिवर्तन का, अध्ययन क्षेत्र परिवर्तन का बहुत दबाव था। उन्हीं वर्षों में भारत सरकार अण्डमान–निकोबार द्वीप समूहों में तेल एवं गैस की खोज कर रही थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगर्भशास्त्र के प्रोफेसर श्रीनिवासन जी भी शोध कार्य हेतु भूगर्भीय सर्वेक्षण कार्य से वहाँ जा रहे थे। प्रो. श्रीनिवासन से उक्त द्वीप समूह की विशिष्टता, स्थानीय समाज की विविधता तथा द्वीपों की भौगोलिक–ऐतिहासिक महत्ता की चर्चा मुझे अपने निश्चिय पर अडिग रखे हुए थी, मेरे शोध निदेशक भी मुझे प्रोत्साहित कर रहे थे। मेरा अध्ययन कार्य धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था लेकिन कोई स्पष्ट दिशा (शोध के उद्देश्य, शोध प्रश्न/उपकल्पनाएँ, शोध प्रविधि इत्यादि) नहीं दिख रही थी। उस दौरान ही प्रो.

गिरिजा सकलानी जी भारतीय तिब्बती प्रवासियों पर अपना शोध कार्य कर रही थीं और उनके इस महत्वपूर्ण शोध कार्य में प्रो. बी.एन. जुयाल जी सहयोग एवं मार्ग निर्देशन कर रहे थे। प्रो. सकलानी से मेरा अच्छा सम्बन्ध था और मैं अक्सर उनके घर जाता रहता था। एक दिन शाम को मेरे शोध कार्य की धीमी प्रगति तथा तथ्य संकलन की व्यावहारिक समस्याओं को सुनने के बाद प्रो. सकलानी ने कहा कि ''तुम गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट में प्रो. जुयाल जी से मिलो, वे बहुत विद्वान एवं सज्जन आदमी हैं। वे समाजशास्त्र के किसी भी विषय पर सुझाव दे सकते हैं। मेरे शोध विषय पर भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। मैं तो उनके ज्ञान की कायल हूँ। तुम जाओ और मिल लो।'' दूसरे ही दिन मैंने अपनी साइकिल उठाई और चल दिया गाँधी विद्या संस्थान। प्रो. जुयाल संस्थान के अपने कमरे में कुछ लिखने में व्यस्त थे। मैंने अपना परिचय दिया और आने का प्रयोजन भी बतलाया। जिस आत्मीयता से प्रो. जुयाल ने मुझसे बात की वह अविस्मरणीय है। लगा ही नहीं कि मैं आज ही उनसे पहली बार मिल रहा हूँ। इतना ही नहीं मेरा पूरा विस्तृत साहित्य सर्वेक्षण का ज्ञान धरा का धरा रह गया जब प्रो. जुयाल ने अण्डमान–निकोबार के ऐतिहासिक उद्विकाल के सभी पक्षों का व्यापक उल्लेख कर दिया। मैं उनके ज्ञान के प्रति नतमस्तक हो गया, आशा की किरण दिखाई दी। निरन्तर मिलने–जुलने का जो क्रम प्रारम्भ हुआ वो उनकी मृत्युपर्यन्त चलता रहा।

गाँधी विद्या संस्थान में जुयाल जी के चेम्बर से प्रारम्भ हुआ परिचय अब मात्र एक औपचारिक परिचय तक ही सीमित नहीं रह गया। जब मैं दूसरी बार उनसे मिलने गया तो जुयाल जी शाम को परिसर में स्थित अपने आवास पर मुझे लेते गये। श्रीमती जुयाल से उन्होंने मेरा परिचय करवाया और थोड़ी देर बाद स्कूल से लौटे बच्चों मीतू (जो आज नासिक के एक बड़े

उपक्रम में उच्च पदस्थ हैं) तथा पाली (जो बी.एच.यू. से भूगोल में पी–एच.डी. उपरान्त पोस्ट डॉक्टरल फेलो हैं तथा उनके पति डॉ. अम्बिका गौड़ एक प्रतिष्ठित विद्यालय में प्राचार्य हैं। इनके एक सुयोग्य पुत्र 'काकू' (घर का नाम) हैं, जिसे जुयाल जी बहुत प्यार करते रहे) को भी बताया कि ये अरविन्द भईया बी.एच.यू. से रिसर्च कर रहे हैं। धीरे–धीरे मैं कब उनके घर के सदस्य की तरह हो गया यह मुझे याद नहीं।

प्रो. जुयाल जी चाय के बहुत शौकीन थे। अक्सर स्वयं चाय बनाते, चाय भी बाजारू खौलाई चाय वाली शैली की नही अपितु खौलते पानी को केतली में डालकर चाय पत्ती बगैर उबाले बनी चाय। चाय के साथ हमेशा कुछ न कुछ खाने के लिए भी रहता। अक्सर डिब्बों में रखे बिस्कुट, घर की बनी नमकीन या मिठाइयाँ मेरे सामने रख दी जाती। मेहमानों को चाय पिलाने, नाश्ता करवाने और खाना खिलाने में उन्हें अति आनन्द की अनुभूति होती थी। कोई औपचारिकता नहीं सबकुछ आत्मीय निस्वार्थ भाव से। गरीब–अमीर, छोटा–बड़ा इत्यादि का विचार कदापि नहीं।

प्रो. जुयाल अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहते थे। वे किसी प्रकार का सौदा नहीं करते और न किसी भय से अपने निर्णय को परिवर्तित करते। गाँधी विद्या संस्थान में भी वे किसी भी प्रशासकीय उत्पीड़न या भ्रष्ट आचरण अथवा धौंस को स्वीकार नहीं करते थे। वे स्पष्ट एवं मुखर वक्ता थे, किसी के साथ भी हो रहे भेदभाव, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार को वे बर्दाश्त नहीं करते थे तथा अपने ज्ञान और तर्क से तीव्र विरोध करते थे। एक बार मुझे पता चला कि उनका संस्थान के निदेशक से कुछ विवाद चल रहा है तथा एकतरफा कार्यवाही सम्भावित है। मैं भी चिंतित हो गया कि कच्ची गृहस्थी है कहीं सस्पेंशन हो गया तो क्या होगा?मैंने उक्त प्रकरण को उनसे समझने की कोशिश की। जुयाल जी ने एक बात कही कि, निदेशक कहते

हैं कि आप निगेटिव हैं, हमेशा निगेटिव बातें करते हैं। इसके अलावा ज्यादा तो उन्होंने नहीं बताया किन्तु समझ में आया कि कुछ वैचारिक मतभेद हैं। वास्तविकता यह थी कि जुयाल जी हमेशा समस्या के मूल कारणों को देखते थे, वे ख्याली पुलाव से या किसी ने कहा है के आधार पर विश्लेषण नहीं करते थे और ऐसा भी नहीं था कि वे केवल स्वहित की बातों पर ही गम्भीर होते। किसी का भी अहित उनके रहते सम्भव नहीं होता था।

तनाव एवं आकांक्षाओं के इस दौर में एक बार उनके द्वारा वाराणसी में रहने के लिए जमीन की बात चली। उस समय मेरी कॉलोनी (महामनापुरी) का विस्तार हो रहा था, जमीन अपेक्षाकृत सस्ती थी किन्तु पूर्णतः अविकसित तथा लगभग निर्जन स्थल की तरह थी, यद्यपि विकसित होने की पूर्ण सम्भावना थी। मैंने प्रो. जुयाल से वहाँ प्लॉट खरीदने की चर्चा की। कालोनी चारों ओर से बन्द थी। जुयाल जी की इच्छा को देखते हुए मैंने एक उपयुक्त प्लॉट का स्वयं चयन किया तथा उसमें जाने के लिए एक बने–बनाये मकान के एक हिस्से को ध्वस्त करवाया (मुआवजे के रूप में ठीक पीछे उपयुक्त जमीन देकर उसमें निर्माण करवाकर) उनके प्लॉट के ठीक सामने से सड़क निकलवा दी। अच्छे आदमी को भगवान अच्छे लोग भी देता है। उसी समय विकास प्राधिकरण में उत्तराखण्ड के ही एक आर्किटेक्ट बिष्ट जी भी थे। उन्होंने जुयाल जी के उक्त प्लॉट पर यथाशीघ्र एक सुन्दर घर भी निर्मित करवा दिया। विपत्ति के समय उक्त घर ने सभी सम्भावित समस्याओं से निदान करवाया।

जुयाल जी जिसको मानते थे उस पर भरोसा भी करते थे। यह अलग बात है कि भरोसा तोड़ने वाले भी थे। वे कान के कच्चे नहीं थे लेकिन अनवरत आलोचनाओं एवं चुगलखोरी से कभी–कभी विचलित हो जाते थे। जब मैंने उन्हें महामनापुरी

विस्तार में प्लाट खरीदवाया तो किसी ने उनसे कहा कि अरविन्द ने बहुत दूर प्लॉट दिलवा दिया है। जुयाल जी ने तो मुझसे उक्त संदर्भ में कुछ नहीं कहा किन्तु श्रीमती जुयाल ने बताया कि फलाँ–फँला ऐसा कह रही थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि प्लॉट सस्ता, सर्वाधिक उपयुक्त एवं भविष्य में बीचोबीच हो जायेगा और कभी भी लगे कि प्लॉट बेकार है तो मैं उसे उस समय की दोगुनी कीमत पर खरीद लूंगा। आज उनका निवास स्थान अत्यन्त उत्कृष्ट लोकेशन पर अवस्थित है। इतना ही नहीं कुछ ही वर्षों के उपरान्त प्रो. जुयाल ने अपने प्लाट के पीछे की भी जमीन खरीद ली।

प्रो. जुयाल को बागवानी का बहुत शौक था। मकान के चतुर्दिक स्थान–स्थान पर उन्होंने फूल–पौधे लगा दिये। कई फलों के पेड़ भी लगा दिए। चारो तरफ हरियाली हो गई पिछले हिस्से में अंगूर की बेल के नीचे मेज–कुर्सी लगाकर बैठने, अखबार पढ़ने और चाय–पानी का भी प्राकृतिक वातावरण में आनन्द लेने की उत्तम व्यवस्था हो गई। मकान में ऊपरी मंजिल पर उन्होंने एक कमरा 'स्टडी रूम' के रूप में अपने लिए आरक्षित कर दिया। ड्राइंग रूम में बड़ी सी आलमारी में भी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें रख दीं। स्टडी रूम में उनका पुराना टाईपराईटर भी अपना यथोचित स्थान पा गया। प्रो. जुयाल अक्सर देर रात तक अपने अध्ययन कक्ष में कार्यरत देखे जाते रहे।

गाँधी विद्या संस्थान में सेवानिवृत्त होने के पश्चात् पेंशन का प्रावधान नहीं था। स्वाभाविक है कि अर्थोपार्जन के लिए अकादमिक कार्य, कन्सल्टेन्सी इत्यादि उन्होंने करना प्रारम्भ किया। उनके यहाँ विविध व्यक्ति व्यक्तिगत, अकादमिक एवं समाज सेवा सम्बन्धी कार्यों से आने वालों की प्रतिदिन भीड़ लगी रहती थी। उनमें से कई केवल उनका समय बर्बाद करने वाले या उनसे लाभ प्राप्त करने वाले ही होते थे। सब

कुछ जानते–समझते हुए भी निहायत सज्जन प्रो. जुयाल यथासंभव मार्गदर्शन तथा आवश्यकतानुसार अकादमिक सहयोग कर देते थे। मुझे ऐसे कुछ लोगों के बारे में पता है, जिन्होंने कार्य हो जाने के पश्चात् तय राशि प्रदान नहीं की। एक केस में तो मैं भी अपने को इसलिए दोषी मानता हूँ कि मैंने एक व्यक्ति के अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से अनुदानित प्रोजेक्ट रिपोर्ट को संशोधित एवं परिमार्जित करने के लिए सिफारिश की थी। उक्त व्यक्ति ने कार्य के पश्चात् भुगतान नही किया, लम्बे समय तक केवल वादा करता रहा। खैर! प्रो. जुयाल ने धोखेबाजी करने वालों को सर्वदा माफ ही किया तथापि मुझे नही लगता कि ऊपर वाला ऐसे लोगों को माफ करेगा।

मैं जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम.ए. समाजकार्य का संयोजक बना तो मैंने उनकी विद्वता तथा एन.जी.ओ. क्षेत्र में विशाल अनुभव एवं प्रसिद्धि को देखते हुए विनम्र आग्रह किया कि वे हफ्ते में कुछ घण्टे छात्रों को व्याख्यान देने का अनुरोध स्वीकार करें। प्रो. जुयाल का मैं और मेरे तमाम छात्र ऋणी हैं, उन्होंने मेरे आग्रह को स्वीकार कर छात्रों को समाजकार्य की अनेकों बारीकियों से अवगत कराया। पी.आर.ए. और अन्य अनेक प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधियों के वे विशेषज्ञ थे। उन्होंने कई महत्वपूर्ण शोध कार्य किये। बाल मजदूरी पर उनका काम अन्तर्राष्ट्रीय जगत पर ख्यातिलब्ध रहा। 1972 में उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ चम्बल के डाकुओं पर एक महत्वपूर्ण शोध कार्य किया। इसी शोध कार्य के दौरान उन्होंने पाया कि एनकाउन्टर में मृत बताया गया एक डकैत वहीं की जेल में बन्द था। स्वाभाविक था कि तो फिर वह एनकाउन्टर में मृत कौन था? इसका कोई जवाब उन्हें नहीं मिल पाया। कई बड़े एन.जी.ओ. से और समाज सेवा की हस्तियों से उन्होंने मेरा परिचय करवाया। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा जी, श्री चण्डी प्रसाद भट्ट जी एवं श्री अनिल जोशी जी, श्री सतीनाथ सारंगी

(भोपाल) इत्यादि से मेरा परिचय प्रो. जुयाल जी के द्वारा ही हुआ।

बाल मजदूरी की समस्या के वे विशेषज्ञ माने जाते रहे। उल्लेखनीय है कि कानून की अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में उन्हें आमन्त्रित किया जाता था ताकि वे बाल–मजदूरों से सम्बन्धित विविध पक्षों से विद्वतजनों को अवगत करायें। उन्हें विदेश जाने का भी अवसर मिला। अनेक विदेशी प्रतिवर्ष उनसे विषय को समझने आते थे। अनेक एन.जी.ओ. को स्थापित करने से लेकर उसके कुशल संचालन तक में उन्होंने पूर्ण सहयोग किया। उनके ही कारण कई लोग विविध राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित भी हुए। प्रो. जुयाल ने उत्तर प्रदेश वालेन्टरी हेल्थ एसोशियेशन का नेतृत्व भी कुशलतापूर्वक सम्भाला। वे अखबार में छपने या फर्जी रिपोर्ट, दस्तावेज तैयार करने में विश्वास नहीं करते थे। उनके कई खास शिष्य बेईमानी या भ्रष्ट आचरण में उनके असहयोगी रूख के कारण दूर भी हो गए। परन्तु इन सबका प्रो. जुयाल पर कोई असर भी नहीं हुआ।

वे गरीबों, दीन–दुखियों के मसीहा थे। उन्होंने न केवल गांधी विद्या संस्थान के गरीब गैर–शिक्षण कर्मचारियों (जिन्हें संस्थान में हुए विवाद के कारण वेतन नहीं मिलता था) की यथासम्भव मदद की अपितु जो भी गरीब बेसहारा मिला, उसकी मदद की। महिलाओं के प्रति उनका विशेष सम्मान एवं समानता का भाव था। उन्होंने कभी किसी प्रकार का विभेद नहीं किया। पारिवारिक संकट से जूझ रही महिला हो या बेरोजगारी से परेशान महिला हो सभी को उन्होंने प्रोत्साहन एवं यथा सम्भव सहयोग प्रदान किया। दूसरों के कष्ट दूर करने में वे स्वयं अक्सर परेशान हो जाते थे। बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए, ये प्रो. जुयाल से सीखा जा सकता था। अपने नाती के वे दोस्त थे और नाती के सभी

दोस्तों के भी दोस्त। पोता–पोती भी जब कभी यदा–कदा आते तो जुयाल जी लगातार उनके साथ ही दोस्त बनकर रहते। सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और परिवार में माता–पिता की। प्रो. जुयाल आदर्श सामाजीकरण के प्रतीक थे एवं मानवाधिकार के सच्चे हितैषी।

कर्मकाण्ड में उनका विश्वास कम ही था। धर्म की चर्चा भी यदा–कदा ही करते थे किन्तु धर्म के परम सिद्धान्त के अनुसार 'अकार्य' के निर्देशों का पालन किया। 'अकार्य' अर्थात् न करने की बातें। धर्म का परम सिद्धान्त यह कहता है कि किसी भी निर्दोष या निरपराधी को मारना, किसी का धन या प्राण हरना, किसी के साथ अत्याचार करना, किसी को झूठ से ठगना इत्यादि अकार्य हैं। आज बहुत से 'अकार्य' हैं। मानव विकास में बाधक सभी तत्त्व अकार्य हैं। अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मानवाधिकार का हनन इत्यादि कई अकार्य हैं, प्रो. जुयाल ने सभी अकार्यों से आजीवन अपने को दूर रखा।

प्रो. जुयाल विकास योजनाओं के स्थानीय लोगों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों के प्रति चिन्तित थे। उन्होंने स्वयं कई सामाजिक आन्दोलनों में सहभाग किया। अनेक आन्दोलनकर्ताओं से उनका निकट का सम्बन्ध रहा। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के एक कार्यक्रम (गंगोत्री से गंगासागर की यात्रा सम्भवतः) में तो वे मुझे भी लेकर गए। हमलोगों ने यात्रा दल का एक स्थान पर स्वागत एवं जल–जलपान की व्यवस्था की थी। टिहरी बाँध बचाओ आन्दोलन में भी उन्होंने कई आलेख लिखे और बाँध के दुष्परिणामों से सम्बन्धित वैज्ञानिक तथ्य संकलित किए। उत्तराखण्ड राज्य के गठन में भी उनकी बहुत दिलचस्पी रही। पर्वतीय क्षेत्रों का उन्हें गहन ज्ञान था। उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियों पर होने वाले अत्याचार से वे भाव विह्वल हो जाते। मुजफ्फरनगर तिराहा काण्ड से वे बहुत आक्रोशित एवं तनावग्रस्त हो गये थे।

उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियों के लिए उन्होंने बहुत से कार्य किए। जब वाराणसी केन्द्रीय कारागार में उत्तराखण्ड के कुछ आन्दोलनकारियों को भेजा गया तो प्रो. जुयाल मेरी कार में उन लोगों से मिलने केन्द्रीय कारागार गये। इनमें पूर्व मुख्यमंत्री मेजर जनरल श्री भुवनचन्द्र खण्डूरी भी एक बन्दी थे। हमलोगों ने उत्तराखण्ड आन्दोलनकारियों के समर्थन एवं धन संग्रह का कार्य भी साथ–साथ किया। प्रवासी उत्तराखण्ड समाज की गतिविधियों में भी प्रो. जुयाल विशेष रुचि रखते थे।

नागपुर में वर्ल्ड पीस एकेडमी द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में मैने उनके साथ एक पर्चा 'इकोलॉजी, नेशनल डेवलपमेंट एण्ड पेरीफेरल सोसाइटी : ए केस ऑफ टिहरी डैम भी लिखा। उल्लेखनीय है कि मेरा विषय पर ज्ञान अल्प था। जब व्याख्यान शुरू हुआ तो मैं जैसे ही किसी विषय पर अटका, प्रो. जुयाल ने माईक सम्भाल लिया और अपने जोरदार तार्किक एवं सूचनापूर्ण भाषण से उपस्थित लोगों पर गहरी छाप छोड़ी। स्पष्ट है कि प्रो. जुयाल अपने रहते किसी कनिष्ठ सहयोगी को किसी प्रकार की समस्या नहीं आने देते थे।

प्रो. जुयाल जी ने तो कभी अपने प्रारम्भिक जीवन के कष्टों को मुझे नहीं बताया, किन्तु विश्वसनीय लोगों से पता चला कि उनका प्रारम्भिक जीवन अत्यंत संघर्षमय था। अपनी क्षमता, ईमान्दारी और लगन से उन्होंने प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया। श्रम संघ में नेतागीरी भी उन्होंने की, वे कई पुराने संगठनों के क्रियाकलापों से पूर्णतः परिचित थे। अनेक प्रतिष्ठित राजनेताओ, समाजसेवियों, नौकरशाहों इत्यादि से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे, लेकिन प्रो. जुयाल ने न तो कभी उनसे कोई लाभ लिया और न कभी किसी को सम्बन्धों की दुहाई देकर अपने को बड़ा दिखाने की कोशिश ही की। आडम्बर रहित व्यक्तित्व के धनी जुयाल जी का कोई जवाब नहीं।

मेरे पिताजी श्री आदित्य स्वरूप जोशी से वे उम्र छोटे थे

और अक्सर पिताजी का स्वास्थ्य जानने घर आते रहते थे। दोनों एक दूसरे के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखते थे। जब प्रो. जुयाल गम्भीर बीमार पड़े तो मेरे पिताजी बहुत ही चिन्तित एवं दुखी हुए। जुयाल जी अस्पताल से घर वापस आ गये किन्तु उनकी वाणी चली गई। हमलोगों ने कई चिकित्सकों से पूछा तो सभी ने कहा कि कुछ समय लगेगा। सभी ने अलग–अलग राय दी। किन्तु सभी ने आश्वस्त किया था कि वे बोलने लगेंगे। न बोल पाने का गम प्रो. जुयाल के चेहरे एवं व्यवहार से स्पष्ट झलकता था। हम सभी लाचार थे फिर भी उम्मीद थी क्योंकि कभी–कभी वे कुछ अस्पष्ट शब्द बोल देते थे। वाणी चली गई थी किन्तु प्रो. जुयाल सम्बन्धों के निर्वाहन में यथावत रहे। वे उस स्थिति में भी मेरे पिताजी से मिलने की जिद करके आते रहे।

प्रो. जुयाल के रहते माहौल कभी तनावपूर्ण नहीं रहता। वे जहाँ भी रहते वहाँ गम्भीर बातों के साथ–साथ हँसी–मजाक का भी स्तरीय माहौल बनाये रखते। उनकी चिर–परिचित हँसी आज भी किसी कोने से आती सुनायी पड़ती है। प्रो. मित्तल (जो उनसे वरिष्ठ एवं सहयोगी रहे) कई लोगों को विविध तरह की स्व ईजाद की हुई विविध तरह की दवाएँ देते थे और दावा करते थे कि वह दवा अचूक है। जुयाल जी अक्सर हँसते हुए मित्तल जी से कहते थे कि आपकी दवा आपको ही लगती है। मित्तल साहब के साथ–साथ आसपास खड़े सभी लोग जुयाल जी की इस बात पर ठहाका लगा देते थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनका हो गया।

प्रो. जुयाल का स्मरण मात्र ही भावुक बना देता है। क्या–क्या लिखूं यादों की लम्बी श्रृंखला है। उनके ऋणों से उऋण होना तो सम्भव नही है किन्तु ऐसा कुछ करने का विचार है कि प्रो. जुयाल आने वाली पीढ़ियों में भी सम्मानपूर्वक याद किये यें। मैं आज जो कुछ भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका हूँ,

वह प्रो. जुयाल से प्राप्त प्रशिक्षण, प्रेरणा और प्रेम का परिणाम है।

एक महान आत्मा को एवं निष्काम कर्मयोगी स्वर्गीय वासवानन्द जुयाल को मेरा एवं मेरी पत्नी डॉ. विभा जोशी का शत् शत् नमन्।

पुत्र, अमित जुयाल, के विवाह के समय

प्रो0 बी.एन. जुयाल; एक कार्यभौम प्रासंगिक व्यक्तित्व

डॉ0 रमाकान्त राय
कन्वेनर, नेशनल कोइलीशन फार एजुकेशन
41 इन्स्टीट्यूशनल ऐरिया, जनकपुरी,
नई दिल्ली– 110058
मो0 9811418201, Email: ramakant@nceindia.org

आज जब देश भर में देश हित व देशद्रोह पर एक शीतयुद्ध छिड़ा हुआ है तब हम जैसे शिष्यों को प्रो0 बी.एन. जुयाल के दर्शन व व्यक्तित्व की प्रासंगिकता याद आती है। विगत् 45 वर्षों से गाँधीवाद, लोहिया व जय प्रकाश जी के सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन के बारे में जो भी समालोचनात्मक दृष्टि व दृष्टिकोण मेरे जीवन में आ सका है। उसमें प्रो0 जुयाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जब मैं जे.पी. आन्दोलन के समय बिहार से सरकारी सेवा छोड़कर आया तो समाज, सामाजिक परिवर्तन, लोहिया जी का समाजवाद, गाँधी जी की प्रयोगधर्मिता व जे.पी. की सम्पूर्ण क्रांति पर बेबाक पहल मुझे झकझोर रही थी। सेवापुरी में कार्य करते हुए इन महापुरुषों की दर्शन की सपाट समझ प्रो0 जुयाल ने हम लोगों को दी थी।

आज प्रो0 जुयाल हम लोगों के बीच नहीं हैं तो उम्र के इस 68 वर्षीय पड़ाव पर एक सहज और स्पष्टवादी मार्गदर्शन शुरू की कमी खटक रही है और मैं सोचता हूँ कि हमारी और हमारे साथ दूसरी पीढ़ी के बीच परिवर्तन, साम्यवादी बहस तथा शोध और संवाद के लिए प्रो0 जुयाल का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रासंगिक लगता है। प्रो0 जुयाल मेरे जीवन में एक लम्बे अन्तराल तक विभिन्न भूमिकाओं में मेरा मार्गदर्शन करते रहे।

कभी उ0प्र0 वॉलण्टरी हेल्थ एसोसिएशन में मैं जब अधिशासी निदेशक के पद पर था, तो कभी सेवापुरी में बाल श्रमिकों के लिए कार्य, बचपन बचाओ आन्दोलन में तो कभी पर्यावरण व सामाजिक बदलाव पर कार्यशाला तथा छोटे–मोटे अध्ययन व लेखन में उनसे जुड़े कुछ संस्करण नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ।

1. यह वो समय था जब जय प्रकाश जी के प्रयासों से श्री सुब्बाराव जी ने चम्बल में दस्युओं का आत्मसमर्पण कराया था। प्रो0 जुयाल इन दस्युओं के समर्पण के समय शोध अध्ययन व संवाद में जय प्रकाश व सुब्बाराव जी के साथ सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। इन्हीं आत्मा समर्पित दस्युओं में से दो दस्यु सघन क्षेत्र विकास समिति, सेवापुरी, वाराणसी में प्रशिक्षण तथा हृदय परिवर्तन के लिए भेजे गये थे (नाम सेवरन सिंह, व दूसरे लखन सिंह)। इन दोनों लोगों को फल संरक्षण उद्योग में प्रशिक्षण के लिए मेरे जिम्मे लगाया गया। इन दोनों दस्युओं को पूरे दिन मुझे सम्भालना तथा प्रशिक्षित करना था। सुबह से दोनो दस्यु (वागी) मेरी बेटी (जो 4 साल की थी) का पैर छूकर पूजा करते थे (चंबल के बागी कुवारी लड़कियों की सम्मान के साथ पूजा करते थे) उसके बाद दिन भर उन्हें सम्भालना पड़ता था। मैं घबड़ा गया था। प्रो0 जुयाल से पूछा कि गुरु जी इन अनपढ़ दस्युओं को उद्योग व अहिंसा का पाठ कैसे पढ़ाऊँ? प्रो0 जुयाल ने 2 घण्टे में जो मुझे साहस व मार्गदर्शन दिया उससे मै अभिभूत हो गया। उन्होंने कहा कि यह तुम्हारे जीवन की एक महत्वपूर्ण चुनौती है और इस काम को करने में तुम जो खुद सीखोगे वह तुम्हारे जीवन भर काम आयेगा। उन्होंने मुंशी प्रेमचन्द्र की कहानी ''नशा'' का उदाहरण देकर समझाया। मुझे वह अनुभव कभी नहीं भूलेगा।
2. आल इण्डिया कार्पेट मैन्यूफैक्चर्स एसोसिएशन के

सभाकक्ष भदोही में कार्पेट में व्याप्त बाल मजदूरी पर हमलोग बहस कर रहे थे। श्री कैलाश सत्यार्थी, श्री शमशाद भाई और हमारे 25 साथी व कुछ बचपन बचाओ आन्दोलन के साथी थे। बालमजदूरी पर हम लोगों द्वारा छापा डालकर बच्चों को मुक्त कराने व स्कूलों में डालने तथा इसे मीडिया में देने पर कार्पेट वाले काफी नाराज थे। थोड़ी देर में एक स्थानीय सांसद अपने 15–20 लम्पट गुण्डों के साथ सभाकक्ष में घुसे और बात गाली गलौज पर आ पहुँची। सांसद के लोगों ने सभाकक्ष में मारपीट करने का प्रयास किया। मेरे कुछ साथी घबरा गए। प्रो0 जुयाल ने उस समय स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए सांसद महोदय को बहुत शालीनता से समझाया और एक घण्टे की बहस के बाद मामला शांत हो गया। जुयाल जी ने मुझसे कहा कि इस प्रकार की घटनाएं हमारा प्रोफेशनल हजार्ड (पेशेगत खतरा) हैं और यह बार–बार आएगा। इससे घबड़ाना नहीं।

3. टिहरी बाँध बनने के समय काफी लोग टिहरी से विस्थापित किए गए। आदरणीय बहुगुणा जी के नेतृत्व में हमलोग प्रो0 जुयाल के साथ एक अध्ययन दल के रूप में यू0पी0वी0एच0ए0 की टीम के साथ टिहरी गए। भीषण गर्मी में पैदल चलकर पीड़ितों के बयान दर्ज करने काफी नौजवान गए थे। प्रो0 जुयाल अथक व अदम्य साहस के साथ आगे–आगे चलते और एक–एक पीड़ित का बयान हम लोगों से दर्ज करवाते। उन्होंने हम लोगों की ऊर्जा बढ़ाते हुए इस कार्य को पूरा करवाया।

   बाद में उत्तर प्रदेश सरकार ने बहुगुणा जी को पी.जी.आई, लखनऊ में नजरबंद कर दिया। प्रो0 जुयाल ने मेरी ड्यूटी बहुगुणा जी की देखरेख के लिए लगायी। 10 दिनों तक प्रो0 जुयाल स्वयं मेरे साथ रहकर मेरा हौसला बढ़ाते रहे

और उनकी रिहायी तक जमे रहे।

प्रो0 जुयाल से जुड़ी अनवरत् यादें हैं, परन्तु सबको लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है। मेरे जीवन में शोध, गाँधी व जे. पी. के दर्शन तथा हिम्मत के साथ पहल करने की क्षमता थी। जो भी मुझे मिल सका है वो आदरणीय (स्व0) बी0 एन0 जुयाल के सानिध्य की देन है। ऐसे गुरु को सत् सत् नमन।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल स्मृति व्याख्यान
पराड़कर भवन, वाराणसी

प्रो0 बी.एन. जुयालः एक अलग व्यक्तित्व

डॉ0 गिरिजा सतीश
अध्यक्ष, न0 भा0, जा0 केन्द्र
हजारीबाग, झारखण्ड

श्री बी० एन० जुयाल के देहान्त के बारे में सुनकर हमें बहुत सदमा लगा था।

जुयाल साहब से हमारा सम्बन्ध लगभग 30–35 वर्षों से था। हम अक्सर श्री विकास भाई से मिलने वाराणसी जाया करते थे। उसी दौरान उनसे हमारा संपर्क हुआ। वे गाँधी विद्या संस्थान में पढ़ाते थे, साथ ही विकास भाई के अच्छे दोस्त भी थे। उस समय हम सामाजिक कार्यों के शुरुआती दौर में थे। श्री विकास भाई और जुयाल साहब से हमें बहुत कुछ सीखने को मिला। विकास भाई के साथ बहुत सारी संस्थाएं और सामाजिक कार्यकर्ता जुड़े हुए थे। वैचारिक मुद्दों पर अक्सर बैठकें एवं कार्यशालाएं होती थीं। उनमें जुयाल साहब आम तौर पर उपस्थित रहते थे। उनके अध्ययन और अनुभव का फायदा सभी को मिलता था। हम मानते हैं कि वे बहुत प्रगतिशील और वैचारिक व्यक्ति थे।

इनके जैसा मिलनसार, सरल और सहृदय व्यक्ति हमें बहुत कम ही दिखा है। उन्हें सामाजिक कार्यों से गहरा लगाव था। उनके अन्दर गरीबों के प्रति संवेदना थी। वे कई बार नव भारत जागृति केंद्र के कार्यक्रमों को देखने के लिए भी आए थे। गाँव के लोगों के साथ बैठकें होती थी, उसमें वे शामिल होते थे। जहाँ तक उनका संपर्क था, वे संस्थाओं की मदद करते थे। बाद में उम्र हो जाने के बावजूद उनकी सक्रियता में कोई कमी नहीं आयी थी। वे गांवों में भ्रमण करते थे और कहीं जाने से हिचकते नहीं थे।

तीन–चार वर्ष पहले हम लोगों ने उन्हें निःशक्तता सम्बन्धी कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु बुलाया था। उन्होंने इसे सहज स्वीकार किया। पांच जिलों में चलने वाला यह कार्यक्रम काफी बड़े इलाके में फैला हुआ था। कठिन क्षेत्र होने के बाद भी जुयाल साहब सारी जगहों पर गए, गांव के लोगों से मिले और गांवों में बैठकें की। असुविधाजनक परिस्थितियों में भी वह काफी सहजतापूर्वक काम करते थे।

श्री जुयाल साहब का निधन सामाजिक क्षेत्र के लिए बहुत बड़ी क्षति है, जिसकी पूर्ति शायद नहीं की जा सकती है। वे अपने विचारों और निष्ठाओं के प्रति दृढ़ थे। जो उन्हें सही नहीं लगता था, उसके सामने वे झुकते नहीं थे।

अक्सर उनकी याद आती रहती है और लगता है कि वे आज भी हमारे साथ ही हैं। हम उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल स्मृति व्याख्यान
पराड़कर भवन, वाराणसी

वे एक अपने से

प्रो0 मुकुल राज मेहता
प्रोफेसर, दर्शन एवं धर्म विभाग
कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रो. जुयाल सर का नाम आते ही मस्तिष्क में उनकी आति एक सहज, अति साधारण किन्तु अति सुढ़ विचार वाले पुरुष के रुप में अनायास ही उभर आती है। प्रो. जुयाल से मेरा प्रथम परिचय करीब 1985–86 में गाँधी अध्ययन संस्थाान, राजघाट, वाराणसी में हुआ था, जब उन्होने संभवतः वहाँ के निदेशक का कार्यभार भी संभाला हुआ था। डा० अरविन्द कुमार जोशी के साथ उसी दौरान बाद में भी सर से उनकी महामनापुरी मे जमीन खरीदते समय मुलाकातें होती रहीं। तत्पश्चात मकान के निर्माण के दौरान सम्पर्क बना रहा।

महामनापुरी में जब सर ने स्थायी रूप से आवास स्थानान्तरिंत कर लिया, फिर तो निरन्तर मुलाकातों का सिलसिला उनके जीवन काल तक चलता रहा। मेरे घर से करीब सौ मीटर का फासला था सर के आवास का। मुझे याद है कि सर व्यक्तियों पर सहज भाव से विश्वास करने में हमेशा यकीन करते थे, भले ही नुकसान भी उठाना पड़ जाये, जैसा कि उनके मकान निर्माण के समय हुआ भी।

मुझे स्मरण है कि सर मेरे घर जब भी आते थे, कभी ये नहीं लगता था कि कोई मेहमान आये हैं। गेट पर आते ही वे अपने अन्दाज मे आवाज लगाते – और मुकुल, क्या हो रहा है? मैं तुरन्त आ के गेट खोलता, तो अन्दर आते ही, जहॉ हम लोग घरेलू तरीके में पारिवारिक तौर से बैठ कर कुछ काम करते रहते थे, वहीं सीधे कुर्सी खींच कर बैठ जाते। कभी भी वे मेरे घर के ड्रॉइंग रूम में नहीं बैठे, कारण ये था कि मेरे घर में उन्हें

कभी मेहमान नहीं समझा गया, बल्कि घर के एक वरिष्ठ सदस्य की भॉति ही हमेशा समझा गया। बैठते ही मेरी पत्नी का हाल पूछते – कैसी हो इनू? प्रोफेसरी कैसी चल रही है? उसके बाद चाय के साथ शुरू होती थी किसी भी विषय पर चर्चा और उस चर्चा में संबंधित विषय पर सर की टिप्पणियाँ। तब लगता था कि चाहे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, शैक्षणिक, खेलकूद, सुरक्षा, विदेश नीति अथवा किसी भी विषय पर चर्चा हो, सभी पर समान रूप से इतनी सटीक और प्रासंगिक टिप्पणी करने की अद्‌भुत क्षमता थी उनमे। बड़ी सहज और सरल भाषा में गंभीर विषय और चिन्तन को प्रस्तुत करने की क्षमता तो थी ही उनमें, साथ ही वे हास्य संज्ञा (सेन्स ऑफ ह्यूमर) के भी बड़े धनी थे। वे जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन, सुन्दर लाल बहुगुणा के आन्दोलन एवं उत्तरांचल की खटीमा की घटनाओ की भी समीक्षा प्रायः किया करते थे।

प्रायः जरा सी विद्वता, प्रसिद्धि अथवा पद प्राप्ति के मद में लोगों को डूबे हुए देखने में आता है, परन्तु इन तीनों के एक साथ होते हुए भी सर को अहंकार छू तक नहीं गया था। उनके प्रत्येक पारिवारिक आयोजन में वे स्वयं आमन्त्रित करते हुए कहते थे – अरे मुकुल, शाम को खाना उधर घर पर ही है सबका, आ जाना। यदि एक वाक्य में कहना हो तो मैं कहूँगा कि सर एक छोटे कद के साधारण व्यक्ति एवं विद्वता, सरलता, सहजता, कर्मठता एवं सुदृढ़ता के प्रतिमूर्ति, आसमान की ऊंचाइयों को छूने वाले असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी थे। आज भी उनका ध्यान आते ही उनसे जुड़ी हुई हर याद ऐसे ताजा हो जाती है जैसे अभी कल की ही बात हो। ऐसे श्रद्धेय सर को शत शत नमन करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

प्रो0 जुयाल – जैसा देखा, समझा
(एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व)

डॉ0 लक्ष्मण विश्वनाथ भावे
परामर्श चिकित्सक–योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, वाराणसी

प्रो0 जुयाल आज से लगभग 12–14 वर्ष पहले अपने स्वास्थ्य के संबंध में मुझसे मेरे घर पर मिले थे। फिर हमलोग धीरे–धीरे निकट आते गये और कब एक–दूसरे के मित्र बन गये इसका मुझे कोई भान नहीं है। कालांतर में हमलोगों के पारिवारिक संबंध बन गये और दोनों परिवार भी एक–दूसरे के निकट हो गये। वे एक कर्मठ, निर्भीक, समर्पित और सच्चे समाजसेवी थे। आवश्यकता पड़ने पर वे बिना किसी भय के कठोर आलोचना करने में जरा भी नहीं हिचकते थे। उनका मानना था कि समाजसेवा के लिए जरूरी नहीं कि हम कोई बड़ी संस्था बनाकर, नाम कमाकर, ही सेवा करें, अपितु यदि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्तर पर जितना संभव हो उतना, लेकिन दृढ़ इच्छाशक्ति से समाज के किसी जरूरतमंद व्यक्ति की (जो समर्थ नहीं है) किसी भी रूप से सहायता कर, उसे ऊपर उठाये या उसके कष्ट कम करे तो वही सच्ची समाज सेवा है। मेरी पत्नी भोपाल गैस त्रासदी की पीड़ित है और शायद यही वह पहला आकर्षण होगा जो उन्हें मेरी पत्नी को अपार स्नेह करने के पीछे का पहला कारण होगा क्योंकि वे भोपाल गैस त्रासदी की विभीषिका, उसके अनंत काल तक पड़ने वाले शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दुष्प्रभाव को अच्छी तरह जानते थे। इस संबंध में उन्होंने संबंधित विशेषज्ञों से संपर्क भी किया था। वे मेरी पत्नी को बहुत मानते थे। पहले वे उसे 'मैडम' बुलाते थे परन्तु पता नहीं कब 'मैडम' से वह मंजु बन गई। उनके हृदय में उनकी बेटी पाली और मेरी पत्नी, मंजु में

हमेशा एक जैसा स्नेह था।

वे अत्यंत साधारण जीवन जीते थे। उनका व्यक्तित्व साधारण परन्तु प्रभावशाली था। उनकी हर वस्तु ठोस, उपयोगी और आम वस्तु से अलग होती थी। वे कपड़ों के बहुत शौकीन थे। उनके पास कपड़े–जूते का अच्छा संग्रह था तथा जब कभी उन्हें पहन कर वो तैयार होकर सामने आते थे तो उनका एक अलग ही व्यक्तित्व देखने को मिलता था। इतना ही नहीं उन्हें सामने पाकर स्वतः ही एक बार पुनः देखने को सामने वाला मजबूर हो जाता था।

देखने में शांत, सामने वाले को ध्यान से सुनने वाला, छोटी कद–काठी वाला, दूसरों से अलग–थलग दिखने वाला यह व्यक्ति भीतर ही भीतर क्या सोच रहा है इसका अनुमान लगाना कठिन था। लेकिन जब वह मुँह खोलते थे तो पता चलता था कि उनके भीतर ज्ञान का सागर हिलोरें मार रहा है। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में उन्हें महारत हासिल थी। शब्दों का चयन और उसका सही स्थान पर प्रयोग करना उनकी सबसे बड़ी खासियत थी। वे धारा–प्रवाह अकाट्य तर्कों के साथ, बुलंद आवाज में बोलते थे, जिसका सामना करना बहुत कठिन था। उनकी याददाश्त बहुत प्रखर थी। वे पुरानी से पुरानी बातें सप्रसंग बता देते थे। चाहे कोई भी विषय हो, उसके मर्म पर उनका ज्ञान विलक्षण था।

उनकी अपनी ही सोच हुआ करती थी जिसपर वे कभी कोई समझौता नहीं करते थे। हाँ, यदि दूसरे के विचार उन्हें तर्कसंगत लगते थे तो वे उसे पूर्ण सम्मान के साथ स्वीकारते थे और यही उनकी सरलता थी कि वे कभी किसी बात को सम्मान का प्रश्न (प्रेस्टीज इशू) नहीं बनाते थे।

दूसरों का पूरा सम्मान करना उनसे सीखने लायक था। वे हमेशा सत्य बोलते थे। जब भी मैं उन्हें कोई चिकित्सकीय परामर्श देता था तो वे उसका पूरा पालन करने की कोशिश

करते थे। यदि कोई चूक होती थी तो वे उसे बड़ी विनम्रता से स्वीकारते थे। वे कभी अपनी गलती को कम करके नहीं बताते थे।

वे अत्यंत स्वावलम्बी थे। अपना काम स्वतः करने में उनका विश्वास था। वे अपनी पत्नी का बहुत आदर करते थे और जितना आदर करते थे उससे अधिक वे प्रेम करते थे। मैंने कभी उनके मुँह से पत्नी की कोई शिकायत नहीं सुनी जो होना शायद असम्भव था। शायद उनका पत्नी–आदर उन्हें इसकी आज्ञा नहीं देता था। वे कभी अपने दुःख के बारे में या अपनी परेशानी के बारे में किसी से कुछ नहीं कहते थे। यहाँ तक कि उन्हें जब कोई शारीरिक कष्ट होता था तो वे उसे इतना साधारण बताते थे कि उसकी तीव्रता और गम्भीरता का आंकलन करना कठिन हो जाता था। शायद वे अपने दुःखों, कष्टों की अभिव्यक्ति में अंतर्मुखी थे।

उनके जीवन के अंतिम कुछ दिनों में मैं एक चिकित्सक और मित्र के रूप में उनसे नियमित मिलता रहता था। वे पूरी तरह से स्पष्ट बोल नहीं पाते थे और चलने–फिरने में भी उन्हें कठिनाई होती थी। फिर भी वे ठीक होने का लगातार प्रयास करते रहते थे। उनके स्वास्थ्य में बहुत तेजी से अनापेक्षित रूप से सुधार भी हो रहा था।

लेकिन काल का अपना चक्र होता है। एक लंबा समय लग रहा था। जो व्यक्ति कभी दूसरे से एक गिलास पानी भी नहीं मांगता था उसे आज कई कामों के लिए दूसरे का मुँह देखना पड़ता था। जिसके जीवन की सबसे बड़ी ताकत जीह्वा और लेखनी थी वो आज सुप्त और शांत पड़ी थी। जो हमेशा दूसरों को समझाता और हिम्मत देता था आज उसे ही दूसरे समझाने और हिम्मत रखने की सीख देने आ रहे थे, अजीब विडम्बना थी।

शायद यही सब बातें उन्हें अच्छी नहीं लग रही थीं और

धीरे–धीरे उनका ठीक होने का आत्मविश्वास डगमगाने लगा था। उनका सिर हिलाकर 'ना–ना' कहना, अपनी बेटी की तरफ इशारा करके उसके प्रति चिंता दिखाना, अपने नाती को गले लगाना या अपनी पत्नी का हाथ, हाथ में लेकर पास में बैठना उन्हें उनके जीवन के अंत समय का पूर्वानुमान होना सा लगता है। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे मेरे घर पर भी 3–4 बार आये। मेरे घर आने पर उन्हें अत्यंत खुशी मिलती थी, ऐसा लगता था शायद उन्हें अपने वे पुराने दिन याद आ जाते थे जब वे बड़ी फुर्ती से तेज–तेज कदमों से चलकर मेरे घर आकर फलों से भरा झोला या अन्य कोई चीज देते थे।

आखिरी बार जब वे मेरे घर पर आये थे तब उन्होंने मेरे बेटे को गले से लगाकर प्यार किया था। मैंने देखा कि उस समय उनकी आँखें सजल थीं। उस दिन के पहले मैंने कभी उनकी आँखों में आँसू नहीं देखे थे।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में वह सख्त, कठोर और निर्भीक दिखने वाला व्यक्तित्व अत्यंत भावुक हो चुका था। आखिर प्रो0 जुयाल भी एक मनुष्य ही तो थे। जो अभिव्यक्ति उनके संघर्षमय, कठिन, कर्मठ जीवन में नहीं दिखी वह उनके जीवन के अंतिम दिनों में उनमें दिखने लगी थी। भले ही उनकी भावुकता पहले नहीं दृष्टिगोचर हुई परंतु यदि वे भावुक नहीं होते तो अनेक लोगों को नौकरी देना, पैसा देना, हर तरह से मदद करना, और लोकप्रिय होना क्या संभव था!

वे आत्म प्रशंसा के प्रखर विरोधी थे तथा वे हमेशा सत्य के पक्षधर थे। चाहे कितना भी प्रभावशाली व्यक्ति हो, यदि वह गलत है तो वे इसका पूर्ण और सख्त विरोध करते थे। वे कभी व्यक्ति के विरोधी नहीं होते थे बल्कि उसके द्वारा किये गये गलत कार्य के विरोधी होते थे और इसीलिये उनके कई विरोधी भी उनका सम्मान करते थे और अंत तक उनके मित्र बने रहे। परन्तु उनकी इस सत्य–वादिता ने उनको बहुत कष्ट

भी दिया और जो सम्मान और स्थान उन्हें उनके जीवन में मिलना चाहिये था या जिसके वे अधिकारी थे वो उन्हें नहीं मिला। भले ही उन्हें इसका रंज मात्र भी क्षोभ नहीं था परंतु आज भी जब हम देखते हैं कि उनके अनुयायी ऊँचे–ऊँचे सम्मान पाकर उन्हें भूल चुके हैं तो थोड़ा दुःख हमें तो होता है क्योंकि हम अभी प्रो0 जुयाल की तरह निस्पृह नहीं हैं। मन में कहीं लगता है कि जो सम्मान हम आज उन्हें व्याकुलता से उनकी मृत्यु के उपरान्त लिख कर दे रहे हैं क्या यह पहले नहीं कर सकते थे?क्या यह ठीक कर रहे हैं? आज उनके बारे में मुझे कुछ लिखने को कहा गया तो मुझे समझ नहीं आ रहा है कि क्या लिखूँ? मन मे आया कि जो सम्मान उन्हें उनके जीवन काल में मिलना चाहिये था वो तो दिया नहीं गया, अब मृत्यु के उपरान्त उनके बारे में उनकी स्तुति करना किसी रूप में कहीं अपनी स्वतः की स्वार्थ पूर्ति तो नहीं। लेकिन फिर विचार आया कि प्रो0 जुयाल ने कभी किसी के आग्रह को नहीं ठुकराया। वे दूसरों को खुश देखना चाहते थे। और खुशी–खुशी वे किसी के लिये भी कोई प्रोजेक्ट बनाकर या लेख लिखकर देते थे। क्योंकि उनकी सोच थी कि भले ही उनका नाम न हो परन्तु उनके विचार तो रोशन हो ही रहे हैं। अतः फिर मैंने कुछ, जो मेरे मन में तुरंत उनके बारे में आया, लिख दिया। वैसे प्रो0 जुयाल के बारे में लिख पाना सहज नहीं है क्योंकि उनका जीवन अगाध है जिसे खंगालना संभव नहीं, सरल नहीं। चलिये भले ही देर से आये, दुरुस्त आये, यदि हम उनके विचारों को समाज में ला सकें तो यह उनके प्रति एक सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है और ये एक सच्चा, समर्पित महान प्रयास उनके पुत्रवत दामाद डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़ कर रहे हैं, जिसके लिये मैं उनका साधुवाद करता हूँ। अस्तु!

विद्या और विनय के मनीषी : प्रो0 बी0 एन0 जुयाल

डॉ0 देवेन्द्र कुमार सिंह
बी–2/64, भदैनी, वाराणसी–221001
9415994509 (मो0)

जब मैं डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल की ग्रंथावली का संकलन कर रहा था, उसी क्रम में डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद जुयाल (पूर्व सदस्य, उत्तरांचल लोक सेवा आयोग) एवं श्री वी0 एम0 मधवाल (अवकाश प्राप्त आई0 ए0 एस0 अधिकारी) दोनों महानुभाव काशी नागरी प्रचारिणी वाराणसी में आये। सभा से वापस जाने के बाद डॉ0 जुयाल ने कहा कि सभा में डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं प्रसिद्ध पाण्डुलिपिविद् पं0 दौलत राम जुयाल का चित्र नहीं है, वहाँ होना चाहिए। क्योंकि डॉ0 बड़थ्वाल और पं0 जुयाल ने सभा की बड़ी सेवा की है। श्री देवेन्द्र कुमार जुयाल ने यह भी कहा कि चित्र बनवाने में जो व्यय होगा उसे मैं करुँगा। इस विचार को सुनकर मैं डॉ0 बड़थ्वाल की जन्मतिथि 14 दिसम्बर के दिन उनके चित्र को सभा में लोकार्पण हेतु तत्पर हो गया। चित्र बना, निमंत्रण पत्र छपे और वितरित हुए। समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में मैंने श्री चंचल कुमार तिवारी, तत्कालीन आयुक्त, वाराणसी मण्डल, वाराणसी और अध्यक्षता हेतु संस्कृत के सुधी विद्वान श्री अच्युतानंद घिल्डियाल जी से निवेदन किया, जिसे दोनों महानुभावों ने स्वीकार भी किया।

चित्र लोकार्पण के दिन 14 दिसम्बर 2014 के दिन नागरी प्रचारिणी सभा में डॉ0 ए0 पी0 गौड़ के पार्श्व में बैठे एक स्वस्थ एवं सुन्दर व्यक्ति प्रसन्न मुद्रा में बड़ी गम्भीरता से लोगों के विचार सुनते दिखाई पड़े। सच बात यह थी कि मैं उन्हें पहचानता नहीं था। समारोह सम्पन्न होने के पश्चात वे मुझसे

मिलकर समारोह की सफलता के लिए शुभकामना दिये। तब मैं जाना कि ये सज्जन प्रो0 बी0 एन0 जुयाल हैं। अपने पर ग्लानि भी हो रही थी और प्रो0 जुयाल को देखकर मुझे अन्दर से ऊर्जा भी मिल रही थी।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल के स्मरण के साथ उनके व्यक्तित्व का प्रभामण्डल दिखाई देता है। जिनमें अहंकार नाम मात्र नहीं था। वे अत्यंत सुहृद थे और उनका स्नेह मेरे पर निरन्तर बना रहा। कुशल समाजशास्त्री होने के साथ–साथ वे अग्रसोची भी थे। मौन साधक के रूप में बहुत विद्यारत थे। भारतीय वांगमय में साधु–पुरुष के जो लक्षण कहे गये हैं, वे सब प्रो0 जुयाल में परिलक्षित थे। उच्च आदर्श के अनुयायी और अलौकिक बुद्धि, मेधा और प्रतिभा सम्पन्न प्रो0 जुयाल ने अपना जीवन अधिकांश समय शिक्षा, समाज और भारतीय संस्कृति के उन्नयन में व्यतीत किया। वे अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर परोपकार के लिये तत्पर रहते थे।

समाजशास्त्री होने के कारण उन्होंने समाजशास्त्र से सम्बन्धित जिन विषयों पर लेखन किया वे पुस्तकें आज एक स्वस्थ नीति और दिशा–नियामक और उत्कृष्ट कोटि की हैं। उनके कार्य आने वाले लोगों के लिए प्रेरणास्त्रोत बन सकें, इसलिए समय–समय पर उनके आलेखों का पुनर्प्रकाशन, संगोष्ठियों का संचालन इत्यादि होना चाहिए। यह कार्य समाजशास्त्र के विद्वानों द्वारा सम्पन्न हो तो गौरवपूर्ण होगा। प्रो0 जुयाल के अनेक शिष्य देश के विभिन्न अंचलों एवं विदेशों मे भी उच्च पदस्थ हैं। उन सभी से मैं यह अपेक्षा रख सकता हूँ।

प्रो0 जुयाल अवकाश प्राप्ति के पश्चात् निरन्तर लेखन करते हुए अपने कार्यक्षेत्र में अप्रतिम योगदान देते रहे। ऐसे विद्या और विनय के मनीषी को कोटिशः नमन!

शुभम भवतु!

श्रद्धेय जुयाल जी : जैसा मैंने जाना

प्रो0 जितेन्द्र नाथ मिश्र
प्रधान संपादक, सोच विचार, वाराणसी

अपने अभिन्न मित्र डॉ0 गौरी शंकर दुबे से मिलने कभी–कभी राजघाट स्थित गांधी विद्या संस्थान में जाना होता था। कभी–कभी उन्हीं के माध्यम से निमंत्रण मिलता तो वहाँ होने वाली महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों में सम्मिलित होने का सुयोग मिल जाता। इन्हीं प्रसंगों में चार–छह बार श्रद्धेय जुयाल जी से प्रारंभिक परिचय का बानक सन् 70 के आस– पास कभी बना। वे स्वभावतः मितभाषी थे। किसी ने परिचय करा दिया तो सहज प्रसन्न भाव से अभिवादन का उत्तर देते हुए पार्श्व में या सामने आसीन होने का आमंत्रण देते तथा उतनी ही बातें करते जितना बहुत आवश्यक होता। मसलन, कहिये कैसे आना हुआ?चाय तो लेंगे?आदि। उनकी ओर से बतबढ़ाव का अवसर बहुत कम दिखलाई पड़ता था। हाँ, आपने देश– काल–समाज से जुड़ी कोई जिज्ञासा रख दी तो वे बहुत नपे–तुले शब्दों में अपने विचार रखते थे। इसमें भी वे सामने वाले को प्रतिवाद का पूरा अवसर देते थे। बीच में रुक कर वे पूछते थे – ठीक है न?आप इससे सहमत तो हैं? मेरा यह दृष्टिकोण है, बताइये आप इस विषय में क्या सोचते हैं।

इस रीति से वे प्रश्न आमंत्रित करते थे। वे विद्वान थे लेकिन उनकी विद्वता किसी को आतंकित नहीं करती थी। इसका कारण यह था कि वे स्वयं को एक सामान्य आदमी से भिन्न नहीं मानते थे। ऐसे निरभिमानी विद्वान बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं। वे साधारण से साधारण आदमी के साथ उसके स्तर पर बात कर लेते थे तथा जानने और सीखने की कोई बात अगर उससे मिल सकती थी तो उसे ग्रहण करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत रहते थे। आदमी वह और आदमी मैं, तो भेद

कैसा?जो कुछ वह जानता है वह मुझे कहाँ मालूम है? मैं उसे कुछ बता सकता हूँ तो वह भी मुझे बहुत कुछ बता सकता है। एक अदम्य जिज्ञासा का भाव उनकी आँखों में अनायास दिखलाई पड़ता था। ज्ञान और अनुभव से समृद्ध आँखों में ऐसा आमंत्रण का भाव कम ही दिखलाई पड़ता है। सांसारिक दृष्टि से बुद्धिमान विद्वान बहुत समझ बूझकर मेल–जोल बढ़ाते हैं। कितने तो ऐसे मिलेंगे जो अपने निकटतम पड़ोसियों को भी नहीं जानना और पहचानना चाहते। वे मानते हैं कि इन्हें एकबार लिफ्ट दिया तो ये प्रायः बैठकखाने में डट जायेंगे और लिखने–पढ़ने में बाधक बनेंगे। इसलिये दूर–दूर से दण्डवत प्रणाम भर का सम्बन्ध उनको पर्याप्त लगता है।

जुयालजी इस मनोवृत्ति को अवांछित मानते थे। उनका विचार था कि पुस्तकों को पढ़ना जितना जरूरी है, उससे कहीं अधिक जरूरी है आदमियों को पढ़ना। पुस्तकों के द्वारा हम समाज की दशा, मनोदशा, भाव, अभाव तथा विभिन्न वर्गों की स्थिति–परिस्थिति के आँकड़ों को एकत्रित कर सकते हैं किन्तु उनकी यथार्थ स्थिति का ज्ञान तो उनके बीच रहकर ही हो सकता है। यह भी है कि उनके बीच रहने के लिए विद्वत्ता का चोला उतारकर कुछ समय के लिए परे रखना होगा। उनके साथ समानता के स्तर पर व्यवहार करते हुए उनके जैसा बनना पड़ेगा। तभी और केवल तभी उनकी जिन्दगी के पन्नों पर लिखी इबारत का अर्थ समझने की पात्रता प्राप्त हो सकती है।

मैं नहीं जानता कि उनका लिखा हुआ कितना प्रकाशित है। जो कुछ प्रकाशित है उसे भी विधिवत् पढ़ने का मुझे अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। वैसे साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते उनका लेखन प्रत्यक्षतः मेरे अध्ययनक्षेत्र से सम्बन्धित भी नहीं है किन्तु उनके दो–तीन लेख यत्र–तत्र पढ़ने में आये। उनके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे जमीनी सच्चाइयों को महत्त्व

देने वाले समाजवैज्ञानिक थे। उन्होंने किताबें पढ़कर गरीबों और समाज के पिछड़े हुए लोगों के विषय में नहीं जाना था। उनका अध्ययन प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित था। उसमें दिखावटी सहानुभूति नहीं बल्कि मानवताप्रेरित समता का वास्तविक दर्शन है।

मैं अनुमान करता हूँ कि उनका लेखन बहुत अधिक परिमाण में उपलब्ध भी नहीं होगा। वे पेशेवर लेखक नहीं थे। मान–प्रतिष्ठा और अर्थ प्राप्ति के लिए लेखन उनके स्वभाव में था ही नहीं। वे तभी लिखते थे जब उन्हें लगता था कि उनका लेखन जनहित की दृष्टि से सार्थक है। इसलिए यह आवश्यक है कि उनके द्वारा लिखित जो भी सामग्री उपलब्ध हो उसका प्रकाशन किया जाय। निश्चय ही उसके द्वारा अध्ययन एवं अनुसंधान की स्वस्थ प्रविधि का निदर्शन प्राप्त होगा।

जुयालजी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अत्यन्त विनयशील थे। अभिमान का लेशमात्र स्पर्श उनमें नहीं था। विद्या और विनय के संयोग की मूर्ति थे वे। मुझे याद है कि एक लम्बे अन्तराल के बाद उस दिन पराड़कर स्मृति भवन के वार्ताकक्ष में वे उपस्थित थे। जमापूँजी चार–पाँच बार की औपचारिक एवं संक्षिप्त मुलाकात थी। लम्बे अन्तराल के बाद अवस्थाजन्य शारीरिक परिवर्तनों के कारण परस्पर पहचान संभव नहीं थी। मैं उनकी बगल में ही बैठा हुआ था। अवस्था की दृष्टि से वे मेरे आदरणीय थे और इस भाव से मैं थोड़े संकोच का अनुभव कर रहा था। जब तक वे अपनी ओर से कुछ न कहें, मैं उनके साथ क्या बात करता?सामने बैठे दूसरे लोगों से सामान्य वार्तालाप चल रहा था। गोष्ठी प्रारम्भ होने में अभी कुछ विलंब था, इस कारण कुछ बोलते बतियाते समय काटना था। बीच–बीच में मैं उनकी ओर देख लेता था कि कहीं हम लोगों की वार्ता से उन्हें कोई व्यवधान तो नहीं हो रहा है?लेकिन मैंने देखा कि वे हमारे वार्तालाप में पूरा रस ले रहे

थे। इतना ही नहीं अपने प्रति सहज आत्मीयता ही नहीं, सम्मान का भाव भी उनकी आँखों में मुझे स्पष्ट दीख पड़ा। अपने से छोटों के प्रति स्नेह ही नहीं, सम्मान जैसा यह भाव जो उस दिन मैनें उनके भीतर देखा वह कम दिखलाई पड़ता है। मुझे लगता है कि शायद वे किसी को 'तुम' कहकर संबोधित करना जानते ही नहीं थे। हर किसी के लिए 'आप' ही संभवतः उनकी जुबान पर चढ़ा हुआ था। उसी दिन मैंने यह भी देखा कि वे अद्‌भुत श्रोता थे। वक्ता बहुत मिलते हैं किन्तु अच्छे श्रोता कम मिलते हैं। पहुँचा हुआ विद्वान एवं अच्छा वक्ता होते हुए कोई बहुत अच्छा श्रोता भी हो, यह तो बहुत दुर्लभ है। जुयाल जी मेरी दृष्टि में ऐसे ही थे।

कुछ ही देर में व्यवस्था से खाली होकर श्री अम्बिका प्रसाद गौड़ वहाँ आ गये जिनकी पुस्तक का विमोचन था। उन्होंने परिचय कराया – आप प्रो0 जुयाल जी हैं – मेरे ससुर। इतना सुनते ही मैंने दुबारा उनको प्रणाम करते हुए इस बात के लिए खेद व्यक्त किया कि पहले तीन–चार मुलाकातों के बावजूद मैं उन्हें पहचान नहीं पाया। उन्होंने सहजता के साथ आश्वस्त किया – भाई, एक लम्बे अंतराल के बाद मिलने पर ऐसा होता ही है। मैं ही आपको कहाँ पहचान पाया। उस दिन ही संभवतः उन्हें अंतिम बार सुनने का अवसर मिला। बहुत नपे–तुले शब्दों में दिल की बात उन्होंने कही, जिसका प्रभाव अनोखा था।

जैसा मैंने कहा, उनके साथ मेरा संपर्क बहुत सीमित था किन्तु वे ऐसे व्यक्ति थे जो दर्शन मात्र से इस तरह भावित एवं प्रभावित करते थे कि उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। ऐसे स्मरणीय व्यक्तित्व की पुण्यस्मृति को कोटिशः प्रणाम।

वह बहुआयामी व्यक्तित्व

प्रो0 धर्मराज यादव
गाँधी विद्या संस्थान

जुयाल साहब गांधी विद्या संस्थान की शुरुआत में ही आ गये थे। मैं तो 1968 में आया। इसके बाद 25–30 वर्षों का सम्बन्ध रहा। जुयाल साहब बहु आयामी प्रतिभा के धनी थे और उनका जीवन भी बहु आयामी था। संस्थान, मूलतः एक शोध संस्थान था, शोसल साइंसेज का, लेकिन शोध के साथ–साथ, जुयाल साहब के क्रिया कलाप बड़े व्यापक थे। जय प्रकाश नारायण, विनोवा भावे या अन्य ग्राम दानी आन्दोलन शोध संस्थान से शुरू होते थे और उन्हीं का अध्ययन यहां किया जाता था। और जुयाल साहब उन सारी क्रियाओं से सम्बन्धित थे, चाहे वह ग्रामदान हो, या जयप्रकाश जी का आन्दोलन या शोध, इस तरह हर क्रिया कलाप। जुयाल साहब एक नेक एवं साफ दिल व जिन्दादिल इंसान थे। साथ ही बेबाक वक्ता भी। किसी के साथ दुर्भाव नहीं, सबके साथ प्रेम भाव था। खासकर सहकर्मियों के साथ मित्रवत् भाव था, मैं वैसे दूसरे विषय का शोधार्थी था परन्तु मुझे अक्सर जुयाल साहब के साथ काम करने का मौका मिलता रहता था। जुयाल साहब को हर तरह के समस्यापरक कार्यों में रूचि भी, चाहे वह भूदान या ग्रामदान हो या जे0पी0 आन्दोलन हो, रिसर्च का काम हो या अन्य क्रियाकलाप सब में अग्रणी रहते थे तभी तो देवभूमि उत्तराखण्ड के ग्रामीण पहाड़ी अंचल से सफर तय करते हुए काशी क्षेत्र में अपनी बौधिक दुनिया या कर्मस्थली बनायी। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित होकर ही जय प्रकाश नारायण से समर्थ क्रान्तिकारी नेता ने अपना सबसे प्रिय शागिर्द बनाया, जिसको जुयाल साहब ने अन्त तक निभाया,

चाहे वह 1976 का तख्तापलट आन्दोलन हो या वर्तमान संघर्ष हो, गांधीयन इन्ट्रीट्यूट का अस्तित्व बचाने का। जुयाल साहब अपने सहकर्मियों की मदद हेतु हर जगह जाते थे और हर स्थिति में मददगार भी होते थे। मैं यह तो नहीं कह सकता कि वह गांधीवादी थे लेकिन उनके अन्दर भी 'गांधीयन स्प्रिट' हुआ करती थी। जुयाल साहब की पहुंच केवल सामाजिक विज्ञानों में ही नहीं, बल्कि अन्य कई विषयों की भी उन्हें गजब की जानकारी थी। मैंनें तो जुयाल साहब को जवानी से देख रहा था और बुढ़ापे तक जो जज्बा उनमें था वह अन्यत्र नहीं देखने को मिलता। सबसे बड़ी बात तो यह कि उनके बारे में कभी संस्थान में कोई शिकायत नहीं आयी थी। शायद ऐसे वह पहले व्यक्ति थे जिनमें कमी निकलना बहुत मुश्किल होता था। मै भी, उनके साथ डकैत समर्पण, गाजीपुर प्रोजेक्ट में साथ रहता था। एकबार एक बोस साहब थे जो जुयाल साहब के सहकर्मी थे। वह घायल हो गये तो जुयाल साहब उनको हॉस्पिटल ले गये और इलाज कराया। इस तरह वे अपने शहर (बनारस) में एक अप्रतिम स्थान बना पाये थे। ऐसे महापुरुष को सादर नमन्।

प्रो0 बी0 एन0 जुयाल स्मृति व्याख्यान
पराड़कर भवन, वाराणसी

मेरे पापा

डॉ0 रूपाली जुयाल गौड़ (पाली)

मेरा जन्म सातवें माह में ही हो गया था इसलिए काफी कमजोर थी और बचने की उम्मीद भी कम थी। काफी लम्बे समय तक रूई के फाके से बूंद–बूंद दूध पिलाया जाता था और सवेरे ही नहला– धुलाकर सुबह 10 से शाम 4 बजे तक धूप में सुला दिया जाता था। हमें नहलाने–धुलाने और दूध या दवा का सारा काम पापा ही किया करते थे क्योंकि उनको डर था कि अगर हम छोड़कर चले जायेंगे तो मेरी माँ को बहुत तकलीफ होगी। इसलिए वो मेरी माँ को मेरा काम कम करने देते थे। जब तक हम पूरी तरह संभल पाते तब तक पापा ने ही मेरा ख्याल रखा। बीच–बीच में मेरी तबीयत ज्यादा खराब हो जाती थी। तेज बुखार होने पर आँखें पलट जाती थीं और बिल्कुल शांत पड़ जाती थी। ऐसे में पापा तक 2–3 बार खबर पहुँची कि शायद अब हम नहीं रहे। पापा अपने ऑफिस से जो कि 8–10 मिनट की दूरी पर था, भाग कर पहुँच जाते थे, और फिर हम धीरे–धीरे ठीक हो जाते थे। बाद में भी अक्सर हमें बहुत तेज बुखार हो जाता था और हम हमेशा एक ही सपना देखते थे कि कमरे की छत के कोने पर कोई बहुत जोर–जोर से हमें देख कर हँस रहा है और छत धीरे–धीरे नीचे की तरफ गिरती जा रही है और फिर हम भी दब जायेंगे। ऐसा हमने पापा को कई बार कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं यहाँ बैठा हूँ और अगर वो छत गिरी हम इसे रोक लेंगे, तुम सो जाओ। ऐसा कहने पर हम चैन से सो जाते थे और जब नींद खुलती तो पापा सदा ही मेरी बगल में बैठे मिलते थे। वो हमें छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। सामान्य दिनों में भी हम हमेशा उनके पैरों पर सिर रखकर ही सोया करती थी और वे बैठकर पेपर पढ़ा

करते थे और जब हम गहरी नींद सो जाते थे तो ही उठकर जाया करते थे।

माँ से तो हम सभी डरते थे क्योंकि वो थोड़ी सख्ती दिखाती थीं। अगर हमें अपनी बात मनवानी हो तो हमेशा पापा का ही सहारा लिया करते थे। माँ जब कभी डांटा करती थीं तो पापा हमेशा हमें बचाने के लिए खड़े हो जाते थे और कहा करते थे कि हमें डांट लो पर बच्चों को कुछ मत कहो, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरे बच्चों को वो मिले, जो बचपन में हमें खाने को मिलती थी।

पापा ने हमेशा ही बहुत प्यार दिया। कभी भी दिल नहीं दुखाया। ऐसा नहीं था कि केवल हम बच्चों का ही नहीं, माँ का दिल भी कभी नहीं दुखाया। माँ की मेरे नाना, नानी और मौसियों के प्रति जो भी जिम्मेदारी थी उसको पूरा करने में कभी रुकावट नहीं बने। बल्कि उनको पूरा करने में मेरी माँ का हमेशा ही साथ दिया। कभी भी उनको माँ से ऊँची आवाज में बात करते नहीं देखा या सुना। पापा का व्यवहार हम सब घर वालों के अलावा भी किसी से बुरा नहीं होता था। हमेशा ही सब की मदद किया करते थे। बातें भी बच्चों के साथ बच्चों जैसी और बड़ों के साथ बड़ों की तरह ही किया करते थे।

पापा कभी परेशान हैं या कोई तकलीफ है, ऐसा उनके व्यवहार से पता नहीं चलता था और ना ही वो कभी कुछ बताया करते थे, माँ से या किसी से भी। 1986 की बात है, पापा जब सवेरे सो के उठे तो देखा कि उनकी एक आँख बहुत लाल है। आँखों में खून की नसें दिखाई दे रही थीं। उनको जब डॉक्टर को दिखाया गया तो पता चला कि BP / Hypertension की वजह से ये आँख में हो गया है। इस वाकये ने हम सभी को हिला कर रख दिया और मुझमें उनको खो देने का डर बैठ गया। शादी के बाद भी हम पापा के पास ही रहे क्योंकि तब तक हम पी0एच0डी0 पूरी नहीं कर पाये थे। उसी दौरान मेरे

बेटे यानि काकू का जन्म भी सितम्बर 2001 में हुआ। उसके बाद उनका सारा ध्यान उसकी तरफ केन्द्रित हो गया। हम जब प्रोजेक्ट के काम के सिलसिले में बी0एच0यू0 जाया करते थे तो पापा ही काकू का ध्यान रखते थे। अगर कभी भी हम बोलें कि क्या हम उसको नहला कर या खिला कर जाएं तो हमेशा यही कहा करते कि क्या मैं उसका ठीक से ध्यान नहीं रखता। 3–3.5 साल का होते ही वो रात में भी मम्मी और पापा के पास सोने लगा। पापा खुद दिन भर चंपक पढ़ते और रात में उसको ढेर सारी कहानियाँ सुनाया करते थे। मेरी माँ बोला करती थी कि कभी उसको हमलोगों के पास भी सोने दिया करो। अगर ऐसा कभी होता भी तो पापा ठीक सोने से पहले हमारे कमरे में आते और कहते कि क्या एक बार अपने नाना से गले भी नहीं मिलोगे और ऐसा कहते ही काकू दौड़ कर उनके गले लगता और वह कहता कि कभी और वो हम दोनों के पास सोयेगा और ये कहकर वहाँ से चला जाता। उसके बाद वो हमेशा ही उनके साथ ही रहा। पापा शाम को अक्सर काकू को कंधे पर बैठा कर कॉलोनी में घूमने निकल जाया करते थे। अक्सर वो दोनों डॉ0 साहब (यानि डॉ0 एल0 वी0 भावे) के घर जाया करते थे। पापा को डॉ0 साहब से बातें करना बहुत अच्छा लगता था और मेरा बेटा बचपन से उनकी पत्नी को डॉ0 भाभी बुलाया करता था, उनके किचन में जाकर मस्ती से खा पी कर आया करता था। अपने घर में वो खाने–पीने में हमेशा ही हम सबको परेशान किया करता था। धीरे–धीरे डॉ0 साहब के परिवार से हम सभी का स्नेह बढ़ता गया और हम कभी भी बीमार होते तो हमेशा उन्हीं के पास पहुँच जाते। वैसे तो पापा की दवा दूसरे डॉक्टरों से होती थी पर सच पूछो तो मेरे पापा का खयाल उन्होंने ही रखा था। वो मेरे पापा के स्वभाव व परेशानियों और बीमारी को बहुत अच्छे से समझते थे। पापा को hypertension अक्सर हो जाता था। कभी आँख

से लाल डोरे तो कभी कभार नाक से खून आने लगता था। डॉ0 साहब इस कठिन परिस्थिति में भी सब कुछ संभाल लेते थे। हम हमेशा पापा को ये कहा करते थे कि आप और मम्मी आज हमारे साथ हैं, ये सब डॉ0 साहब के कारण ही है। वर्ना पता नहीं हम सब कब के बिखर जाते।

हम अक्सर पापा को सेहत के प्रति लापरवाही के कारण डांटा करते थे। 20 जनवरी 2013 की दोपहर काफी ठण्डी हवा चल रही थी और पापा बाहर बिना गरम कपड़े के घूम रहे थे। इस बात के लिए डांटा तो कहने लगे कि हमको कब तक चतमेमतअम करके रखोगी। हमने कहा, जबतक हो सकेगा। वो बोले, जाओ हमको कुछ नहीं होगा। पर अगली सुबह हम सभी का सब कुछ खो गया। पापा की आवाज चली गयी और दाएं हाथ–पैर ने काम करना बन्द कर दिया। पापा 2013, 4 फरवरी तक हॉस्पिटल में रहे, थोड़ा ठीक होकर घर वापस आए अपनी जीवटता के कारण ही अगले 20–25 दिनों में वो धीरे–धीरे अपने पैरों पर खड़े होकर चलने लगे। 21 जनवरी के बाद हमने अपने पापा को कभी अकेले नहीं छोड़ा। हमेशा उनके सिरहाने ये सोचकर बैठी रहती कि अगर उनको तकलीफ होगी तो वो हमको कैसे बतायेंगे। रात–रात भर जग कर उनको एक टक निहारा करती।

आज तक भगवान का ये न्याय हमको समझ नहीं आया कि उन्होंने मेरे पापा की आवाज और लिखने की क्षमता क्यों छीन लीं। वे दोनों ही तो उनके हथियार थे। अगर उनके पास इन दोनों में से कुछ भी रहता तो वो आज हमारे साथ हमारे पास होते। इस तरह से टूट कर बिखर ना जाते। पापा की मौत ने हम सबको बहुत कुछ सिखा दिया। जैसे किसी के चले जाने के बाद सूनापन, दुःख, तकलीफ और बहुत कुछ।

एक बात वो हमेशा कहा करते थे कि जब काकू को असली में मेरी जरूरत होगी तो मैं उसके पास ना रहूँगा। और इस

बीच उन्होंने उसको अपने चले जाने के बारे में कब तैयार किया ये हमें पता नहीं। इसका ऐहसास हमको तब हुआ जब उसने अपने विचार पापा के चले जाने के बाद उनकी शोक सभा में रखे। उसने कहा कि नानू ने बताया कि मेरा शरीर नश्वर है और आत्मा अजर–अमर। इसलिए जब मैं नहीं रहूँगा तो भी मेरी आत्मा तुम्हारे आस–पास होगी और जब तुम मुझको याद करके रोओगे तो हमें बड़ा दुःख होगा। मेरी आत्मा सदा ही तुम्हारे पास होगी, वो तुमको कभी छोड़कर नहीं जाएगी। तब से लेकर आज का दिन है वो फिर कभी नहीं रोया। काफी मामलों में वो आज भी बिल्कुल पापा जैसा है, उसकी लिखने–पढ़ने की आदत, लोगों से मिलना–जुलना और मदद करना आदि।

पत्नी शीला एवं पुत्री रूपाली के साथ

जिन्दगी के कुछ यादगार पल : प्रो0 जुयाल के साथ

डॉ0 अनिल कुमार तिवारी
पी0 डी0 एफ0, भूगोल विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सन् 2009, अक्टूबर महीने की शुरुआत में मैं भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध में पंजीकृत हुआ। उस समय छात्रावास उपलब्ध न होने के कारण विश्वविद्यालय के बाहर कमरा लेना पड़ा। पहले शुरुआती एक–डेढ़ महीने तो हम (मैं और मेरे मित्र डॉ0 लोकपति त्रिपाठी जी) औरंगाबाद में रहे, लेकिन विश्वविद्यालय से दूरी ज्यादा होने के कारण जल्द ही हमें कमरा नगवां (लंका) क्षेत्र में लेना पड़ा, जो कि अस्सी नाला से बिल्कुल सटा हुआ, एक बैंककर्मी का मकान था। चूँकि, हमारे पास पानी के प्यूरीफिकेशन का कोई साधन नहीं था और और इलाके का पानी सीधे पीने के लायक नहीं है अतः मुझे जल्द ही पीलिया का शिकार होना पड़ा। काफी इलाज जो कि बी0एच0यू0 के छात्र स्वास्थ्य संकुल में चल रहा था, के बाद भी जब कोई विशेष राहत नहीं हुई, तो रूपाली जुयाल (दीदी, जुयाल अंकल की बेटी) ने मुझे एक पीलिया की झाड़–फूंक करने वाली एक बुढ़िया से मिलाया और खुद ले जाकर कराया भी और मैं पहली बार दीदी के घर गया। मुझे पहले से ही मालूम था कि दीदी के पिताजी (प्रो0 जुयाल) एक उच्च कोटि के विद्वान हैं और काफी पहुँचे हुए भी। फिर भी अंकल जी ने मेरा हालचाल पूछा और मुझे चाय की जगह एक ग्रीन टी (जो मैं सिर्फ उन्हीं को पीते हुए देखा था और वो उसे खुद ही बनाते भी थे) पिलाई। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतना बड़ा आदमी और इतनी सादगी!

वैसे मैंने अंकल जी की उम्र का अंदाजा 60–65 वर्ष लगाया था अपने मन में। परन्तु बाद में पता चला कि वह 1991 से सेवानिवृत्त हैं। बाद में मुझे उसी कॉलोनी में कमरा लेकर रहने का मौका मिला, फरवरी 2010 से। तब से लगभग हर रोज परिवार में मिलना–जुलना शुरू हुआ जो कि अब तक चल रहा है और मुझे कभी लगता नहीं कि अपने परिवार से दूर हूँ। मैंने देखा कि जब कोई घर आता था तो अंकल जी उसे जरूर चाय पिलाते थे।

प्रो0 जुयाल के सम्बन्ध में मैंने कुछ विशेषताओं का अवलोकन किया वह यह कि मैंने अंकल जी को कभी क्रोध करते हुए नहीं देखा, वह चाहे कोई भी हो और न ही कभी किसी के सम्बन्ध में अपशब्द बोलते हुए। उनकी नजर में कोई ऊँच–नीच या जाति–पाँति का भेदभाव नहीं था। मैंने उन्हें जिस प्रकार बड़े से बड़े प्रोफेसरों से बातें करते देखा ठीक उसी तरह वे छोटे से छोटे आदमी से भी बातें करते थे। चाहे वह कोई विद्यार्थी हो या घर में काम करने वाले मजदूर हों। प्रो0 जुयाल एक बहुत ही दयालु किस्म के महामानव थे जिनको मैंने खुद कई ऐसे परिवारों की मदद करते हुए देखा है जो उनके बहुत खास महत्व के नहीं होते थे।

प्रो0 जुयाल की कुछ खास पसन्द जैसे अच्छे कपड़े एवं जूते एवं चप्पल तथा इन सबसे खास एलोवेरा की क्रीम जो वह अक्सर लगाते थे। उनके चलने की अदा, वह घर के पीछे वाले खेत में घूमना शाम के समय, हर समय विधिवत ड्रेसिंग आज भी मुझे याद आती है। अंकल जी के घर के चारों तरफ गमले एवं अन्य ढेर सारे पौधे हैं जिनको वह खुद अपने हाथ से पानी देते थे, यहाँ तक कि मैंने उन्हें कई बार घर के पीछे वाले खेत में उस उम्र तक काम करते देखा है।

जिस तरह अंकल जी दिल से अच्छे थे उसी तरह उनका व्यवहार भी। पूरी कॉलोनी में हर व्यक्ति उनकी बहुत इज्जत

करता था जो आज भी बरकरार है। आज भी अगर आप जुयाल साहब के परिचित हैं तो लोग अनुमान लगा लेते हैं कि यह शरीफ ही होगा। जैसा कि मुझे ही ले लो, कहीं पर भी कॉलोनी में इतना बताना काफी होता है कि मैं उनके घर से घनिष्ठ हूँ और किसी परिचय की जरूरत नहीं होती।

जहां तक पढ़ने–लिखने या ज्ञान की बात की जाय तो मैंने पहली बार किसी घर में इतनी ढेर सारी किताबें देखी हैं वह भी उच्च कोटि की। इतनी सारी किताबों से तो एक लघु स्तरीय महाविद्यालय या संस्थान चलते हैं। पता चला वह सारी किताबें प्रो0 जुयाल पढ़ते हैं या पढ़ चुके हैं। उनमें सबसे ज्यादा किताबें समाज विज्ञान, क्षेत्रीय अध्ययन और मार्क्सवाद से सम्बन्धित हैं। उनके उस संग्रह में वे किताबें देखने को मिल जाएंगी जो शायद किसी साधारण विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में न उपलब्ध हों। इसके अलावा ढेर सारे हस्तलिखित लेख, मैगजीन एवं विभिन्न भाषाओं के शब्दकोष भी हैं। सबसे खास बात कि उनमें ज्यादातर (लगभग 95 प्रतिशत) किताबें अंग्रेजी में हैं। जुयाल अंकल को हिन्दी की जानकारी तो थी ही क्योंकि वह तो मातृभाषा थी लेकिन उससे ज्यादा वह अंग्रेजी के जानकार थे। मुझे ऐसा लगता है कि वे सोचते भी अंग्रेजी में ही थे। एक बार की बात है, मुझे पी0एच0डी0 में "Relevance of Study" लिखना था, जो कि मेरी समझ के बाहर की चीज थी और वह भी अंग्रेजी में! और मैंने अपने शोध के सन्दर्भ में अंकल जी से कई बार बात कर चुका था, और काफी कुछ सीखा भी था। कारण उनका कार्यक्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश भी था और मेरी शोधकार्य भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के चीनी उद्योग पर था। अतः मैंने फैसला किया कि क्यों न यह "शोध का महत्व (Relevance of Study)" अंकल जी से लिखवा लूं। सो पहुंच गया जुयाल अंकल की शरण में। अंकल जी ने मुझे एक से डेढ़ पेज में लिखकर दे दिया कि जाकर टाइप कर

लो। वैसे तो मुझे एक–एक अक्षर देखकर टाईप करना पड़ा क्योंकि अधिकतर शब्द तो मैं पहली बार देख रहा था। येन–केन–प्रकारेण, टाइप करके अंकल जी को दिखाकर अपने शोध निर्देशक (प्रो0 शर्मा) को दिखाया तो वह बोले कि यह तुमने नहीं लिखा है। या तो किसी जगह से चोरी किये हो या किसी अच्छे अंग्रेजी के जानकार से लिखवाये हो, खैर मैंने बता दिया। बाद में मेरे गुरुजी भी अंकल जी से मिले एवं प्रभावित भी हुए। बाद में वह सरल भाषा में लिखा गया। वह पन्ना आज भी मेरे पास होगा, जिसके अधिकतर शब्द मैं आज तक नहीं समझ पाया, इतनी क्लिष्ट अंग्रेजी! इसके बाद मैं अंकल जी से अक्सर अंग्रेजी पूछने जाया करता था और वही काम अब जीजाजी के साथ (डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़, जुयाल साहब के दामाद) करना पड़ता है। जुयाल अंकल को कम्प्यूटर सीखने का बड़ा शौक था, वह मुझसे अक्सर हंसकर कहते थे कि तुम मुझे कम्प्यूटर सिखा दो, मुझसे अंग्रेजी सीख लो। वह टाइप करना जानते थे। इस उम्र में भी सीखने की जो ललक मैंने प्रो0 जुयाल में देखी, वह तो नवयुवकों में भी बहुत कम देखने को मिलती है। मैंने देखा है कि अंकल जी से किसी भी शब्द का अर्थ पूछा गया तो वह जरूर जानते थे। यानि अंग्रेजी के शब्दकोष थे वह।

प्रो0 जुयाल को समाज विज्ञान की अथाह जानकारी थी। वे सन् 2010 – 2013 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में "समाज कार्य" के विद्यार्थियों की कक्षाएं भी पढ़ाते थे। कभी–कभार मैं भी स्कूटर से अंकल जी को विभाग में पहुंचाता था। विभाग के विद्यार्थियों के बीच प्रो0 जुयाल काफी लोकप्रिय थे। तभी तो कुछ विद्यार्थी घर पर भी आ जाते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें ग्रामीण विकास, जनजातीय अध्ययन में भी अधिक रुचि थी। जहां तक मैंने सुना है कि भदोही जनपद एवं आसपास के इलाके में बाल

मजदूरी प्रथा को खत्म करने का आन्दोलन भी उन्होंने ही चलाया था। ये बाल मजदूर मुख्यतः कालीन उद्योग में काम करते थे। प्रो0 जुयाल 'बचपन बचाओ' आन्दोलन से भी जुड़े थे। इसकी जानकारी मुझे उनके इमेल से पता चला, जो कि अक्सर मुझसे दिखवाते थे। इसके अतिरिक्त, चम्बल के डाकुओं के आत्मसमर्पण में भी उनका भरपूर सहयोग था। मैंने उनकी पुस्तक "Child Labour in Carpet Industry" देखी है जो कि एक प्रकाशित प्रोजेक्ट रिपोर्ट है। उनके इस योगदान को देखते हुए ही "International Justice Mission" (अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक मिशन) की जो मीटिंग मद्रास में हुई उसमें उन्हें एकमात्र समाज विज्ञानी के रूप में एशिया के प्रतिनिधि के तौर पर आमंत्रित किया गया था। उनको एयरपोर्ट तक छोड़ने मैं ही गया था। उनके लौटने पर मैंने उत्सुकतावश उक्त मीटिंग के बारे में चर्चा की तो उन्होंने बताया कि वहाँ एक रिपोर्ट बनानी थी, विश्व के विकासशील देशों में मानवाधिकार की स्थिति के बारे में। उसमें उन्होंने एशिया महाद्वीप का प्रतिनिधित्व किया है।

इसके अतिरिक्त, प्रो0 जुयाल कई बड़े संगठनों या स्वयंसेवी संगठनों (NGOs) से जुड़े थे, जैसे कि 'यू0 पी0 वॉलेन्टियर हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन' एवं अन्य। मुझे याद है कि 2010–2012 के बीच अक्सर झारखण्ड के जनजातीय इलाके में किसी बड़े प्रोजेक्ट के सिलसिले में जाया करते थे। वैसे तो मैंने उनके कई लेक्चर वीडियो देखे हैं परन्तु, प्रत्यक्ष रूप से किसी समस्या पर बोलते हुए मैंने पहली बार अपने ही विभाग (भूगोल विभाग, का0हि0वि0वि0) में देखा एवं सुना। बात सन् 2012 की है। भूगोल विभाग के प्रोफेसर आनन्द प्रकाश मिश्र ने एक सेमिनार आयोजित कराया था जो कि नक्सलवाद की समस्या एवं जनजातीय समस्याओं से सम्बन्धित था। एक शोध छात्र होने के कारण मुझे भी उसमें भाग लेने का अवसर मिला

और प्रो0 जुयाल चेयरपर्सन के रूप में आमंत्रित थे। अंकल जी को घर से मैं ही ले गया था। उस संगोष्ठी में जितने भी वक्ता बोलते थे, प्रो0 जुयाल उनकी हर गलती को पकड़ लेते थे और उसमें क्या उचित होना चाहिये इस पर बहस करते थे। संगोष्ठी में प्रो0 दीपक मलिक, प्रो0 वाघमार जैसे विद्वान थे परन्तु उन्हें भी बार–बार प्रो0 जुयाल के कृत्यों का जिक्र करते हुए मैंने सुना। बाद में अंकल की (प्रो0 जुयाल) का लेक्चर था, जो जनजातीय समस्याओं पर केन्द्रित था। सेमिनार के रिपोर्ट में प्रो0 मिश्रा के अनुरोध पर जुयाल अंकल ने बहुत सारी जानकारी लिखकर दी। इसके अतिरिक्त, बहुत सारे व्यक्तियों को, जो कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे थे चाहे वह सरकारी हों या स्वयं सेवी संस्थाएं, अक्सर अंकल जी से परामर्श लेने आते रहते थे।

सन् 2013 के अन्तिम महीनों में मैं जुयाल अंकल के गाँव गया था, एक प्रोजेक्ट के सर्वे के सिलसिले में जो रूपाली दीदी कर रही थीं। वहाँ पर जाकर एक रावत जी से मिला जिनकी उम्र लगभग 85 वर्ष रही होगी, उन्होंने बताया कि प्रो0 बासवानन्द जुयाल (बी0 एन0 जुयाल) जिनका गाँव का नाम सुन्दरलाल जुयाल था, बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी एवं व्यवहार कुशल एवं शान्तिप्रिय थे। उन्होंने सिर्फ स्कूली शिक्षा अपने गाँव में रहकर (नैरूल, जनपद पौड़ी) पूरी की। इसके बाद किसी को नहीं पता वे कहाँ गये। उसके बाद वे सन् 1964 के करीब दुबारा गाँव गये तब वे गाँधीयन इन्स्टीट्यूट में प्रोफेसर हो चुके थे। विश्वास नहीं होता कि इतने दुर्गम एवं पिछड़े इलाके से चलकर एक व्यक्ति, वह भी अनाथ, इस मुकाम पर पहुँच सकता है। यह वास्तव में एक बहुत ही कठिन यात्रा रही होगी। वैसे, उनका परिवार बनारस में है, परन्तु गाँव में भी इनके भाई का पूरा परिवार, पैतृक घर एवं खेत अभी भी हैं। उन्होंने जिन्दगी में इतने स्थानों पर कार्य

किया, वह भी भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में कि उनका अनुभव उन्हें हर विषय मे पारंगत बना दिया। यह मेरा सौभाग्य ही है कि मुझे भी ऐसे महापुरुष के सान्निध्य में रहने को कुछ दिन मिले जो मेरे जीवन के स्वर्णिम पल हैं। ऐसे हमारे अंकल जी को शत्–शत् नमन्।

मेरे प्यारे नानू

तन्मय गौड़ "काकू"

मुझे आज भी याद है कि जब मैं 12 बजे अपने स्कूल से वापस आया करता था, मेरे मम्मी–पापा अपने–अपने काम पर गए रहते थे। तब आते ही मेरी नानी एक थाली लेकर खड़ी रहती थीं। मैं घंटों तक टी0वी0 देखता था और फिर उन्हीं लोगों के साथ जाकर सो जाता था। शाम को खेलकर आता तो नाना जी तैयार रहते थे। मैं फिर टी0वी0 के सामने सोफे पर लेट जाता और नानाजी कुछ अच्छा पका कर ले आते। रात को फिर वो मुझे कहानी सुनाते और फिर मैं सो जाता।

मैं यहीं पैदा हुआ। बचपन में नानाजी किसी को मुझे हाथ भी नहीं लगाने देते थे। सारे काम ––– नहलाना, घुमाना, देख–भाल करना; वह खुद ही करते थे। वो मेरे लिए खिलौने लाते, किताबें लाते, कपड़े लाते और सारा कुछ खुद ही करते। मुझे कोई डाँट नहीं सकता था। नानाजी के होते किसी के अन्दर हिम्मत नहीं थी। उनके पास दिन में बहुत से काम थे, हमारा खेत देखना, रिपोर्ट लिखना, जो आए उसके लिए चाय बनाना फिर वो दोपहर में कहानियाँ पढ़ते थे, ताकि मुझे रात को सुना सकें। बड़े–बुजुर्गों के साथ एक तरह का औपचारिक बर्ताव रखना पड़ता है, पर उनके साथ ये कभी नहीं था। हमेशा एक दोस्त की तरह साथ में घूमते रहते थे।

उन्होंने मुझे हमेशा सबसे ज्यादा प्यार दिया, जितना कोई अपने बेटों को करे, उससे भी ज्यादा। अगर लोग कहते हैं कि मेरे पास दिमाग है, तो सारा उनका है। वो मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। छोटी–छोटी बातों पर मेरे दुःखी होने पर वो मुझे मनाने की कोशिश करते। मेरी IPL टीम हारती तो वो मुझे ये यकीन दिलाते कि मैच फिक्स है।

जिस दिन मेरे नाना जी की मृत्यु हुई उसके अगले दिन मेरी छठी कक्षा की आखिरी परीक्षा थी। उस दिन मैं सही में रोया, पर सिर्फ 10 मिनट। क्योंकि मुझे एक बात समझ में आ गयी थी कि नानाजी मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे, वो मुझे रोते हुए कैसे देख सकते थे?जब वो मुझे चुप नहीं करा सकते?

मैं उनके पास पैदा हुआ, उनके साथ बड़ा हुआ और मुझे उनका प्यार मिला जिसे मुझे किसी के साथ बाँटना नहीं पड़ा। ये कहाँ होता है?आज भी मुझे उनकी याद आती है, पर मैं रोता नहीं, खुश होता हूँ। मैं भगवान (नियम बनाने वाले) पर यकीन नहीं करता, पर मैं एक नियम पर यकीन करता हूँ कि हर चीज इस दुनिया में निर्धारित है, एक वजह से होती है।

मृत्यु होती है, या तो एक नया जन्म लेने के लिये, और अच्छा, और बेहतर; या फिर ताकि आदमी अपनी पूरी जिंदगी में कमाए हुए दर्द से छुटकारा पा सके।

उनकी कमी आज भी महसूस होती है, पर कुछ चीजों को सहना पड़ता है। या तो आप सारी यादें मिटा दो, या फिर नजरिया बदल दो। दूसरा तरीका बेहतर है।

आज भी लोग उनको याद करके दुःखी होते हैं, तो मुझे अच्छा नहीं लगता।

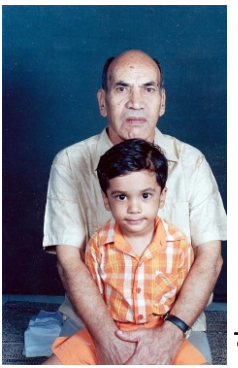

काकू के संग

“लोक गंगा”
के
पृष्ठों से

हरबर्ट मारकूज उत्तरांचल में

❑ बी०एन० जुयाल

पिछली शताब्दी के छठे-सातवें दशक में क्रान्तिकारी विचारधारा में आई नई लहर के एक मुख्य स्रोत हरबर्ट मारकूज को 'कोट' करना अब फैशन के बाहर हो गया है। फिर भी, अपनी स्वतंत्रता की अर्द्ध-शताब्दी बीत जाने के बाद भी वे पूरे तौर पर प्रांसगिक लगते हैं। कुछ भी हो, इस बार मानव अधिकार दिवस के मौके पर देहरादून में उनकी शिद्दत से याद आई, खासकर आधुनिक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था पर उनकी इस टिप्पणी की कि **प्रजातन्त्र शासक वर्ग द्वारा अपना प्रभुत्व बनाए रखने का सबसे समर्थ साधन लगता है। मालिकों के स्वतन्त्र चुनाव होते हैं पर न मालिक समाप्त होता है और न दास।**

(Democracy would appear to be the most efficient means of domination...Free election of masters, does not abolish the master or the slave.)

उस दिन नए राज्य उत्तरांचल की राजधानी में मानव अधिकार पर कई परिचर्चाएँ चल रही थीं, जो यहाँ अनेक अति संवेदनशील और गुँजायमान नागर-समाज-संगठनों के होने का एहसास भी दिला रही थीं। राजधानी से निकलने वाले दैनिकों ने भी मानव अधिकार दिवस से सम्बन्धित समाचारों को उदारता से स्थान दिया था। साफ लगता था कि मानव अधिकार दिवस जोर-शोर से मनाया गया था। बहुत-कुछ अंग्रेजी में 'सेलेब्रेट' के मायने में। सभी वक्तव्यों और संकल्पों का जोर जागरूकता पैदा करने पर था। बुनियादी प्रश्नों को टालने का यह एक आसान सा रास्ता निकल आया है। साथ-साथ उत्तरांचल में कई प्रकार के मानव अधिकार अतिक्रमण के मामले भी गिनाए गए थे और इसका एक खास वजह राज्य-स्तरीय मानव अधिकार आयोग का न होना बताया गया था। एक सहज-सा सवाल उठा कि जैसा दर्शाया गया है, यदि राज्य के 70 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे दबे हुए हैं और भयंकर बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त है। यह तो एक 'नैसर्गिक' स्थिति है मानव अधिकार आयोग इसमें क्या कर लेगा? वैसे भी ऐसे आयोगों को पुलिस की ज्यादतियों की छान-बीन के मामलों से तो फुर्सत मिले, तभी वह सामाजिक-आर्थिक अधिकारों के बारे में कुछ कर सके। गरीबों की कीमत पर एक और सफेद हाथी पालने से क्या होगा? पर शायद व्यावसायिक व्यवहार के लिए किसी वाक-पीठ का होना जरूरी होता है। राज्य स्तरीय मानव अधिकार आयोग के गठन की माँग के लिए सबसे बड़ा तर्क यह था कि "उत्तरांचल में दलितों के मानव अधिकार हनन के किस्से आम है। आज भी दलितों द्वारा जल स्रोतों के प्रयोग पर निषेध है।" और समस्या का कुछ आधुनिक परिवेश में प्रस्तुत करते हुए विज्ञप्ति में आगे कहा गया था "जिससे हरित क्रान्ति के दौर में उन्हें खेतों की सिंचाई के लिए तरसना पड़ता है।" ऊपर, पहाड़ पर 'हरित क्रान्ति' और 'भू-स्वामी दास' दोनों विस्मयकारी परिवर्तन लगे। साथ ही अपने प्रवासी होने का एहसास गहरा गया। खैर, इतना तो पता है कि अब तराई और दून घाटी ही असली उत्तरांचल राज्य है। सीधे यह नहीं कहा गया था कि पेयजल के मामले में आज भी पहले जैसा भेदभाव होता है। कहीं किसी कोने में किसी दलित संगठन द्वारा क्षेत्रीय समाज में अभी तक व्याप्त दास-प्रथा के उन्मूलन की माँग की खबर भी छपी थी।

देश में दलित आन्दोलन की शुरुआत ही सामुदायिक जल-स्रोत और मन्दिर प्रवेश के अधिकार के मुद्दों से हुई थी। लगभग ऐसा ही उत्तराखण्ड में भी हुआ, भले ही 'डोला-पालकी' और 'जनेऊ' सरीखे मुद्दे भी इनसे जुड़ गए हों। पर गुलामदास और डोमाणे आज भी हैं, और 'स्याला' 'डोम' 'डोमड़ा' आज भी सार्वजनिक तौर पर इस्तेमाल होने वाली सामान्य सी गाली है। यह दीगर बात है कि कई गाँवों में डोमाणे खाली हो गए हों। हम कहीं-कहीं, कभी-कभी उन्हें चाचा, ताऊ कहकर पुकारते हैं, इससे दास-प्रथा का दंश कम नहीं होता। इस प्रकार की सफाई देने से बात नहीं बनती। इस संदर्भ में भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए चयन-प्रक्रिया की सबसे ऊपर की सोपान पर पहुँची एक गढ़वाली महिला का अनुभव कुछ झकझोरने का काम कर सकता है। जब वे साक्षात्कार के लिए उपस्थित हुईं तो संयोग से 'पैनल' की अध्यक्षता उत्तर-प्रदेश संवर्ग में उच्च पदस्थ अधिकारी रह चुके एक दलित पृष्ठ-भूमि के सज्जन कर रहे थे। अभ्यर्थी का कुल नाम देखते ही वे इतना समझ गए कि उन्हें ब्राह्मण होना चाहिए। स्वतः ही अध्यक्ष महोदय ने डोम और डोमाणे वाले प्रश्न छेड़ दिए। "परन्तु हमारे यहाँ उनके लिए भी नातेदारी के सम्बोधन प्रयुक्त होते हैं" जैसी मानवशास्त्रीय सफाई अभ्यर्थी को उस परिस्थिति से नहीं उबार सकी। इसके विपरीत 'इसके लिए मैं तो जिम्मेदार नहीं हूँ' कहने से काम चलता क्या? अधिकतर गाँवों में पेयजल के नए स्रोत निर्मित हुए हैं परन्तु जहाँ नल से आपूर्ति होने लगी है, वहाँ भी भेदभव का परम्परागत ढाँचा बना हुआ है, भले ही उसके स्वरूप में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ हो। पिछले 30-40 वर्षों में जौनसारी समाज का रूपान्तरण हुआ है। यह एक अन्य प्रकार की विडम्बना है कि 'क्षेत्र' (समुदाय नहीं) पर आधारित जनजातीय आरक्षण व्यवस्था ने जौनसार में व्याप्त आन्तरिक विषमता के

ऊपर एक खोल सा चढ़ा दिया है और एक उच्च-वर्णीय सयाणा और एक दलित कोल्टा को 'विशेष अवसर' पाने के लिए एक ही कतार में खड़ा कर दिया है। फिर भी कई प्रकार की परम्पराएँ टूटी हैं। पर सामाजिक भेदभाव का पुराना ढाँचा आज भी खड़ा है। बहुत से गाँवों में पानी के नल लग गए हैं पर कोई कोल्टा पहले पानी नहीं भर सकता, और किन्ही गाँवों में तो स्वयं भी नहीं भर सकता। ऐसा भी नहीं है कि दास-प्रथा के कुछ प्रतीकात्मक स्वरूप ही बाकी रह गए हों। बन्धुवा-मजदूरी प्रथा भले ही कागजों पर खत्म हो गई-न जाने कितनी बार पहचान और पुनर्वास सहायता की निकासी हुई होगी-पर वह अब भी प्रचलित है। अगर स्वरूप बदला है तो इतना ही कि श्रम का सीधा सम्बन्ध भले ही न रह गया हो पर बेगार वाला हिस्सा और श्रम सम्बंध को नियंत्रित करने का सामन्ती किस्म का संस्थानिक ढाँचा आज भी बरकरार है। वैसे भी हलिया और हल-बैल प्रायः सभी जगह विलुप्त हो गए और पहाड़ में तो यह ट्रैक्टरों के बगैर हो गया?

यह स्मरण होगा, एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में ही सही, कि उत्तराखण्ड की समतामूलक कृषक-पशुचारी ग्राम्य-समाज (आरकेडिया न सही) वाली छवि को, जिसके आधार पर इसे उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन विधान के बाहर भी रखा गया था, एक बहुत बड़ा आघात तब लगा था, जब सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में चकराता तहसील के गाँवों में बड़े पैमान पर बन्धुवा, (अधिकांश कोल्टा) मजदूरों की पहचान हुई थी। ऐसा भी नहीं कि इस सम्भाग के कुछ अन्य इलाकों में ऐसी ही, या लगभग ऐसी ही प्रथा नहीं थी, परन्तु यहाँ जैसा प्रभावी सामाजिक हस्तक्षेप चुनिन्दा तौर पर ही होता है। यह कुछ और भी 'हाई प्रोफाइल'मामला बना जब राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी भी 'बन्धुआ मुक्ति' के इस कार्यक्रम से जुड़ गयी। यह 'ऐतिहासिक' हस्तक्षेप कई सेमिनारों व कार्यशालाओं में छाया रहा और 'शोकेस' भी हो गया। कह सकते हैं 'ग्रामीण हकदारी' कार्यक्रम के तहत यह भी एक अग्रगामी क्षेत्र रहा है।

कृपया इसे किसी संगठन विशेष से जोड़कर न देखें। ऐसे कितने ही उदाहरण हो सकते हैं। समस्याएँ अपनी जगह रह जाती हैं, इनसे जुड़े बुनियादी मुद्दे बैताल की तरह वहीं लटके रहते हैं, पर मध्यवर्ती पेरोकारी संगठन, प्रमुखतः उनके मुखिया खूब नाम कमाते हैं और कमाते रहते हैं, कई मामलों में एक शौर्य-गाथा के आधार पर। प्रायः हरेक एनजीओ एक 'सकसेस स्टोरी' होता है। वैसे भी जब से इस क्षेत्र में व्यवसायिक प्रबन्धन का प्रभाव बढ़ा है, खाली सफलता की कहानियाँ प्रस्तुत करने का व्यवहार भी बढ़ा है। 'एक्शन रिफ्लेक्शन' का तरीका पुराना पड़ गया है। एन जी ओ की एक और भी विशेषता है। यह एक ऐसा 'सोशल कैटियल' है, जिसका 'कैपिटल' (पूँजी) ही 'सोशल' होता है। पूरा स्वामित्व नहीं तो, नियन्त्रण तो लगभग निजी होता है। प्रतिनिधि चरित्र की बात छोड़िए इसकी साधारण सभा और कार्यकारिणी समितियाँ तो ग्राम सभा और पंचायत से भी अधिक निष्क्रिय होती हैं, जिन्हें सक्रिय बनाना भी एक बड़ा एनजीओ एजेण्डा है।

एक सामान्य सी संकल्पना है कि राज्य और बाजार दो प्राथमिक अधिकार क्षेत्र हैं और जो बाकी स्थान बच जाता है वह नागर-समाज का है और सभी प्रकार के गैर-सरकारी संगठन उसकी संगठित अभिव्यंजना है। एक धारणा है कि राज्य आर्थिक विकास में प्रभावी भूमिका निभाने में असफल रहा है और उसे यह भूमिका निजी क्षेत्र पर छोड़ देना चाहिए और राज्य केवल 'गुड गवर्नेंस' यानि निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने का काम करे। निहितार्थ स्पष्ट है कि जो निजी क्षेत्र के आर्थिक तर्क के अनुसार ठीक कहीं बैठता है वह नागर-समाज के हिस्से में। वास्तव में विश्व बैंक ही नहीं प्रायः सभी अन्तर्राष्ट्रीय दातव्य संस्थाएँ नागर-समाज की परिकल्पना को उदारीकरण की विचारधारा के अंग के रूप में ही प्रसारित करती हैं। यह अकारण नहीं है कि नागर-समाज संगठनों पर कारपोरेट जगत के वैचारिक उपकरण और संस्कृति हावी होती जा रही हैं।

नागर-समाज को समझने का एक और भी उपागम है, 'सिविल सोसायटी' का प्रयोग मूलतः 'पोलिटिकल सोसायटी' उसके मिलिटरी (सैन्य)/अन्य दमन तन्त्र सहित की तुलना में हुआ है। सरल परिकल्पना यह है कि आधुनिक प्रजातान्त्रिक राज्य-व्यवस्था में शासक वर्ग अपने प्रभुत्व (हेजेमनी) को कायम रखने के लिए उत्तरोत्तर 'सिविल सोसायटी' का ज्यादा इस्तेमाल करता है। राज्य की सैन्य शक्ति का उपयोग तभी होता है जब शासक वर्ग को अपने उखड़ने का खतरा हो। सिविल सोसायटी के प्रमुख अंगों के रूप में सभी प्रकार के ऐच्छिक/नागरिक संगठन और मीडिया सबसे महत्वपूर्ण है। वैसे इन दो का अन्तर-सम्बन्ध भी कुछ कम उलझा हुआ नहीं है। सोशल मार्केटिंग के क्षेत्र को ही लें नव-उपनिवेशवाद और उसकी संस्कृति के प्रबल प्रतीक 'पेप्सी' और 'कोला' के विरुद्ध नागर समाज संगठनों का सारा प्रयास धुल सा जाता है। जब रंगीन विज्ञापन में उपभोक्तावाद का कोई थोड़ा "बड़ी प्यास लगी है" या 'ठण्डे का मतलब' भर दोहरा देता है। जो जितनी विरोधाभासी भूमिकाओं में आ सके वह उनका बड़ा प्रोफेशनल है। ऐच्छिक संगठनों के इस्तेमाल की बात शासक वर्ग के हित की दृष्टि से हो रही है। किसी सरकार के पक्ष या विपक्ष की दृष्टि से नहीं। एक सीधा सा सवाल उठता है कि किसी भी नागर समाज संगठन की पहचान का एक गुणात्मक संकेतांक सहयोगी की बात बिल्कुल अलग है। माना जा सकता है प्रजातंत्र और प्रभुत्व के प्रश्न पर वह कहाँ खड़ा है? सहयोगी भूमिका की बात बिल्कुल अलग है।

कुछ पहले 'लोक गंगा' ने गैर-सरकारी संगठनों पर एक बहस चलाने की शुरुआत की थी। स्वामी मुक्तानन्द जी के लेख से कुछ ज्यादा ही धारदार। पर बात आगे बढ़ी नहीं। ऐसे संगठनों की बहुलता वाले संभाग और वह भी जहाँ बहुत से संगठनों की उत्पत्ति जन आन्दोलनों में हुई हो, वहाँ वह बहस ऐसे ही बैठ गई, इसका क्या मतलब हो सकता है? वैसे स्वामी जी को सन्यास में भी साजिश का भय क्यों सताने लगा समझ में नहीं आया। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो सर ए०ओ०ह्यूम भी यही कर रहे थे। वे उपनिवेशी दमन-तन्त्र की सीमा को समझने लगे थे।●

1, महामना पुरी पो.बी. एच.यू. वाराणसी 221005

संस्मरण

गाँधी जी के दाँत : एक संस्मरण यह भी

❑ बी.एन. जुयाल

लोक गंगा (अप्रैल-मई 09) में जैनेन्द्र जी का संस्मरण पढ़ते -पढ़ते गाँधी जी के दान्तों पर ही एक अन्य संस्मरण याद आ गया जिसे मैंने कभी गाँधी जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित 'प्रोफाइल्स आफ गाँधी' नामक स्मारिका में पढ़ा था। सन्दर्भ बिल्कुल जुदा है, यहाँ भय राष्ट्रीय विरासत का हिस्सा बन गई स्मृतियों का अन्तर राष्ट्रीय बाजार में नीलाम होने का नहीं था। परन्तु गाँधी कितने भविष्य दर्शी हो सकते थे इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

संस्मरण श्रीमती वेल्थी होसिंगर फिशर का था और शीर्षक था "ए विशप्स वाइफ एण्ड गाँधी ' उनके पति फ्रेडरिक फिशर लम्बे समय तक कलकत्ता के एंगलिकन विशप थे और समकालीन दीनबन्धु सी.एफ. एण्डरू के साथ गाँधी से प्रभावित अमेरिकी / यूरोपियन पादरियों की मण्डली में थे। फादर फिशर की 1938 में असामयिक मृत्यु हो गई थी और वेल्थी फिशर अमेरिका वापिस चली गई थी।

वेल्थी फिशर लिखतीं हैं कि वे गाँधी जी से अन्तिमबार 15दिसम्बर1947 के दिन चीन से अपने देश अमेरिका वापिस जाते हुए मिली थीं। उन्होंने कहा; जब तुम भारत वापिस आओ तो गाँवों में जाना ,उनकी मदद करना , गाँव ही भारत है।

भारत की विकास यात्रा में रुचि रखने वाले लोगों को साक्षरता आन्दोलन में उनका योगदान याद होना चाहिए।वे 1953 में भारत वापिस आईं और लखनऊ के समीप (तब शहर की बाहरी परिधि) साक्षरता निकेतन की स्थापना की जो भारत ही नहीं अन्य विकासशील देशों के लिए प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में बहुआयामी प्रयोग सिद्ध हुआ। उनके जाने के बाद क्या हुआ यह दूसरी बात है।

एक बार गाँधी जी और विशप फिशर के बीच अहिंसा पर बहस चल रही थी। बीच बहस में गाँधी जी ने विशप फिशर का बाक्सर जैसा मजबूत जबड़ा हाथ में ले लिया और शरारत पूर्ण हँसी के साथ कहा : जरा सोचो , तुम्हारे जैसा 'एक्शन मैन' शान्ति की बात करे। विशप फिशर ने भी तपाक से जवाब दिया : और लोग आप जैसा 'पैसिफिस्ट' जिसके आगे के दो दाँत गायब हों, के बारे में क्या सोचेंगे! ऐसा लगता है जैसे आप किसी दंगे मे शामिल रहे हों।

गाँधी जी फिशर के 'मुँह तोड़' जवाब पर खूब हँसे। परन्तु विषय तुरन्त बहुत गम्भीर हो गया। विशप फिशर गाँधी जी से प्रस्ताव करते आ रहे थे कि वे कभी कलकत्ता आकर उनके डेन्टिस्ट से दाँत लगवा लें, केवल अच्छे दिखने की बात नहीं है दाँत लगवाना उनके स्वास्थ्य के लिए भी जरूरी है।

बात फिर उभर आई, गाँधी जी ने बहुत विनम्रता से उनका प्रस्ताव नकारते हुए कहाः फ्रेंड ! तुम जानते हो कि मैंने संकल्प किया है कि मैं अपने देश के गरीब से गरीब लोगों के स्तर पर ही अपना जीवन यापन करूँगा। मैंने अपना निजी खर्च रोजाना ग्यारह सेंण्टस रखा है। तुम जानते हो कि हमारे निम्न वर्ग के लोग जिन्हे मैं ईश्वर की सन्तान (हरिजन) और अन्य लोग अछूत कहते हैं, कभी भी तुम्हारे डेंटिस्ट की सेवा लेने में समर्थ नहीं होंगे। इसलिए मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता पर तुम्हें अपने दिल की गहराई से धन्यवाद देता हूँ।●

- 1 महामनापुरी, पो.बी.एच.यू. वाराणसी

संस्कृति आकाश बेल नही होती!

❑ प्रो० वी.एन. जुयाल

लोक गंगा' में प्रकाशित जयन्त बन्द्योपाध्याय के आलेख पर श्री जुयाल ने अपना अभिमत प्रकट करने में बहुत देर लगाई। इस बहस में उन्होंने एक भिन्न नजरिये से कुछ मूलभूत प्रश्न उठाये हैं। इसी तरह के कुछ सवाल 'लोकगंगा' के जुलाई 2009 के अंक में 'आँचलिक संस्कृति का प्रश्न' में श्री दिनेश पाठक ने भी उठाये हैं।

'पहाड़ ' एक चौराहे पर खड़ा है। कुछ लोग कृषि आधारित स्वावलम्बी अर्थ व्यवस्था की रूमानी कल्पनाओं की जिद पर अड़े हैं तो दूसरी धारा पर्यटन, ऊर्जा उत्पादन आदि उपक्रमों से पहाड़ और पहाड़वासियों के मालामाल होने के सपनों का हाट सजा रही है। सच है कि पुराना पहाड़ दरक रहा है-समाज, संस्कृति, परिवार, प्रकृति और आर्थिकी, सभी रूपों में नया पहाड़ बनने की प्रक्रिया में है। कैसा होगा हमारा नया पहाड़ ? आइये, बहस को आगे बढ़ायें। **-सम्पादक**

लोकगंगा (अगस्त2007) में डा. जयन्त बंद्योपाध्याय का एक लेख छपा था 'हिमालय की संस्कृतिः उपभोक्तावाद का प्रत्युत्तर ' इस सम्पादकीय टिप्पणी के साथ कि इस पारम्परिक संस्कृति को सुपुष्ट रूप में आधुनिक समाज के सामने एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। तब मुझे लगा था कि इस विषय पर चर्चा अवश्य चलेगी, यह लोक गंगा' के उद्येश्य के अनुरूप ही होता। लेखक ने अलग से उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद सामाजिक आन्दोलनों की जमीन तैयार होने की बात कही थी। मुझे तो लगता है कि पहाड़ और मैदान का द्वन्द्व समाप्त होने के वास्तव में अन्तरवर्ती तलहटी के मैदान में समाहित हो जाने के दूरगामी परिणाम हुए हैं। कभी लखनऊ से आए नियोजन कर्ता पहाड़ के विकास पर बहस करने में घबड़ाते थे। सीधा हमला होता था 'वातानुकूलित कमरों में बैठकर पहाड़ के विकास की बात सोचते हैं।' अब तो देहरादून में ही वातानुकूलित कक्ष बन गये हैं। उत्तराखण्ड सरकार को 'वातानुकूलन' को बढ़ावा देने में कोई गुरेज नहीं है। न तो पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से और न ही उपभोक्तावाद के प्रसार की दृष्टि से, यद्यपि बिजली की इतनी किल्लत है कि 'ऊर्जा प्रदेश' का दावा मजाक का विषय बन गया है। खैर, पहाड़ और मैदान की प्रतिद्वन्द्विता कभी इतनी संकीर्ण भी नहीं थी जितनी कि उक्त लेख में चिपको आन्दोलन के हवाले से बनाई गई है कि यह मैदानी ठेकेदारों के विरुद्ध था। उत्तराखण्ड में वन आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण में वनों के उत्पाद के उपयोग पर स्थानीय लोगों के प्रथम अधिकार की माँग अवश्य उठी थी पर आगे चलकर चिपको आन्दोलन के दौर में। मैं मानता हूँ कि चिपको मुख्य रूप से प्रतिकार का एक तरीका था- पर्यावरण सुरक्षा एक ही मुद्दा मुख्य मुद्दा रह गया था। और ऐसा नहीं कि अन्दर के ठेकेदारों का विरोध नहीं होता। वास्तव में वन आन्दोलन के पहले दौर में ठेकेदारी व्यवस्था का अन्त और उसकी जगह वन श्रमिक सहकारी संघ एक मुख्य माँग थी। खैर, यह लेख का केन्द्रीय मुद्दा नहीं है।

मेरे न लिखने की एक वजह थी, हालाँकि लेख का विषय मुझे भी अच्छा लगा था पर मैं तय नहीं कर पाया कि यह जयन्त का पुराना पहाड़ प्रेम बोल रहा है या पूरे हिमालय क्षेत्र में उनका कई वर्ष का विशद अध्ययन। वे बिगड़ते हिमालयी पर्यावरण के प्रति पहले अन्तरराष्ट्रीय सरोकार 'मैन एण्ड बायोस्फेयर' कार्यक्रम के तहत **unesco** के सौजन्य से स्थापित इन्टरनेशनल सैन्टर फोर इन्टीग्रेटेड माउन्टेन डवलप्मेन्ट (**i c i m o d**) से जुड़े रहे हैं। हाँ, **icimod . icymod** नहीं जैसा कि इस वृहद सरोकार की उपलब्धि से लगता है। मसलन, पहाड़ और तराई के पर्यावरण संगत, संतुलित विकास का प्राथमिक लक्ष्य कुछ उल्टी ही दिशा में भाग गया, यह कमी तो सरकार की है, केन्द्र में तो उम्दा शोध कार्य हुए हैं।

उनके लेख को पढ़कर एक-दो बुनियादी सवाल उठे। उनका यह कथन कि पहाड़ के लोग उपभोक्तावादी वस्तुओं को ललचाई नजरों से देखते हैं-सरसरी तौर पर कुछ विरोधाभासी लगा। ललचाते ही हैं तो फिर कैसी प्रतिकार मूलक संस्कृति ? यह दीगर सवाल है कि कौन नहीं ललचाते ? जिसके पास है वह भी नये ब्रॉड या अद्यतन माडल की लालसा पालते हैं। 'ये दिल माँग मोर' ही बाजारवाद का गुरुमंत्र है, पहाड़ वालों के पास तो अभाव ही अभाव हैं। यह भी एक विशेष ध्यान देने वाली बात है कि उपभोक्तावाद के विरुद्ध या 'नई जीवन शैली' के लिए सामाजिक आन्दोलन भी उन्ही देशों में हुए हैं जिन्होंने उपभोक्तावाद देख लिया था और उससे सचेतन इन्कार करने लगे थे। जैसे नार्वे, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड आदि। यह तो ऐसा लड्डू है जिसे खाये बिना शायद ही कोई पछताया हो।आन्दोलन कारियों ने स्वयं भी इ

मूल्यों को अपनाया और अपनी सरकारों पर भी इन्हें मानने के लिए जोर डाला, जैसे ऊर्जा क्षेत्र में निजी कारों के इस्तेमाल पर। इसका दूसरा सामाजिक पहलू यह भी है कि वे असल में कल्याणकारी राज्य हैं और सामाजिक-आर्थिक विषमता से ग्रस्त नहीं हैं। विषमता ही उपभोक्तावाद के लिए खाद-पानी का काम करती है।

वास्तव में उपभोक्तावाद 'कु विकास' (कु से कुत्सित) याने मॉल डेवलपमेन्ट (**mal development**) का ही आयाम है कि ज्यादा उपभोग करने की क्षमता रखने वाले मध्यमवर्ग (अमेरिकन-यूरोपियन अर्थ में) के विश्वभर में विस्तार करने से आर्थिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है। बस, उनकी उपभोग की ललक बढ़ाते रहो, बाकी तलछट छोड़ो। यदि जरूरी हुआ तो, व्यवस्था बनाये रखने के लिए, उनके लिए सुरक्षा-जाल की बात अलग से सोची जा सकती है।भूख की विभीषिका और मनोरंजन उद्योग दोनों पास-पास बढ़ सकते हैं। इसका एक मंजर कुछ दिन पहले दुनियाभर में खाद्यानों की कीमतें बेतहाशा बढ़ने की वजह के खुलासे के बतौर, जार्ज बुश के प्रशासन से आया था कि गरीब देशों के लोग भी अब कुछ ठीक से खाने लगे हैं। यह बताने की जरूरत नहीं कि दोनों दुनिया के खाने-पीने वाले वर्गों के पेट जुड़े हुए हैं। इस धारा के समाज विश्लेषकों का एक सीधा सा निष्कर्ष है कि नव-दौलतियों की जमात पैदा हो गई, ये अपने उपयोग के स्टेटस में पुराने दौलतमन्दों को पीछे छोड़ देना चाहते हैं। बाजारवाद का गुरुमंत्र भी यही है कि इस 'अन्त-विरोध' को खूब भुनाओ, वस्तुओं और सेवाओं की ऐसी ब्रॉडिंग करो कि लागत मूल्य का कोई अर्थ ही न रह जाय। बस ब्राण्ड लेवल पर ही नजर रहे । बतौर ब्राण्ड एम्बसिडर के उपभोक्तावाद के बड़े से बड़े घोड़े दौड़ाये जायें। महानायक/ नायिकाओं, मेगा स्टार्स, कुछ असली और कुछ मीडिया द्वारा पाये गये। सामान्य उपभोक्ता को यह नहीं लगता कि पेप्सी -कोला पीते एक शॉट देने के लिए ब्राण्ड का हीरो दो करोड़ रुपया लेता है और वह 10-15 रुपये देता है। आम उपभोग के कुछ ऐसे सिंबल गढ़े जाते हैं कि भीषण विषमता में भी समता का आभास होता है। 'ब्राण्ड' का अर्थ ही बदल गया है। यह तो अखबार भी करने लगे हैं। क्यों कि यह एक बड़ी उपलब्धि है इसलिए इसका उल्लेख कर देना चाहिए कि योग टीचर रामदेव ने तो योग की भी 'ब्रॉडिंग' कर डाली है। उनके योग शिविरों में थियेटर की तरह 'ड्रेस सर्कल' 'बाक्स' आदि दर्जे और टिकट होते हैं। शिविरार्थी बड़े गर्व से कहते हैं कि उन्होंने कितने का टिकट लिया था। उपभोक्तावाद क्या है इससे यह समझने में आसानी होगी। एक बात यह भी समझ लें कि ये ही एम्बासेडर 'सोशल मार्केटिंग' में नहीं चलते, मादा भ्रूण हत्या के विरुद्ध उनका सन्देश सिर के ऊपर से निकल जाता है।

खैर, पहाड़ में ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। यहाँ समृद्धि के कोई केन्द्र नहीं उभर रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा बहुत सारे लोग पहाड़ से बाहर सेवा क्षेत्र से जुड़े रहे हैं।यदि कोई निम्न-मध्यम वर्ग भी बन रहा है या कुछ परि-सम्पत्तियाँ बन रही हैं तो वह पहाड़ के बाहर या तराई की संकरी पट्टी के कस्बों में, जो पहाड़ के सभी संसाधनों के लिए निकास द्वार का काम ज्यादा करते हैं। पहाड़ की 'मनिआर्डर इकानामी' की बात तो बहुत होती है पर, यहाँ उतना ही आता है जो पीछे छूट गये लोगों की बुनियादी जरूरतों के लिए जरूरी है।

फिर भी पहाड़ में उपभोक्तावादी मानसिकता तो है-अनिवेशी संस्कृति की देन। हिल स्टेशन में स्थानीय लोग एक तरह के उपभोक्तावाद का प्रदर्शन देखते रहे हैं जो सैलानियों के साथ आता था और वापिस चला जाता था। आमतौर पर इन जगहों पर श्रम और सेवा करने वाले स्थानीय लोगों की ऐसी मानसिकता तो बनती ही थी कि बड़ा खर्च करने वाला बड़ा आदमी होता है। जिस सैलानी ने उसकी पीठ पर या हाथ रिक्शे पर सैर नहीं की वह भी क्या सैलानी? पहाड़ में पैसा आ रहा है हस्तान्तरित आय से ही नहीं सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय से भी। ठेकेदारों का वर्ग उभर गया है। बाजार का खूब विस्तार हो रहा है, ब्राण्डेड वस्तुएँ बिकने लगी हैं। बाजार का 'फ्लो' एक तरफा है, सब आता है, जाता कुछ नहीं सिवाय मानव संसाधनों के। यही प्रव्रजन या पलायन वर्तमान में पहाड़ में विकास का गतिमान भी है। यही विकास के स्वरूप और स्वभाव को भी निर्धारित करता है। जैसे गाँव तक मोटर मार्ग विकास का सबसे बड़ा सूचकाक है। ये ही नौकरी पेशा लोग पहाड़ में परिवर्तन के वाहक भी हैं-खासकर उपभोक्तावादी व्यवहार के। वैसे पहाड़ पर इसके प्रदर्शन के लिए जगह ही कहाँ है। पर विशेषतः विवाहोत्सव पर खर्चे, जिनमें दारु कितना बहता है, शान शौकत का एक पैमाना है, सामाजिक चर्चा के विषय बन गये हैं। आजकल पहाड़ में जिस स्केल पर मंगनी होती है शायद ही कहीं होती हो, और रिवाज भी उलट गये। पहले लड़के वाले लड़की का हाथ माँगने जाते थे अब लड़की वाले याचक बन गये है। और दारु! यह तो पहाड़ में नई तहजीब ला रहा है। इसके एहसास का एक दो निजी अनुभव सुनना चाहेंगे ?

मेरे एक मामा कोटद्वार में बस गये हैं। सूबेदार साहब, दूसरे विश्वयुद्ध के 'वेटरन' हैं। परम्परावादी भी हैं, बहिन -भान्जे के रिश्ते का बहुत सम्मान करते हैं। कोटद्वार में ट्रेन और बस के बीच के समय में आते-जाते उनको भी मिल लेता हूँ। एक दफा कुछ ज्यादा भावुक हो गये, 'मेरे बच्चों और तेरे बच्चों में कोई

सम्बन्ध रहेगा या नहीं मैं नहीं जानता, पर जब तक मैं हूँ...ऐसे ही देखा-देखी के लिए आते रहो।' मैं लौटती बार उनके पास ठहर गया, शाम को पूछने लगे 'तुम कुछ लोगे ?' मैं जोर से हँस पड़ा। 'हँस क्या रहे हो ?' **मैंने कहा 'पहाड़ सचमुच ही बदल गया। मामा -भान्जे को पूछ रहा ह तुम कुछ लोगों? कहने लगे, 'तुम नहीं जानते ,यहाँ पूछो नहीं तो लोग कहते हैं-मेरी खातिरदारी नहीं हुई।'**

आज के पहाड़ी समुदाय और समाज को समझने के लिए प्रव्रजन ही सबसे महत्वपूर्ण **variable** है, इसी के मार्फत उपभोग के स्तर में कुछ अप्रत्यक्ष असामान्यताएँ भी आई हैं। किसी भी गाँव में दो प्रकार के परिवारों के रहन-सहन के स्तर में अन्तर देखा जा सकता है-एक वे जिनके कोई सदस्य बाहर काम करते हैं और नियमित रूप से घर रुपये भेजते हैं और दूसरे वे जिनकी इस प्रकार की हस्तान्तरित आय नहीं है। यहाँ तक कि इन घरों के पुरुष भी घर का काम -काज करते देखे जा सकते हैं। अभी तक तो कम से कम पुराने लोगों में यह नैतिक मान्यता कायम है कि 'सपूत' वही है जो पीछे घर भी देखता है। अब तो यह भी फालतू सी बात लगने लगी है।

मेरे पहाड़ में 'विकास' की एक उलटबाँसी सी एक लोकोक्ति प्रचलित थी जो इधर नहीं सुनाई देती, अर्थहीन जो हो गई है। 'करणी का मारी दल घी मा खाणि', घी में खाने में क्या किस्मत की मार हो सकती है, यह मसल तभी दी जाती थी जब किसी को कोई वस्तु बाजार से खरीदकर खानी पड़ती थी भले ही उसे अधिक मूल्यवान क्यों न समझा जाता रहा हो।

सामुदायिक स्तर पर समानता थी, हालाँकि जात-पाँत थी, ब्राह्मण अपना हल खुद चलाता और मवेशी खुद चराता था। भूमिहीन कृषि श्रमिक जैसा कोई वर्ग नहीं था -अब भी नहीं है। कृषि-सह -पशुपालन पर आधारित आर्थिकी थी।तकनीकी के नाम पर हल और कुदाल थे और परिवार का आर्थिक स्तर इस बात पर निर्भर करता था कि उसमें काम करने वाले हाथ कितने हैं - प्रत्येक अपनी क्षमता (मुख्यतः शारीरिक) के अनुसार। सामुदायिकता का भाव और व्यवहार भी स्वाभाविक था। कृषि या पशुपालन सम्बन्धी कोई काम इसके बिना हो ही नहीं सकते थे। इनके कई स्वरूप थे, प्रथा में भी, जिनके बारे में आज की पीढ़ी ने सुना भी नहीं है। **शायद जब हम उपभोक्तावाद की प्रतिकारक संस्कृति की कल्पना करते हैं तो उसी पुराने पहाड़ की बात कर रहे होते हैं।**

मेरे अपने गाँव में 1950 तक जितनी जमीन पर खेती होती थी अब उसके दसवें हिस्से पर भी नहीं होती। 'भिंदवाड़' की बात तो दूर अब तो 'सारी' भी बंजर हो गई है। तब करीब 100 परिवार थे अब 30 भी नहीं हैं। गाँव के बीच में कई मकान टूटे पड़े हैं। आटा-चावल सब बाजार से आता है, चक्कियों और ओखलियों का संगीत अब सुनने को नहीं मिलता। अब लोग घराटों के पुनर्निर्माण की बातें करते हैं तो कभी पढ़ी 'लस्यारी ध्वारी' कहानी (शायद सत्यप्रसाद रतूड़ी जी की) याद आती है कि घराट फिर चलने भी लगें तो वे बहुएँ कहाँ से आयेंगी !

इस पीढ़ी में इतना अन्तर तो अवश्य आया है कि एकल पुरुष प्रव्रजन बहुत कम होता है, कम से कम कोई पढ़ी लिखी बहू तो गाँव में रहती नहीं, माध्यमिक स्तर पर ड्राप आउट तो बहुत होते हैं पर वे भी बाहर निकल जाते हैं। अगर कोई पीछे रह गया तो प्रायः उसे टोका जाता है 'अबे घर में पड़े -पड़े क्या कर रहा है ?' अब किसी मकान में 'तिबारी' (बारादरी) बनती ही नहीं, अच्छा हुआ हो या बुरा हुक्का या फरसी नदारद हो गये ,अब लोग मिलते हैं तो अपनी -अपनी जेब से बीड़ी निकालते हैं। हाँ इतना जरूर हुआ है कि गाँव में स्वतः ही 'ईको -रेस्टोरेशन ' हो गया, फ्लोरा फौना वापिस आ गये। पैरा-पैरी (**landslid**) पड़ने बन्द हो गये, ऐसा लगता है नियोजित प्रव्रजन पर्यावरण संरक्षण का प्रभावी कार्यक्रम हो सकता है।

'बाहर कमाओ और यहाँ समाओ' यह जुमला अक्सर सुनाई देता है खासकर कमाने वालों के मुँह से। छुट्टी पर घर आये शायद किसी को ही काम-काज में हाथ बंटाते देखा जायेगा। ज्यादातर यही कोसते रहते हैं कि यहाँ क्या रखा है ! आप बाहर क्या करते हैं, कितना कमाते हैं यहाँ उसका अन्दाजा इसी से लगता है कि आप खर्चा कितना करते हैं। आपका स्टेटस ही उपभोग के स्तर पर बनता है। घर के लोग उनकी 'उतरन' इस्तेमाल करते हैं, हालाँकि यही नहीं नये कपड़े-लत्ते भी पहनते हैं। और स्थानीय बाजारों में दुनिया भर के डुप्लिकेट ब्राण्ड भी देखने को मिलेंगे।

संस्कृति क्या है? संस्कृति का उत्पादन पद्धति से क्या सम्बन्ध है? कभी इस विषय पर बहुत बहस होती थी, इतना तो जरूर है कि संस्कृति आकाश बेल सी नहीं होती, अगर होती है तो पेड़ को ही सुखा देगी। बुनियादी सवाल तो यह है कि क्या पहाड़ को उत्पादकों का समाज बनाये बिना -जाहिर सी बात है कि अगर 'टूरिज्म ' को पहाड़ के विकास का इंजन बनायेंगे तो उपभोक्तावाद, दोयम ही सही, आएगा ही- पहाड़ की अपनी संस्कृति के बारे में सोचा जा सकता है? यह भी सही है कि समय की सुई को जबर्दस्ती पीछे नहीं खींचा जा सकता। पुरानी अर्थ -व्यवस्था का उसी स्वावलम्बी स्तर पर पुनर्निर्माण नहीं हो सकता।●

आलेख

ऐसे हैं उत्तर प्रदेश के 'हार्डकोर' नक्सली गाँव!

❑ प्रो. बी.एन. जुयाल

उत्तर प्रदेश पुलिस के वर्गीकरण (या ब्रॉडिंग ?) के अनुसार लौवारी (प्रखण्ड नौगढ़, जनपद चन्दौली) एक 'हार्डकोर' यानी खाँटी नक्सली गाँव है और यहाँ का रामवृक्ष कोल एक 'हार्डकोर' नक्सली। 3 दिसम्बर 2009 के अखबारों में खबर आयी कि दुर्दान्त, पचास-हजारी नक्सली कमाण्डर रामवृक्ष कोल, नक्सली गुटों के आपसी संघर्ष में सोनभद्र के एक जंगल में मारा गया। मैंने सोचा एक बड़ा वृक्ष गिरा है तो उसकी अपनी जमीन तो हिली ही होगी। पर 5 दिसम्बर के दिन लौवारी बिल्कुल सामान्य-सा लगा।

मैं पहले भी इस गाँव में आया था। तब लोग गाँव में हुई नक्सली घटना और रामवृक्ष के परिवार के बारे में बहुत सुस्पष्ट तो नहीं, पर खुलकर बात कर रहे थे। पर इस बार डर के मारे मुँह खोलने को तैयार नहीं थे। संयोग से उसी वक्त उधर सड़क पर एक आदमी की लाश पीछे लादकर एक पुलिस जीप गुजरी। लोग उसी के बारे में बात करते रहे। बताया कि शमशेरपुर क्षेत्र के एक नामी ठाकुर-प्रबल गाँव और 2000-01 के दौरान (प्रसंग से भाजपा के राजनाथ सिंह के मुख्यमन्त्री रहते) 'सल्वा जुडुम' की तर्ज पर बनी 'राम सेना' के केन्द्र के पास के दलित पुरवे के एक व्यक्ति की लाश है जो पिछले दिन कुछ अज्ञात व्यक्तियों द्वारा मार दिया गया था। नौगढ़, बिहार सीमा पर स्थित होने के कारण पशुओं की चोरी और तस्करी का संक्रमण-क्षेत्र रहा है। इस धन्धे पर क्षेत्र के दबंगों की पकड़ रही है। मारा गया आदमी कभी उन्हीं का प्यादा था पर इधर वह खुद भी यह धन्धा करने लगा था। औकात दिखाने के इरादे से ही मारा गया होगा। कहने का आशय यह है कि यहाँ नक्सल और दस्यु-दलों की गतिविधियों में काफी घात-मेल रहा है।

लौवारी खुर्द और कलाँ चकिया (तहसील मुख्यालय) नौगढ़ मार्ग पर चन्द्रप्रभा पुलिस चौकी के पास ही सड़क के बगल में बसे हैं। पिछली जनगणना पर कलाँ में 35 और खुर्द में 59 परिवार थे। उसके बाद के वर्षों में कुछ गाँव छोड़कर चले गए। आज लगभग 100 परिवार होंगे। यह मुख्यतः कोलों की बसान्त है, जो पड़ौसी राज्यों में अनुसूचित जनजाति और उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति (याने) पुराने (?) अछूतों) में शुमार हैं। उनके मौखिक इतिहास के अनुसार उनके पूर्वज लगभग चार पीढ़ी पहले नीचे चकिया मैदान से निकलकर ऊपर पहाड़ पर जंगल के बीच जमीन तोड़कर बस गए थे क्योंकि बनारस राज ने उनके द्वारा की जा रही काश्त पर उनकी सामर्थ्य से अधिक लगान लगा दिया था। कालान्तर में कुछ अन्य लोग भी यहाँ बस गए जिनमें से कुछ यादव, बनिया और चौहान (नोनिया) परिवार हैं; उच्च जातियों का एक भी नहीं।

लगभग 1950 तक वनाच्छादित नौगढ़, काशी नरेश की शिकारगाह था। बाद के वर्षों में नौगढ़ तेजी से बसा। इसमें 'प्राकृतिक चुनाव' (डारविनियन अर्थ में) की प्रक्रिया भी चली। नौगढ़ का उत्तरपूर्वी भाग पहाड़ी, पथरीला और ऊबड़-खाबड़ है। नीचे छोटी-छोटी घाटियों में जो उपजाऊ जमीन थी, वह चन्द्रप्रभा, औराटाण्ड आदि बन्धों में समा गई है। सामान्य ढाल दक्षिण-पश्चिम की ओर है। यह भाग मैदानी और उपजाऊ है। पहले भाग में जंगलों के बीच प्रमुखतः कोलों की बस्तियाँ थी। दूसरे भाग में जमींदारी व्यवस्था समाप्त होते-होते राजदरबार में पहुँच रखनेवालों ने अपने नाम से बड़े-बड़े पट्टे लिखवा लिए। संक्रमण काल में बहुत सारे अवैध कब्जे भी हुए। आज भी ऐसे गाँव हैं जिनमें सारी जमीन एक ही परिवार के नाम है। यहाँ गाँवों की भौतिक संरचना पूर्वी उत्तर प्रदेश के सामान्य गाँवों जैसी ही है। इनमें भी कोल और अन्य दलित हैं पर पूर्णतः भूमिहीन या लगभग भूमिहीन कृषि श्रमिकों की हैसियत में।

पूर्वांचल में सामाजिक लामबन्दी की प्रक्रिया यहाँ भी प्रतिबिम्बित होती है। यदि साठ के दशक तक अधिकाँश कब्जे, कानूनी या गैरकानूनी, ब्राह्मण, ठाकुर आदि बड़ी जातियों के लोगों ने किए, तो बाद के वर्षों में मध्य वर्ग की जातियों के, खासकर यादवों ने। 'जंगल' विभाग के कर्मचारियों ने अवैध कब्जे दर्ज कर खूब मलाई काटी। इसके लिए प्रदेश सरकार ने भी दरवाजा खोल दिया था। ग्राम समाज की जमीनों को 'प्रबन्धन' के लिए वन विभाग को सौंप दिया गया था। उनका सीमांकन आज भी नहीं हुआ है। लगभग सभी गाँवों में 'नक्सली' पैदा होने की जड़ ऐसी ही जमीन में है। लौवारी में भी।

जनगणना (2001) पर गाँव की 79 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति थी। भूमि वितरण में थोड़ी असमानता है, पर वह भी गरीबी के वितरण जैसी। गाँव में 8-9 परिवार ही हैं। वे भी ज्यादातर बाहर से आए हुए हैं। पिछली जनगणना पर 94 परिवारों में काश्तकारी में केवल 24 'मुख्य', कर्मिक बाकी 78 'सीमान्त' कर्मिक थे। ऐसे तंग ढाँचे में कृषि श्रमिकों के लिए कोई जगह नहीं

है। अधिकाँश लोग नीचे चकिया मैदान में खेती में या निर्माण-कार्यों में अनियमित मजदूरी पर निर्भर हैं। गाँव के 57% परिवारों की मासिक आय रु. 500-1500 के बीच याने लगभग सभी गरीबी-रेखा के नीचे दबे हुए। गाँव की अच्छी जमीन साठ के दशक में बने चन्द्रप्रभा बाँध ने लील ली। विस्थापित लोग ऊपर आकर बस गए। गाँव के 25-30 परिवार आज भी ऐसी जमीन पर बसे हैं जिस पर जंगल विभाग का दावा है।

गाँव में जमीन को लेकर कोई आपसी विवाद नहीं था। यदि सामूहिक या वैयक्तिक स्तर पर कोई विवाद था तो जंगल विभाग से। गाँव में लगभग 73 बीघे बेनाप जमीन खाली पड़ी थी। 'खाली' पड़ी थी मतलब जंगल विभाग भी उसका कोई उपयोग नहीं कर रहा था। लौवारी एक जुड़वाँ गाँव है, खुर्द और कलाँ। दोनों के बीच में एक नाला है। कलाँ नीचे हैं, उक्त जमीन भी नीचे ही थी। इस नाले पर एक एनजीओ ने नब्बे के दशक के अन्तिम चरण में, एक बन्धी का निर्माण करवा दिया था। इस कारण भी इस जमीन की उपयोगिता बढ़ गई थी। कलाँ में रहने वाले पूर्व पंचायत प्रधान रामजी कोल की जानकारी में यह जमीन असल में 'ग्राम सभा' की थी। (सन् 1961 में प्रदेश सरकार ने इस सम्भाग में पंचायतों को ग्राम सभा की जमीनों को वन-विभाग को हस्तांतरित करने का आदेश दिया था।) उनकी अगुवाई में गाँव वालों ने इस जमीन पर कब्जा करने का इरादा किया। उन दिनों यह भी खबर उड़ी थी कि ग्राम सभा की जमीनें पंचायतों को वापस होंगी। यह तो पता नहीं इस निर्णय में कितनी सामूहिकता थी पर जमीन कैसे बँटेगी इस पर कोई पूर्व निर्णय नहीं लिया गया था। लोगों ने अपनी-अपनी शक्ति और साधन के हिसाब से जमीन पर कब्जे जमा दिए। शायद रामजी कोल की 'गोल' ने अधिक जमीन घेर दी। कुछ लोगों को शँका थी कि वे सारी जमीन हड़पना चाहते थे। कुछ लोग समान विवरण चाहते थे। कलाँ वालों का यह भी तर्क था कि वास्तव में जमीन उनके गाँव की हो।

इस तरह गाँव खुर्द और कलाँ के आधार पर बँट गया। विवाद चलता रहा पर कोई संघर्ष नहीं हुआ। इस दौर में गाँव में किसी नक्सली ग्रुप का आना-जाना था। स्थानीय स्तर पर नक्सल 'आन्दोलन' का एक जातीय पक्ष भी था। 'हिट लिस्ट' में अधिकतर कोल ही थे। उनकी इन गाँवों में रिश्तेदारियाँ भी थी। गाँववालों का कहना है कि नक्सलियों ने जमीन के विवाद में कोई पक्ष नहीं लिया बल्कि वे समझौता करने और मिल-जुल कर रहने की सलाह देते रहे। उन्होंने कुछ पंचायत भी की।

सन् 2002 में एक घटना ने सारा परिदृश्य बदल दिया। गाँव का रामऔतार कोल पुलिस मुठभेड़ में मारा गया। 'खूंखार' नक्सलियों में उसका नाम नहीं था। वर्तमान प्रधान और कई लोगों का तो कहना है कि उस पर नक्सलियों से साठ-गाँठ का मुकदमा चल रहा था और पुलिस के उत्पीड़न से तंग आकर, बहुत से लोग डर के मारे गाँव छोड़कर, सुकृत मिर्जापुर की तरफ गिट्टी तोड़ने में लग गये थे। वह किसी मुकदमें की तारीख पर कोर्ट में हाजिर हुआ था और पुलिस ने पकड़कर उसका 'इनकॉण्टर' कर दिया। उस दौर में गाँव में विकास कार्यों में सक्रिय एक एनजीओ अधिकारी का कहना है कि रामऔतार बहुत सीधा और मिलनसार आदमी था। उनके सारे निर्माण कार्य गाँव के ही श्रम पर आधारित थे और उसमें 50 रु. रोजाना मजदूरी मिलती थी। रामऔतार हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए कार्यस्थल पर आता था। कभी नपाई वगैरह में मदद भी कर देता था। कभी यह नहीं लगा कि उसका राहत या 'कल्याण' कार्यों से किसी प्रकार का वैचारिक विरोध था। पर कहता था कि गिट्टी का काम उससे नहीं होगा। कुछ लोग इशारों में ही उलाहना भी देते थे कि उन्हें नक्सली सौ रु. रोज का काम देते हैं। ऐसा लगता है कि उनका आस-पास के गाँवों के कुछ नक्सलियों से सम्पर्क रहा होगा और वह उन्हें जरूरत पड़ने पर जंगलों में कुछ रसद पहुँचा देता था।

नक्सलियों को शक हुआ कि रामऔतार के खिलाफ मुखबिरी का काम पूर्व प्रधान के लोगों ने किया है। जमीन के विवाद में नक्सली उनके खिलाफ हो गए और वे अधिक जमीन कब्जा करने वालों पर अपना कब्जा छोड़ने का दबाव बनाने लगे। पर वे नक्सलियों का निर्णय मानने के लिए तैयार नहीं हुए। रामऔतार की तेरहीं के ठीक तीन दिन बाद रामऔतार के भाई रामवृक्ष ने कुछ नक्सलियों के साथ रामजी कोल, उसके जवान बेटे और एक अन्य व्यक्ति को गोलियों से भून दिया। रामवृक्ष भी उनके साथ फरार हो गया। वह पहले चन्द्रप्रभा पुलिस चौकी पर 'फॉलोवर' था। ('फॉलोवर' यानी अर्दली, वह सरकारी मुलाजिम जो पुलिस अफसरों की निजी चाकरी करता है। प्रत्येक अफसर को उनके ओहदे के हिसाब से 2, 4, 6, 8 'फॉलोवर' मिलते हैं। शायद यह पुलिस की सामन्ती मानसिकता को बनाए रखने में सहायक होता है।)

गाँववाले बताते हैं 'रामऔतार का बड़ा परिवार था, सारा बिखर गया।' उसके रामवृक्ष के अलावा दो और भाई थे। एक भाई और बड़ा बेटा आज भी मिर्जापुर जेल में बन्द हैं। दूसरा लापता है। उसके परिवार के अलावा कई लोगों ने गाँव छोड़ दिया। पुलिस ने सारे गाँव पर ही कहर ढा दिया था। घरों के खपरैल तोड़ दिए। बहुत सारे लोग पकड़े गए। जो डर के मारे भाग गए थे उन्हें फरार घोषित कर दिया और उन पर जिन्दा या मुर्दा पकड़ने पर इनाम रख दिया। कई नक्सलियों से साँठ-गाँठ के मुकदमे लाद लिये गए जो

आज भी चल रहे हैं। उधर जंगल विभाग ने गाँव वालों द्वारा बड़ी मेहनत से तोड़ी गई जमीन पर कब्जा कर लिया। तुरत-फुरत वनीकरण भी कर डाला। जमीन साफ करने और तोड़ने का काम दो-ढाई वर्ष चला, जंगलवाले आँखें मूँदे रहे। उनको भी एक अवसर मिल गया। वैसे भी अपनी जमींदारी बचाने के लिए जंगल विभाग नक्सल विरोधी मुहिम पुलिस से ज्यादा मुस्तैद रहा है। इस समय (दिसम्बर '90) में भी विभाग समीप के दूसरे 'हार्डकोर' नक्सली गाँव हिनौत में जमीन, साथ में रास्ता भी घेरने में लगा हुआ है। गाँव में 'नक्सलवाद' का कोई प्रभाव नजर नहीं आता। यद्यपि सारा गाँव दलित मजदूर किसानों का है फिर भी लोग जातिवादी भाषा ही बोलते हैं। बात-व्यवहार में जरा भी वर्ग चेतना नहीं झलकती। यादव अपने को जमीन के मुद्दे से अलग करते हैं। असल में भूमि अधिकार के मुद्दे पर कुछ हुआ ही नहीं। कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि व्यर्थ में खून-खराबा हुआ। यहाँ तक कि जंगल विभाग के कब्जे से जमीन मुक्त करने के मामले में कोई उल्लेखनीय पहल नहीं हो सकी। हाँ, इतना तो लोग मानते हैं, सड़क और बिजली की सुविधा बढ़ी है। वे इतना नहीं समझते कि यह तो 'पुलिसिंग' के लिए भी जरूरी था।

कम से कम उत्तर प्रदेश के नक्सल जोन के हरेक, 'हार्डकोर' हो या 'सॉफ्टकोर', गाँव का यही इतिवृत्त है। क्षेत्र में बाहरी लोगों द्वारा अवैध कब्जों की समस्या है पर मुख्य विवाद जंगल विभाग से ही है और बहुत सारे अवैध कब्जे भी उसी के मार्फत हुए हैं। बहुत सारे कब्जे 40-50 साल पुराने हो चुके हैं, वन अधिकार अधिनियम को लागू करने में यह एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आएगा। इन्हीं तत्वों से नक्सल विरोध में पुलिस को 'जन सहयोग' भी मिलता है। ग्राम सभा की जमीनों के सीमाँकन की आवश्यकता, क्षेत्र में बढ़ रहे राजनैतिक असन्तोष के कारण 30-35 साल पहले भी समझी गई थी, पर इसे नासमझी से हल करने की कोशिश हुई। कम से कम प्रदेश सरकार के सचिवों को तो यह समझ होनी चाहिए थी कि उक्त प्रकार की जमीन का सीमाँकन और उस पर काबिज लोगों के दावों का नियमितीकरण एक साधारण सरकारी आदेश के द्वारा नहीं हो सकता। भूल सुधारने की ढीली-ढाली कोशिश हुई, पर तब तक वन-संरक्षण अधिनियम 1980 आ गया और मामला वहीं अटका रह गया।

अब उत्तर प्रदेश का 'हार्डकोर' नक्सल जोन खामोश है। सरकारी स्रोतों के अनुसार नक्सली सोनभद्र से निकलकर मध्य क्षेत्र में घुस आए हैं। नक्सली लेवल लगाकर जाने-माने नागरिक अधिकार कार्यकर्ता गैंगस्टर में 'धरे' जा रहे हैं। पी.यू.सी.एल. से जुड़े सोना आजाद और विश्वजीत सिंह जेल में माओवादी होने के शक में बन्द हैं। याद आता है जब दुबारा चन्दौली (नौगढ़ सहित) वाराणसी से काटकर अलग जिला बनाया गया था तो मीडिया ने किसको क्या मिलेगा विश्लेषण किया था। चन्दौली के हिस्से में एक आकर्षक 'नक्सल पैकेज' आया था। उत्तरोत्तर यह पैकेज और भी आकर्षक होता गया है। इसलिए भी जिन्न जिन्दा रहेगा।

लेखक जयप्रकाश नारायण द्वारा संस्थापित और वर्तमान में प्रदेश सरकार के कब्जे के 'दी गाँधीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज' वाराणसी जुड़े रहे हैं।●

कविता

❑ केशव शरण

बनारस का शिमला
अच्छा लगता है
इसे बनारस का शिमला कहना
और सुनना
और महसूस करना
नहीं तो यहाँ आता कौन है
सबेरे - शाम
ताड़ी पीने वालों
और खेती-बाड़ी करने
वालों के अलावा
लेकिन जो आता है
उसे अच्छा लगता है
यह विस्तृत टीला
पहाड़ और जंगलनुमा
जिस पर हवा खाते हुए
हरी-भरी घाटी निहारते रहिए
गाते हुए वरुणा के शान्त कछार में।●

एस. 2/564 सिकरौल, वाराणसी 221002
मो0- 09415295137

'लोक गंगा'
को पाठक इण्टरनेट पर भी पढ़ सकते हैं।
www.lokganga.com

स्मृति शेष

तेरा मार्क्स और तेरा गाँधी

❑ वी.एन. जुयाल

जब कॉमरेड गांधियन इस्टिट्यूट में आ धमके!

घटना 1965 की होगी। मैं इसको 'घटना' ही कहूँगा क्योंकि वे कुछ इस अन्दाज में आए जैसे कबूतरों के बीच बाज़। और इसका कुछ इफैक्ट भी छोड़ गए, उस समय ही सही।

मुझे 'गाँधियन इस्टिट्यूट ऑफ स्टडीज' में आए एक ही साल हुआ था। मुझे यहाँ अपनी जगह बनाने में कठिनाई हो रही थी। न तो बनारस का माहौल अच्छा लग रहा था न संस्थान का। संस्था 'साधना केन्द्र' अखिल भारत सर्व सेवा संघ के मुख्यालय परिसर में स्थित थी और इसका पूरा वातावरण गाँधीमय था। परिसर में प्रधानतः दो ही तरह के लोग थे एक तो वे कट्टरपंथी जो कौन कितना गाँधीवादी है इस पर नज़र रखते, दूसरे वे जो स्वयं की साधना से सरोकार रखते। कुल मिलाकर यहाँ गाँधियन होना या दिखना प्रतिष्ठान सम्मत आचरण था। यद्यपि श्री जयप्रकाश नारायण, उस समय संस्था के मानद निदेशक, की कल्पना में संस्था गाँधीवादी आन्दोलन और आधुनिक समाज विज्ञान के मध्य एक सेतु था। संस्था के शोधकर्मियों के लिए गाँधीवाद की समझ होना तो जरूरी था पर गाँधीवाद का यूनिफार्म ओढ़ना जरूरी नहीं था। पर प्रतिष्ठान-व्यवहार में आडम्बर चल सकता था।

साक्षात्कार के समय 'तुम कितना गाँधीवादी' हो यह नहीं पूछा गया, इतना भी नहीं जितना सामान्यतः डी.ए.वी. शिक्षण, संस्थाओं में पूछा जाता था, निरामिष हो? धूम्रपान करते हो इत्यादि। यदि पूछा जाता तो शायद मैं नहीं आता। खादी तो नहीं ही पहनता था, पर सिग्रेट बहुत फूँकता था और सबसे बड़ा सच तो यह था कि मैं 'गाँधीवादी' भी नहीं था, यद्यपि गाँधी विरोधी भी नहीं था।

यह सही है कि मैंने एक समझदार साम्यवादी बनने की कोशिश की थी, स्वाध्याय के द्वारा। इससे पहले देहरादून में था तो पार्टी के अनुषंगी संगठनों की गतिविधियों से खासकर कर्मचारी यूनियनों में सक्रिय था। असल में देहरादून में श्रमिक आन्दोलन तो था नहीं, पार्टी का नेतृत्व भी मध्यम वर्गीय चरित्र का था। इसी से जुड़े एक हादसे से मैं विचलित भी हुआ। वह था 1962 के विधानसभा के चुनाव में वाम-पक्ष के संयुक्त उम्मीदवार और अग्रणी यूनियन नेता एस.सी. दत्ता को हमारी ही यूनियनों के सदस्यों द्वारा वोट न देना। दूसरा था हमारी उत्तरी सीमाओं पर चीनी आक्रमण। अब यह स्पष्ट हो रहा था कि चीन के साथ वार्ता से संघर्ष टालने पर नेहरू के अपने मंत्रिमंडल में ही विरोध था। पर मेरे लिए बुनियादी बात थी चीन की ओर से दी जाने वाली यह दलील कि वह साम्राज्यवादियों के द्वारा खींची गई सरहद को नहीं मानता, यद्यपि अपने पक्ष में वह पुराने साम्राज्यवादी चीन की विस्तृत सीमाओं का तर्क देता जैसे तिब्बत पर नियंत्रण जमाने के पक्ष में।

उस दौर में कम्युनिस्ट पार्टी के दायरों में कामरेड विद्यासागर एक चर्चित व्यक्ति थे। का. केशव धूलिया के साथ जो इलाहाबाद विश्व विद्यालय में झण्डा ऊँचा किए हुए थे, एक दो बार मिला भी था। पर कामरेड विद्यासागर से व्यक्तिगत परिचय नहीं के बराबर था। बाराणसी आया तो मार्क्सवादी साहित्य की गिनी-चुनी दुकानों पर फिर भी मेरा 'डॉसियर' बन गया। कभी कॉ. सांसद ए.के. गोपालन की सभा में देखे गये, कभी कॉ. सांसद रेणु चक्रवर्ती की। फिर 1962 के बाद तो कई लोग बिना वजह कम्युनिस्ट बन गए। उन दिनों कोई नेगी देहरादून में सी.आइ.डी. इंस्पेक्टर हुआ करता था। ब्लेजर पहनते थे। ओडियन सिनेमा और क्वालिटी के इर्द-गिर्द घूमते रहते थे। पहाड़ी लड़के उनसे परिचय होने का दिखावा करते। और वे अधिकतर पहाड़ी लड़कों को ही रिपोर्ट करते। यह भी सही है इन गतिविधियों में उनकी शिरकत अधिक होती।

'डॉसियर' बन गया है, इसका पता दो बार सरकारी विभागों में कैडर पोस्ट पर नियुक्ति के समय पुलिस प्रमाणीकरण की प्रक्रिया से चला। इसका इस्तेमाल एक बार मैने भी किया। मेरे एक निकट सम्बन्धी को लगा एक बिना माँ-बाप का लड़का (मैं उन्हें प्राइमरी पाठशाला लाँगने के पहले ही खो चुका था) अपने पैरों पर खड़ा हो गया है, इस पर इतना उपकार कर दिया जाय कि इसकी शादी रचा दी जाय। एक पटवारी जी के साथ उनकी बेटी का रिश्ता भी कर दिया। कुछ प्रलोभन भी थे। एक ही सन्तान है, ऊपर डांडें में सुन्दर सुरम्य स्थान पर घर है, नया-नया सेब का बगीचा लगाया है। एक दिन मैं उनके गाँव बारात में गया था तो मुझे टहलाने के बहाने पटवारी जी के घर तक भी ले गए। लड़की को आवाज़ दी कि बीड़ी जलाने के लिए माचिस ले आओ। लड़की चिमटे पर एक अंगार लाई और सामने फर्श पर फेंककर रसोई मे चली गई। उन्होंने नीचे बैठकर बीड़ी जलाई और चलते-चलते कहा 'अब तो तुमने लड़की भी देख ली।' ये सज्जन मेरे एक चाचाजी के ससुर लगते थे। मै कहना चाहता था आपकी गलेदारी मेरे साथ नहीं चलेगी पर कह नहीं पाया। मुझे इस खेल में एक चाल सूझी। मैने सोचा लड़की का बाप पटवारी है। इनकों भी कम्युनिस्टों पर नजर रखने और रिपोर्ट करने के आदेश मिले होंगे। मैने उन्हे एक चिट्ठी लिख डाली कि सब कुछ ठीक है पर मेरा फर्ज़ बनता है कि आपको बता दूँ कि मेरा नाम आपके खुफिया विभाग में कम्युनिस्टो में शुमार है। कहानी का इसी के साथ अन्त भी हो गया। साम्यवादी

आन्दोलन की विभिन्न धाराओं से जुड़े अनेक छात्रों और राजनैतिक कर्मियों से परिचय हो गया। नाम में 'याल' होने की वजह से अक्सर पूछा जाता 'विद्यासागर नौटियाल को जानते हो क्या?' तब तक उन्होंने बनारस छोड़ दिया था, परन्तु उनकी बी.एच.यू. की छात्र यूनियन का साहसिक नेतृत्व का जिक्र किया जाता, जैसे कि किस तरह उन्होंने प्रदेश के राज्यपाल को कार से नीचे उतारकर सड़क पर पैदल चलने के लिए मजबूर किया था ताकि वे स्वयं सड़क की बदहाली को ज्यादा करीब से देख सकें।

यह तो मुझे पता चल गया था कि का० विद्यासागर बाराणसी आए हैं और बाराणसी जिला कॉन्सिल के मंत्री का० गिरिजेश राय के साथ ठहरे होंगें। पर मैं ऐसी अपेक्षा नहीं कर रहा था कि वे मुझे मिलने गाँधियन इंस्टिट्यूट में आवेंगे। पता नहीं उन दिनों वे कितने पारिवारिक थे। उनकी दो बहिनें बाराणसी में पढ़ रही थी और बूढ़ा केदार की श्रुति राना -अब मिसेज त्रिलोकसिंह धपौला-के काशी विद्यापीठ के परिसर में स्थित घर मे हमारा अक्सर मिलना होता था।

जैसे ही सूचना मिली कि कोई मुझे मिलने आया है, मैं सीढ़ियों की ओर बढ़ा तो देखा कि का० विद्यासागर खड़े हैं। मैने सोचा वही लॉउज मे बैठना ठीक रहेगा। पर वे सोफे पर बैठे नहीं रेलिंग पर पीठ टिकाकर खड़े रहे। तब तक 3-4 और शोधछात्र भी वहाँ आ गए और मेरे एक वरिष्ठ सहयोगी भी जो कुछ-कुछ सिनेटर मैकार्थी के स्थानीय संस्करण थे।

कामरेड ने आते ही गोली दाग दी, 'गाँधी पर क्या शोध होना बाकी है। हाँ, किसी ने अभी तक यह शोध नहीं किया है कि गाँधी के मरने के बाद उनकी बकरी कहाँ गई? उसका क्या हुआ? उसका वंश अभी चल रहा है क्या?

कामरेड का इतना कहना था कि मेरे ये वरिष्ठ साथी भड़क गए। वे जेपी का अनुसरण करते हुए समाजवादी पार्टी से सर्वोदय में आए थे और संस्थान में इस बूते पर हावी होने की कोशिश भी करते थे और बोलना भी आता था। फिर क्या था "तेरा मार्क्स और तेरा गाँधी शुरु हो गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं एक विकट स्थिति में था। मेरे कामरेड का संस्था और उसके उद्देश्य का इस तरह ट्रिवियलाइजेसन' (तुच्छीकरण)-जो कहा वही नहीं, कहने का अन्दाज और चुटीला था- अनुचित था। पर मैं उनके खिलाफ मोर्चा तो नहीं ले सकता था। आखिरकार वे मुझे मिलने आए थे। वे एक तीखे तेवर वाले कम्युनिस्ट थे और इस लिहाज से मैं उनकी कदर करता था। मेरा बीच में कूदना लाजिमी था।

मैंने अपने वरिष्ठ साथी से ही सीधे सवाल किया, 'आप इतने तैश में क्यों आ गए? अगर मान भी लिया जाए कि का. विद्यासागर ने गम्भीरता से यह बात कही है कि गाँधी की बकरी कहाँ गई? इस पर शोध होना बाकी है तो ऐसा क्या अनर्थ हो गया कि आप शिष्टाचार भी भूल गए। आपने तो पूरे गाँधी वाँगमय को छान मारा है। गाँधी जी के लिए उनकी बकरी की क्या अहमियत थी, आप नहीं समझते क्या?' मैंने गाँधी-जिन्ना की मुलाकात सम्बन्धी घटना का उल्लेख भी कर डाला। उनका पारा थोड़ा नीचे खिसका। मैने उसे और नीचे लाने के मकसद से कहा, हमारे पहाड़ में तो स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में एक सामूहिक गाना गाया जाता था। सुनेंगे? मैने सोचा इससे शायद वातावरण हल्का हो जाये।

"रहने दो रहने दो" वें वहाँ से तेजी से उठकर चले गए। मेरे कम्युनिस्ट कनेक्शन का सबूत जो मिल गया था। मैं उन्हें सुनाना चाहता था, बाद मे एक दिन सुनाया भीः

'महात्मा गाँधी बड़ भागी च देश सेवा कु अनुरागी च तीन आना रोज यो खाँदुच दूध बकरी को वो पींदू च।'

कामरेड विद्यासागर भी गुस्से में न सही, खिन्न मन से चले गए। मैं संस्थान के गेट तक उनके साथ गया पर हमारे बीच कोई संवाद शुरु ही नहीं हो पाया।

और मुझे फिर कभी यह मालूम नहीं हो पाया कि वे मुझे मिलने आए थे, या देखने।

इसके बाद साल-दो-साल में उनसे मुलाकात होती रही। टिहरी में चल रहे जन आन्दोलनों में प्रत्यक्ष सर्वोदय कार्यकर्ताओं द्वारा प्रेरित-संचालित उनकी शिरकत बढ़ती रही। यह बस मुद्दा आधारित थी या उनके विचार भी बदले थे, कह नहीं सकता। हम दोनों के बीच लम्बी बात-चीत की कोई भूमिका नहीं बनी। एक बार मै टिहरी में था। वह दिन मुझे इसलिए भी याद है कि तत्कालीन सिंचाई एवं जल संसाधन मन्त्री डॉ. के.एल. राव टिहरी में थे। टिहरी बाँध के लिए सर्वेक्षण हो रहा था। टिहरी के नागरिकों का एक प्रतिनिधि मण्डल केन्द्रीय मंत्री के पास यह प्रस्ताव लेकर गया था कि एक बड़े बाँध की जगह भिलंगना और भागीरथी पर 'अपट्रीन' दो बाँध बनाये जाय। मैं सागर जी को मिलने उनके घर गया था। मैं कामरेड गोविन्द सिंह नेगी के विधानसभा क्षेत्र के कुछ गाँव घूमकर आया था। पार्टी के समाजिक आधार के प्रश्न पर उनसे बात करने का सोचा था। बातचीत का सिलसिला तो नहीं बना पर उनका एक वाक्य मुझे आज भी याद है? 'पुराना दरबार के घर पर मैं बैठा हूँ, दूसरे पर बर्फ सिंह रावत।' मेरे मन मे क्या सवाल आया यह लिखने की जरूरत नहीं है। पर बाद के सालों में कामरेड विद्यासागर में, मैच्युअर भी कह सकते है, बहुत अन्तर लगा। विशेष कर उनके लेखन में। काश उन्हें अच्छा स्वास्थ्य और लम्बी जिन्दगी मिलती।●

1-महामना पुरी, पोस्ट-बीएचयू, वाराणसी

उत्तरांचल के जन जीवन का दर्पण

बी. एन. जुयाल

यह उपन्यास (भवानी सिंह लेखक–अम्बिका प्रसाद गौड) सन 1940 से 1962 के मध्यांतर तक की उत्तरांचली पृष्ठभूमि पर आधारित है। उपन्यास का आरम्भ सन 1940 में बगलौर छावनी से होता है जहाँ हवलदार दर्शन सिंह रावत (जो कि मूलतः पौड़ी गढ़वाल जनपद के रहने वाले थे) एक पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। लड़के का नाम रखा जाता है भवानी सिंह रावत। इस लड़के के जन्म के तीन महीने बाद ही हवलदार दर्शन सिंह की हृदयाघात से मृत्यु हो जाती है। दर्शन सिंह की पत्नी संग्रामी अपनी दो बेटियां–कमला, विमला एवं नवजात बेटे को लेकर अपने गाँव वापस आ जाती है। उपन्यास में उस समय के सामाजिक, प्राकृतिक एवं सामान्य वातावरण को बखूबी चित्रित किया गया है। दादी, माँ एवं बड़ी बहिनों के लाड़–प्यार के कारण भवानी सिंह उद्दण्ड, चंचल एवं मनमौजी हो जाता है जिस कारण संग्रामी को कई बार पास–पड़ोस के लोगों का कोप–भाजन भी होना पड़ता है। उत्तरांचल के दूर दराज के इलाकों में उन दिनों सड़क, विद्यालय, दुकान, बिजली आदि की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। पढ़ाई–लिखाई का प्रचलन होने का तो प्रश्न ही नहीं था। किन्तु बगलौर छावनी में कई वर्ष बिताने के कारण संग्रामी में अपने बेटे को पढ़ाने की तीव्र इच्छा थी। संग्रामी देवी का मायका श्रीनगर (गढ़वाल) के पास ही, अलकनन्दा के उस पार टिहरी गढ़वाल में था। श्रीनगर में उन दिनों एक प्राथमिक विद्यालय भी खुल चुका था। अतः यह निर्णय लिया जाता है कि भवानी सिंह ननिहाल में रहकर ही प्रारम्भिक शिक्षा लेगा। गाँव का ही एक लौहार, फजीतू, भवानी को उसके ननिहाल छोड़ आता है। भवानी सिंह एवं फजीतू लौहार को वहां पैदल जाने में दो दिन लगते है। रास्ते में आने वाली परेशानियों यथा, जंगली जानवरों से सामना, अंग्रेज अफसर की बेगारी, अलकनन्दा में नौका विहार आदि दृश्यों का भी इस उपन्यास में सजीव वर्णन किया गया है साथ ही, गंगा के उद्गम से लेकर, पंचप्रयाग का वर्णन भी उपन्यास में हुआ है।

ननिहाल में नाना–नानी के जीवित रहने तक भवानी को अपनी पढ़ाई में कोई खास परेशानी नहीं झेलनी पड़ी किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उसे मामा –मामी के हाथों जो प्रताड़ना मिलती है, उसका लेखक ने विस्तार से वर्णन किया है। मामा–मामी के साथ रहकर आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद भवानी अपने मास्टर जी के पुत्र भगतराम पटवारी के पास पौड़ी नाम के शहर में आकर आगे की पढ़ाई शुरू करता है। पटवारी जी उसे पुत्रवत स्नेह देने के पक्षधर थे किन्तु उनकी अपनी कर्कशा पत्नी के सामने एक नहीं चलती। वह भवानी से अपने घर का सारा कार्य करवाती तथा उसे ठीक से खाना तक नहीं देती। किन्तु इस सब विषम परिस्थितियों के बावजूद भी भवानी दसवीं कक्षा में पहुंच जाता है उधर संग्रामी देवी अपनी बड़ी बेटी कमला की शादी बड़ी धूमधाम से करती है किन्तु छोटी बेटी विमला एक नेपाली मजदूर के प्रेम में फंसकर अपना सर्वस्व गवां देती है,यहाँ तक की जीवन भी।

विमला के दुर्भाग्यपूर्ण जीवन –चरित्र का बारीकी से वर्णन लेखक ने किया है।

इधर पौड़ी शहर में पढ़ाई कर रहे भवानी की दसवीं की बोर्ड की परीक्षाएँ शुरू होने वाली होती है किन्तु ऐन वक्त पर पटवारी जी की पत्नी द्वारा उसे घर से निकाल दिया जाता है। किसी तरह भवानी हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है। इसी बीच भवानी सिंह को फौज में नौकरी मिल जाती है और वह गढ़वाल राइफल्स

में बतौर एक सिपाही भर्ती हो जाता है जहाँ उसका परिचय सूबेदार जगत सिंह राणा से होता है जो कि बाद में उसके ससुर भी बनते हैं।

भवानी सिंह के ग्राइमरी स्कूल के दिनों के अध्यापक चिन्तामणि की प्रेरणा से वह व्यक्तिगत छात्र के रूप में बारहवीं कक्षा भी उत्तीर्ण कर लेता है और आखिर में स्पेशल सेलेक्शन कोर्स के तहत उसका फौजी बनने का सपना भी साकार होता है।

भारतीय सैन्य अकादमी ,देहरादून में प्रशिक्षण के एक वर्ष के दौरान उसे दो महत्वपूर्ण समाचार मिलते है। पहला यह कि वह एक पुत्र का पिता बन गया है तथा दूसरा यह कि उसे तुरन्त भारत चीन युद्ध (अक्टूबर, 1962) में सम्मिलित होने के लिए नेफा के लिए कूच करना है। अतः भवानी सिंह अपने नवजात पुत्र का मुंह देखे बिना ही सहमा पर लड़ने पहुँच जाता है ,जहाँ तवांग नामक चोटी पर लड़ते हुए उसे वीरगति प्राप्त होती है। युद्ध में अदम्य साहस दिखाते हुए, शत्रु सेना में भयंकर तबाही मचाने वाले भवानी सिंह को मरणोपरांत महावीर चक्र से सम्मानित किया जाता है

उपन्यास के आखिरी अध्यायों में भारत चीन युद्ध के समय की राजनितिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक अल्पदृष्टि एवं राजनीतिक उच्चाकांक्षा को भी विस्तार से वर्णन किया गया है। साथ ही तत्कालीन विरोधी सेनाओं की तुलनात्मक शक्ति का भी वर्णन किया गया है।

समूचा उपन्यास ,सरल शिष्ट एवं विनोदपूर्ण भाषा में लिखा गया है उत्तराँचल के जनमानस के हृदय की सरलता, सहजता विश्वास, अंधविश्वास, रीति–रिवाज ,जीवन शैली, आदि सभी विषयों उपन्यास में निश्रण किया गया है■

पुस्तक परिचय

एकदा उत्तराँचले

(एक बार उत्तराँचल में)

उत्तराँचल (उत्तराखण्ड) के विषम जीवन पर आधारित इस सामाजिक उपन्यास का नायक हेमानन्द खंकरियाल (हेमू) है, जिसके सिर से पिता का साया बचपन में ही उठ जाता है। फौजी पिता उदेराम की मृत्यु के पश्चात, हेमू अपनी माँ रामी देवी व बड़े भाई शम्भू के साथ अपनी दादी के घर में कुछ समय रहता है। उसके चार चाचाओं में से सबसे बड़े, गोवर्धन, द्वारा रामी देवी को प्रताड़ित किया जाता है। रामी देवी अपने बड़े पुत्र, शम्भू को अपने मायके भेज देती है किन्तु एक वर्ष बाद, सास की मृत्यु के उपरान्त, जब उसे भरी पंचायत में झूठे इल्जामों द्वारा सजा सुनाई जाती है तो वह गाँव को श्राप देकर, अपनी गाय व हेमू को साथ लेकर, अपने मायके चली जाती है। उसके पिता पं० मंशाराम डुंगरियाल का खुशहाल परिवार है तथा उनके दो बेटे शिक्षित है जो सहारनपुर में 'अच्छे' ओहदों पर नौकरी करते हैं। हेमू अपने ननिहाल, बजवाड़ में ही रह कर अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करता है जबकि शम्भू सहारनपुर जाकर पढ़ाई करता है। पण्डित मंशाराम के छोटे भाई, तोताराज जी का छोटा पुत्र, रामेश्वर (रामू) हेमानन्द के प्रथम शिक्षक का कार्य करता है यथा पेड़ों पर चढ़ना, मछली पकड़ना, जंगल से जलाऊनी लकड़ी लाना इत्यादि। हेमानन्द, रामू के साथ बदरी-केदार की यात्रा पर भी जाता है। उसी यात्रा से वापस आकर, रामेश्वर को विरक्ति हो जाती है और वह सन्यासी बन घर छोड़ देता है। दूसरी तरफ, पं० मंशाराम जी के दोनों पुत्र, कृष्णबल्लभ एवं राधाबल्लभ भी वहीं सहारनपुर में ही देशी (विजातीय) लड़कियों से विवाह कर लेते हैं। फलस्वरूप पं० मंशाराम एवं उनका परिवार दोनों भाइयों से सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं।

माँ, नाना-नानी एवं अन्य परिवार जनों की इच्छा के विरूद्ध, हेमू आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए नवीन जोशी के घर, देहरादून पहुँच जाता है। वह उसकी पत्नी एवं सास की खूब प्रताड़ना सहता है। उसका स्वाभिमान उसे भाग जाने पर प्रेरित करता हैं किन्तु नवीन जोशी की छोटी पुत्री विशाखा उसे संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। वह जोशी की शराब फैक्ट्री में नौकरी भी शुरू कर देता है, साथ ही विशाखा के साथ-साथ डी० वी० एस० कॉलेज, देहरादून से बी०एस०सी० भी कर लेता है। तत्पश्चात, विशाखा एम०बी०बी०एस० करने हेतु बंग्लौर चली जाती है तथा हेमानन्द अस्थिरोग विशेषज्ञ का कोर्स करने हेतु चण्डीगढ़। किन्तु दोनों एक-दूसरे के प्यार में फड़फड़ाते पंछियों की तरह, पत्रों द्वारा प्रेमालाप करते रहते हैं। दुर्भाग्यवश, चण्डीगढ़ के उस कालेज में पढ़ाई के दौरान, हेमानन्द के जीवन में, बलात, उसकी सहपाठी चम्पा जौहरी प्रवेश करती है। हेमानन्द के न चाहते हुए भी वह उसे अपने प्रेम जाल में फँसा देती है। इसी बीच हेमू को उसके नानाजी का पत्र प्राप्त होता है। उसका बड़ा भाई शम्भू रेलवे विभाग की अच्छी नौकरी पा लेता है और 'कहीं ये भी हाथ से न निकल जाये' सोचकर शम्भू की इच्छाओं के विरूद्ध उसका विवाह एक अनपढ़ गढ़वाली (सजातीय) कन्या से तय कर लिया जाता है। हेमानन्द को उसी विवाह में सम्मिलित होने का निमंत्रण का पत्र मिलता है।

डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करने के बाद, हेमानन्द जब नवीन जोशी को धन्यवाद देने देहरादून जाता है तो छलपूर्वक उसकी व विशाखा की सगाई कर दी जाती है। अहसानों के बोझ तले दबे उस सहृदय पहाड़ी बालक के मुँह से विद्रोह का एक शब्द भी नहीं निकल पाता है।

इसी बीच, जब हेमानन्द गाँव वापस पहुँचता है तो उसे दो समाचार मिलते हैं- पहला यह कि वह एक भतीजे का चाचा बन चुका है और दूसरा यह कि उसके भाई शम्भू ने किसी विजातीय महिला से विवाह कर देहरादन में ही दूसरा घर बसा लिया है। हेमू की माँ रामीदेवी ऊँच-नीच का हवाला देकर, उसे अपनी भाभी को अपनाने के लिए बाध्य करती है किन्तु जब हेमू अपनी सगाई के सच को प्रकट करता है तो उसकी माँ उसे 'कभी सुखमय संसार न पाने का श्राप देती है।नवीन जोशी के प्रभाव के फलस्वरूप, हेमानन्द और विशाखा को नेपाल की राजशाही के एक अस्पताल में नौकरी मिल जाती है। वे दोनों एक दूसरे के जीवन-संगी बन, नेपाल में सुखमय जीवन गुजारना शुरू करते हैं किन्तु चम्पा जौहरी वहाँ प्रकट होकर उन दोनों के सुखमय संसार में आग लगा देती है। बात इतनी बढती है कि एक दिन शराब के नशे में विशाखा हेमानन्द पर पिस्तौल से वार करती है। हेमानन्द तो बच जाता है किन्तु छीना-झपटी में विशाखा को गोली लग जाती है। हेमानन्द नेपाल से किसी तरह भाग कर भारत की सीमा पर स्थित पूर्णागिरी मन्दिर के जंगलों में छुपकर रहना शुरू करता है। उस मन्दिर के मुख्य पुजारी, हेमानन्द को सन्यास-दीक्षा देकर पाँवटा साहिब एवं गंगोत्री-यमुनोत्री के दर्शन के लिए ले जाते हैं। इस बीच दोनों साधु, भेष बदलकर हेमानन्द के ननिहाल बजवाड़ गाँव भी जाते हैं। वहाँ स्थिति देखकर, हेमानन्द के मन में अपनों के प्रति पूर्ण विरक्ति हो जाती है गंगोत्री मन्दिर में अपने दीक्षा-गुरू द्वारा त्याग दिये जाने के बाद हेमानन्द को पता चलता है कि वह दीक्षा गुरू कोई अन्य नही उसके रामू मामा थे। वह उन्हें ढूँढने का असफल प्रयत्न करता है। थक कर वह गंगोत्री से गौमुख का मार्ग पकड़ता है तथा उसी गोमुख तीर्थ पर वर्षो समाधिस्थ हो जाता है। अब हेमानन्द, स्वामी अविमुक्तानन्द बन, हिमालय के विभिन्न तीर्थ स्थानों पर भटकने लगता है किन्तु वह पूर्ण रूपेण 'अविमुक्त' हो पाया-- नचिकेता तीर्थ के समीप।

कई वर्षो पश्चात हेमानन्द को (स्वामी अविमुक्तानन्द) को अपने बड़े भाई शम्भू,भतीजे सोमानन्द व भाभी के दर्शन होते हैं। सोमानन्द क्षेत्र का विधायक व राज्य का विकास मंत्री बन चुका था। वे स्वामी अविमुक्तानन्द से वह स्थान छोड़ संग चलने का अनुरोध करते हैं किन्तु स्वामी जी न उनको पहचान पाते हैं और न ही उनकी किसी बात पर गौर करते हैं। वह आखिर संसार के क्रिया-कलापों से मुक्त हो अविमुक्त पद प्राप्त कर अपनी ईश्वरोपासना एवं लोक कल्याण के कार्यों में रम जाते हैं।

उपन्यास में गढ़वाल के गाँवों की जीवन-शैली का अत्यन्त सजीव वर्णन प्रत्येक प्रकृति-प्रेमी को मिलेगा, साथ ही गढ़वाल के अनगिनत तीर्थों का भी जीवन्त वर्णन पढ़ने में सुलभ होगा। उत्तराँचल की देवभूमि में बहुतायत से पाये जाने वाले देव-तीर्थों का लेखक ने सदृश्य मनोरम वर्णन भी किया है।●

लेखकः डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़

प्रकाशक : नवशक्ति प्रकाशन, जे013/24 के0, चौकाघाट, वाराणसी

समीक्षक : बी.एन. जुयाल

स्मृति शेष

हिन्दुस्तान
वाराणसी • गुरुवार • 03 अक्तूबर 2013

अपने शहर में

- **संगोष्ठी :** मैथिली लोक कला पर बीएचयू के भोजपुरी अध्ययन केन्द्र में दिन 2 बजे।
- **फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता :** इनरव्हील क्लब वाराणसी सेंट्रल की ओर से सुनिक एकेडमी दुर्गाकुंड में सुबह 10.30 बजे।
- **आगमन :** अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सचिव राणा गोस्वामी सर्किट हाउस में शाम 7 बजे।
- **शोकसभा :** प्रो. बीएन जुयाल की श्रद्धांजलि सभा भेलूपुर स्थित मैत्री भवन में शाम 4 बजे।
- **धरना :** बिजली आपूर्ति की मांग करने वाले किसानों पर फर्जी मुकदमे के खिलाफ भाकपा की जिला मुख्यालय पर सुबह 11 बजे।
- **गोष्ठी :** केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ में सुबह 9.30 बजे।
- **दरिद्र नारायण भोज :** लायंस क्लब वाराणसी गोल्ड की ओर से दशाश्वमेध घाट स्थित चितरंजन पार्क में सुबह 7.30 बजे। लायंस क्लब मेन की ओर से दुर्गाकुंड स्थित युद्धाश्रम में दैनिक उपयोगी वस्तुओं का वितरण सुबह 10 बजे।
- **बैठक:** महायोजना 2031 के संबंध में आर्किटेक्ट, बिल्डर एसोसिएशन आदि के साथ जिलाधिकारी की बैठक राइफल क्लब 10.30 बजे।

दैनिक जागरण
वाराणसी, 28 सितंबर 2013

समाजशास्त्री प्रो . जुयाल का निधन

वाराणसी : प्रसिद्ध समाजशास्त्री, लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करने वाले व गांधी विद्या संस्थान के पूर्व निदेशक प्रो. बीएन जुयाल का शुक्रवार की सुबह 9.30 बजे बीएचयू के सर सुंदरलाल अस्पताल में निधन हो गया। वह छह दिन से ब्रेन हेमरेज के कारण आइसीयू में भर्ती थे। 82 वर्षीय प्रो. जुयाल अपने पीछे पत्नी, एक पुत्र व पुत्री का शोक संतप्त परिवार छोड़ गए हैं। उनका अंतिम संस्कार शाम को हरिश्चंद्र घाट पर किया गया।

हिन्दुस्तान
वाराणसी • शुक्रवार • 04 अक्तूबर 2013

याद किए गए प्रो.बीएन जुयाल

वाराणसी। गांधीयन इंस्टीट्यूट ऑफ स्टडीज के संयोजन में प्रो. बी एन जुयाल के निधन पर एक सभा आयोजित हुई। प्रो. दीपक मलिक ने कहा कि प्रो. जुयाल जैसा समाज वैज्ञानिक आज की जरूरत है। सभा में डॉ. एस सुंदरम, डॉ. एके गौड़, डॉ. रुपाली, प्रो. बीएन जुयाल फाउण्डेशन के गठन की घोषणा की। डॉ. चित्रा सहस्त्रबुद्धे, जागृति राही, डॉ. सुमन सिंह, डॉ. शिव स्वार्थ सिंह, गोरखनाथ, दयानंद, राजेश राय, डॉ. उमाकांत चतुर्वेदी, राजेश सिंह, प्रो. आरके मंडल, प्रो. सदानंद शाही ने श्रद्धांजलि दी।

समाज के हर तबके से जुड़े थे प्रो. बीएन जुयाल

VARANASI (25 Aug): प्रसिद्ध समाजसेवी स्व. प्रो बीएन जुयाल के 86वें जन्म दिवस पर उनके महासमाधिपुरी स्थित आवास पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया. जिसमें डॉ अम्बिका प्रसाद गौड़ द्वारा सम्पादित पुस्तक प्रो बीएन जुयाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विमोचन किया गया. इस दौरान एक गोष्ठी का भी आयोजन किया गया. प्रो जुयाल एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट की ओर से आयोजित कार्यक्रम में ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ संग कई लोगों ने अपनी बातें रखीं. कार्यक्रम में डॉ गौड़ ने कहा कि प्रो जुयाल को सामाजिक सरोकारों के प्रत्येक मुद्दे पर गहरी पकड़ थी और वे सिर्फ सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं, व्यवहारिक तौर पर भी समाज के हर तबके से जुड़े हुए थे. यह पुस्तक उनकी जीवन-यात्रा एवं सामाजिक सरोकारों के विभिन्न पहलुओं पर उनके कुछ महत्वपूर्ण लेखों का संकलन है. गोष्ठी में शीला जुयाल, डॉ. रुपाली जुयाल, गौरव, डॉ. पल्लवी भारे, डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह, डॉ. प्रदीप श्रीवास्तव, डॉ. श्याम बहादुर सिंह, डॉ. अनिल कुमार तिवारी एवं ट्रस्ट के सदस्यों के अलावा अन्य लोग मौजूद थे.

Tuesday, August 26, 2014

राष्ट्रीय सहारा
www.samaylive.com
सच कहने की हिम्मत
राष्ट्रीयता • कर्त्तव्य • समर्पण
वाराणसी। शुक्रवार • 4 अक्टूबर • 2013

अन्याय के खिलाफ लड़ते रहे प्रो.बी एन जुयाल

वाराणसी (एसएनबी)। गांधीवन इंस्टीट्यूट आफ स्टडीज के तत्वावधान में प्रख्यात समाज वैज्ञानिक प्रो. वीएन जुयाल की स्मृति एवं सम्मान में गौरव सभा का आयोजन किया गया। वक्ताओं ने कहा कि वो हमेशा अन्याय के खिलाफ लड़ते रहे। संस्थान के निदेशक प्रो. दीपक मलिक ने कहा कि प्रो. जुयाल जैसे समाज वैज्ञानिक आज की जरूरत है। समाज विज्ञान में शोध करना तब तक संभव नहीं जब तक कि शोधकर्ता ईमानदारी पूर्वक वंचित समुदाय से खुद को जोड़ न ले। प्रो. जुयाल समाज के वंचित तबके से जुड़कर ही समाज वैज्ञानिक अवधारणा, शोध पद्धति एवं निष्कर्षों तक पहुंचते थे। डा. एस सुन्दरम् ने कहा कि वो बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। प्रो. जुयाल के पारिवारिक सदस्य डा. एके गौड़ एवं डा. रूपाली ने प्रो. वीएन जुयाल फाउंडेशन के गठन की घोषणा किया। डा. मुनीजा रफीक खां, डा. अम्बिका प्रसाद गौड़, डा. चित्रा, जागृति राही, डा. सुमन सिंह, डा. शिव स्वार्थ सिंह, गौरखनाथ, धर्मेन्द्र राय, दयानन्द, राजेश राय, डा. उमाकांत चतुर्वेदी, राजेश सिंह ने भी श्रद्धांजलि दी। प्रो. आरके मंडल, प्रो. सदानन्द शाही, डा. कुलदीप रंजन, डा. आनन्द दीपायन, डा. प्रशांत शुक्ला व शिव प्रसाद यौजूद थे। संचालन डा. सुनीत ने किया।

यह हाल है महामनापुरी कॉलोनी का

सड़कों का हाल बेहद बुरा ■ सीवर का पानी करता है स्वागत

प्रो. बी. एन. जुयाल

टूटी सड़क पर बहता सीवर का पानी।

वाराणसी : इस कॉलोनी के संस्थापक पं जिलोचन पंत, पं. मदन मोहन मालवीय के सचिव सह इतिहास के प्राध्यापक रहे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के शिल्पकार के आगे मालवीय जी की मूर्ति उन्हीं की परिकल्पना के अनुरूप बनी थी। उन्होंने ही एक सहकारी समिति का संयोजन कर इसे महामनापुरी नाम दिया। कॉलोनी में अधिसंख्य विश्वविद्यालय के ही सेवानिवृत्त या सेवारत परिवार रहते हैं।

महामनापुरी कॉलोनी केवल आवासीय नहीं है, इसमें अनेक राजकीय एवं स्वायत्त संस्थान है। करौंदी चौराहे से कॉलोनी तक आने वाले मार्ग पर है टेलीफोन एक्सचेंज, बिजली सर्विस स्टेशन, आईटीआई एवं पार्श्वनाथ जैन विद्यापीठ जो बीएचयू से मान्यता प्राप्त शोध केंद्र है। मालवीय फाउंडेशन भी कॉलोनी के अंदर है। कई विद्यालय व विवेकानंद मठ भी इस कॉलोनी में हैं। इसके अलावा 20-25 स्कूल कालेजों की बसें कॉलोनी को फेरा लगाती हैं।

यह महत्वपूर्ण क्षेत्र भी विकास से कोसो दूर है। चारों ओर सीवर का पानी फैला और टूटी सड़के आदिम युग का अहसास कराती हैं। सार्वजनिक धन का ऐसा अपव्यय कभी नहीं देखा। आजकल बिल्डर्स की गर्फट में ऐसे ही 'नो नियम-कानून जोन' है। करौंदी चौराहा और कॉलोनी के प्रवेश स्थल तक चार पांच अपार्टमेंट हाउस खड़े हो गए हैं। यदि स्थानीय नियोजन की कोई व्यवस्था होती तो कॉलोनी की सड़क को सामान्य तौर पर प्राथमिकता मिली होती। पर जो भी व्यवस्था थी एक तो उसे सांसद, विधायक निधि ने बिगाड़ दिया क्योंकि लोकल डवलपमेंट के लिए उपलब्ध फंड उसमें चला जाता है। उनके द्वारा कराए गए काम टुकड़ों में बनते हैं और फिर ऐसे ही बिगड़ते भी हैं क्योंकि डीजन कुछ ज्यादा ही होता है। कॉलोनियों के बाहरी संपर्क मार्ग को नालों में तब्दील कर दिया और जो भी कसर बाकी थी वह इसके किनारे बने कुछ मकान मालिकों ने अपने आगे मिट्टी पाट कर पूरी कर दी। कब जागेगा विकास प्राधिकरण और कब उसे होगा अपनी जिम्मेदारियों का अहसास, सवाल खड़ा है।

(लेखक गांधी विद्या संस्थान राजघाट के पूर्व निदेशक हैं।)

आप भी अपने क्षेत्र की समस्या हमें सचित्र मेल कर सकते हैं। हमारा पता है- varanasi@vns.jagran.com

वाराणसी जागरण

राष्ट्रीय सहारा
www.samaylive.com
सच कहने की हिम्मत
राष्ट्रीयता • कर्त्तव्य • समर्पण
• देहरादून से प्रकाशित
वाराणसी। शनिवार • 24 मई • 2014
नगर संस्करण, 18+4 (रंगरूप) 22 पृष्ठ, मूल्य ₹ 3.00

प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन का गठन

प्रसिद्ध समाजसेवी व लोकनायक जयप्रकाश नारायण के सहयोगी प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन का गठन किया गया। प्रो. जुयाल का पिछले दो वर्ष पूर्व निधन हो चुका है। ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ ने बताया कि कुशल जैसा स्थिर, निष्ठावान कार्यकर्ता मिलना कठिन है। ट्रस्ट में प्रो. दीपक मलिक, डा. मुनीजा खान, डा. एलवी भाले, डा. कैलाश यादव, डा. रचना जुयाल, प्रो. बीएन जुयाल आदि शामिल हैं।

वाराणसी, शनिवार २४ मई २०१४
आज

निष्पक्ष और निर्भीक थे समाजसेवी प्रोफेसर जुयाल

नवगठित प्रोफेसर बी.एन. जुयाल एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट की प्रथम बैठक शुक्रवार को महामनापुरी कालोनी में ट्रस्ट के अध्यक्ष डाक्टर अम्बिका प्रसाद गौड़ की अध्यक्षता में हुई। इस अवसर पर डाक्टर गौड़ ने कहा कि प्रोफेसर जुयाल निष्पक्ष शिक्षक एवं निःस्वार्थ समाजसेवक थे। हमें उनके दिखाये मार्ग का अनुसरण कर समाज में एक नयी चेतना जागृत करना होगा। ट्रस्ट के प्रमुख उद्देश्य का उल्लेख करते हुए डाक्टर गौड़ ने बताया कि यह ट्रस्ट सामाजिक न्याय, महिला एवं बाल अधिकार, शिक्षा, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्रों में अपना सक्रिय योगदान देगा। बैठक में प्रोफेसर दीपक मलिक, डाक्टर मुनीजा खान, डाक्टर एलबी भाले, डाक्टर कैलाश यादव, डाक्टर रचना जुयाल गौड़ आदि लोग उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन श्री कमल नयन मधुकर ने किया।

हिन्दुस्तान
तरक्की को चाहिए नया नजरिया
शनिवार, 24 मई 2014, वाराणसी, पांच एडेटा, 18 संस्करण, नगर
www.livehindustan.com

संस्कृत को बढ़ावा देगा प्रो.बीएन जुयाल फाउंडेशन ट्रस्ट

वाराणसी। प्रसिद्ध समाजसेवी और जयप्रकाश नारायण के सहयोगी स्व. प्रो. बीएन जुयाल की स्मृति में गठित 'प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट' की बैठक उनके महामनापुरी कॉलोनी स्थित आवास पर हुई।

ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ.अम्बिका प्रसाद गौड़ ने बताया है कि संस्था सामाजिक न्याय, महिला एवं बाल अधिकार, शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करेगी। बैठक में प्रो.दीपक मलिक, डॉ.मुनीजा खान, डॉ.एलबी भाले, डॉ.कैलाश यादव और डॉ.रचना जुयाल गौड़ ने स्व.बीएन जुयाल के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में चर्चा की। संचालन कमल नयन मधुकर ने किया। एसं

KASHIVARTA - 30/12/14

प्रो. जुयाल ने समाज को नई दिशा दी: प्रो. वासन्ती रमन

प्रो. बी.एन. जुयाल स्मृति व्याख्यान एवं डा. एपी. गौड़ की पुस्तक का लोकार्पण

वाराणसी। प्रो. बी.एन. जुयाल एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट के तत्वावधान में पराड़कर भवन, मैदागिन में प्रथम प्रो. बी.एन. जुयाल स्मृति व्याख्यान का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि समाजशास्त्री एवं महिला विकास अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली की पूर्व उपनिदेशिका, प्रो. वासन्ती रमन ने प्रो. बी.एन. जुयाल की स्मृतियों को जीवन्त करते हुए कहा कि उनके जैसा व्यक्ति वदा-कदा ही जन्म लेता है और अपने कर्मों द्वारा समाज एवं जनमानस को नई दिशाएं दिखाते हुए अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

उन्होंने प्रो. बी.एन. जुयाल को एक प्रसिद्ध समाजसेवी, सहृदय एवं महिला व शोषित वर्ग का सच्चा हितैषी बताते हुए उनके द्वारा सामाजिक न्याय के लिये किए गये कार्यों का उल्लेख किया। इस अवसर पर प्रो. बी.एन. जुयाल एजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अम्बिका प्रसाद गौड़ ने प्रो. वासन्ती रमन को पुष्प गुच्छ एवं स्मृति चिन्ह भेंट किया।

कार्यक्रम के अगले भाग में साहित्यकार रामसुधार सिंह, डा. जितेन्द्र नाथ मिश्र, डा. देवी प्रसाद कुंवर द्वारा डा. अम्बिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन किया गया। सभी साहित्यकारों ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए डा. गौड़ द्वारा हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों साहित्यों में पुस्तक लेखन कौशल एवं समाज को नई सोच देने के लिए उनकी प्रतिबद्धता की सराहना की। कार्यक्रम का संचालन कमलनयन 'मधुकर' स्वागत ए.एम. खान एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. मुनीजा रफीक खान ने किया। कार्यक्रम में संस्था के सदस्य डॉ. एल.वी. भार्वे, डॉ.कैलाश यादव, डॉ. रूपाली जुयाल गौड़,देवेन्द्र कुमार सिंह आदि उपस्थित थे।

HINDUSTAN 30/12/2014

'थिंक बिग' किताब का हुआ विमोचन

वाराणसी। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट की ओर से पराड़कर भवन में आयोजित प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान पर डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन हुआ।

मुख्य अतिथि महिला विकास अध्ययन केन्द्र के पूर्व उपनिदेशक प्रो. वासंती रमन ने कहा कि प्रो. जुयाल ने समाज को नई दिशा दी है। वह समाजसेवी व शोषित वर्ग के हितैषी थे। साहित्यकार रामसुधार सिंह, डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र, डॉ. देवी प्रसाद, डॉ. सीमांत त्रिपाठी ने विचार रखे। आभार डॉ. मुनीजा रफीक खान व संचालन कमलनयन मधुकर ने किया।

AAJ 30/12/14

RASHTRIYA SAHARA 29/12/14

समाजसेवा में प्रोफेसर जुयाल का उल्लेखनीय योगदान-डाक्टर रमन

प्रोफेसर बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर स्मृति भवन में उनकी स्मृति में व्याख्यान आयोजित हुआ। इसमें मुख्य वक्ता समाजशास्त्री और महिला विकास अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली की पूर्व उपनिदेशक प्रोफेसर वासंती रमन ने कहा कि प्रोफेसर जुयाल का व्यक्तित्व विशाल था। उन्होंने अपना जीवन जनभागीस और समाज के विकास के लिए दिया। उनका योगदान सराहनीय है।

उन्होंने कहा कि प्रोफेसर जुयाल जहुमुखी थे। समाजसेवा के साथ उनका सहज हर विधाओं में था। उन्होंने हमेशा ही समाजहितों की परवाह की। इसके लिए उन्होंने हर प्रयास किये और उल्लेखनीय कार्यों से उन्हें हमेशा याद किया जायगा। इस अवसर पर डाक्टर अंबिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक थिंक बिग का विमोचन भी हुआ। इस पुस्तक में साहित्यकार रामसुधार सिंह, जितेन्द्रनाथ मिश्र, डाक्टर देवी प्रसाद, डाक्टर सीमांत त्रिपाठी, डाक्टर एपी भार्वे, डाक्टर कैलाश यादव, डाक्टर रूपाली जुयाल सहित अन्य लोग रहे। अंतमें कमलनयन मधुकर और धन्यवाद डाक्टर मुनीजा रफीक ने किया।

शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी रहे प्रो. जुयाल

वाराणसी (एसएनबी)। प्रो.बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के तत्वावधान में पराड़कर स्मृति भवन में रविवार को प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान का प्रथम आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्यअतिथि डा. रामसुधार सिंह, डा. जितेन्द्र नाथ मिश्र, डा. देवी प्रसाद एवं डा. सीमान्त त्रिपाठी ने डा. अम्बिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन किया। साहित्यकारों ने पुस्तक की समीक्षा करते हुए डा. गौड़ द्वारा हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों साहित्यों में पुस्तक लेखन कौशल एवं समाज को नई सोच देने के लिए उनकी प्रतिबद्धता की सराहना की।

स्मृति व्याख्यान पर डा. अम्बिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि समाजशास्त्री एवं महिला विकास अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली की पूर्व उप-निदेशिका प्रो. वासंती रमन ने प्रो.बीएन जुयाल की स्मृतियों को जीवंत करते हुए कहा कि उनके जैसा व्यक्तित्व वदा-कदा ही जन्म लेता है और अपने कर्मों द्वारा समाज एवं जन-मानस को नई दिशा दिखाते हुए अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

उन्होंने प्रो. बीएन जुयाल को एक प्रसिद्ध समाजसेवी, सहृदय एवं महिला व शोषित वर्ग का सच्चा हितैषी बताते हुए उनके द्वारा सामाजिक न्याय के लिए किये गये कार्यों का उल्लेख किया। कार्यक्रम का संचालन कमल नयन मधुकर एवं धन्यवाद ज्ञापन डा. मुनीजा रफीक खान ने किया। इस अवसर पर संस्था के सदस्य डा.एलवी भार्वे, डा. कैलाश यादव, डा. रूपाली जुयाल गौड़ और देवेन्द्र कुमार सिंह आदि मौजूद थे।

पुस्तक का विमोचन करते अतिथिगण। फोटो : पुस्तकमें

DAINIK JAGRAN 29/12/14

शोषित वर्ग की आवाज थे समाजसेवी प्रो. जुयाल

वाराणसी : प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर भवन में स्मृति व्याख्यान का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में समाज शास्त्री व महिला विकास अध्ययन केंद्र की पूर्व उप निदेशिका प्रो. वासंती रमन ने विचार व्यक्त किए। उन्होंने प्रो. बीएन जुयाल को स्मृतियों को जीवंत करते हुए कहा कि प्रो. जुयाल जैसा व्यक्ति वदा-कदा ही जन्म लेता है। वह महान समाज सेवी, महिला व शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी थे।

ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ ने प्रो. वासंती रमन को पुष्पगुच्छ व स्मृति चिन्ह भेंट किया। कार्यक्रम में साहित्यकार रामसुधार सिंह, जितेंद्रनाथ मिश्र, डा. देवी प्रसाद व डा. सीमांत त्रिपाठी द्वारा डा. अंबिका प्रसाद की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन किया गया। सभी साहित्यकारों ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए डा. गौड़ के हिंदी व अंग्रेजी दोनों में ही लेखन कौशल व समाज को नई सोच देने के लिए उनकी प्रतिबद्धता की सराहना की। कार्यक्रम का संचालन कमल नयन मधुकर, धन्यवाद ज्ञापन डा. मुनीजा रफीक खान ने किया। संस्था के सदस्य डा. एलवी भार्वे, डा. कैलाश यादव, डा. रूपाली जुयाल गौड़, देवेंद्र सिंह आदि थे।

- पराड़कर भवन में स्मृति व्याख्यान और पुस्तक का विमोचन

हिन्दुस्तान
तरक्की को चाहिए नया नजरिया
बुधवार, 26 अगस्त 2015, वाराणसी, प्रांच प्रदेश, 18 संस्करण, नगर
www.livehindustan.com

प्रोफेसर जुयाल के आदर्शों पर चलें

वाराणसी। प्रसिद्ध समाजसेवी व गांधी विद्या संस्थान के पूर्व डायरेक्टर प्रो. बीएन जुयाल को उनके 85वें जन्मदिवस पर श्रद्धांजलि दी गई। मंगलवार को प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से महामनापुरी कॉलोनी स्थित आवास पर आयोजित कार्यक्रम में उनके आदर्शों पर चलने की शपथ भी ली।

संस्था के सदस्यों ने ट्रस्ट के संस्थापक सदस्य व प्रो. जुयाल के शिष्य डॉ. कैलाश यादव को भी श्रद्धांजलि दी। उनका गत 27 जुलाई को निधन हुआ था। प्रो. बीएन जुआल इस दौरान ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़, उपाध्यक्ष डॉ. रूपाली जुयाल गौड़, डॉ. एलवी भावे, डॉ. देवेंद्र सिंह, डॉ. मनीजा रफीक खान मौजूद थे।

अमर उजाला

वाराणसी | बृहस्पतिवार | 27 अगस्त 2015

जन्म दिन पर याद किए गए प्रो. जुयाल

वाराणसी। गांधी विद्या संस्थान के कुलपति रहे प्रो. बीएन जुयाल के 85वें जन्म दिवस पर कार्यक्रम में लोगों ने उनकी सेवाओं को याद करते हुए याद किया। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष प्रो. अंबिका प्रसाद गौड़, उपाध्यक्ष डॉ. रूपाली जुयाल व अन्य लोगों ने उनके चित्र पर पुष्प अर्पित कर उनके बताए मार्ग पर चलने का संकल्प लिया।

राष्ट्रीय सहारा

सच कहने की हिम्मत

राष्ट्रीयता • कर्त्तव्य • समर्पण

कानपुर • देहरादून से प्रकाशित

वाराणसी। बुधवार • 26 अगस्त • 2015

याद किये गये प्रो. बीएन जुयाल

वाराणसी। मंगलवार को समाजसेवी प्रो. बीएन जुयाल को उनके जन्मदिन पर याद किया गया। जुयाल के महामनापुरी स्थित निवास पर आज बड़ी संख्या में उनके शुभचिंतक, मित्र, सहयोगी एकत्रित हुए। उन्हें याद करते हुए सबने कहा कि वह एक महान विभूति थे। इस मौके पर जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अम्बिका प्रसाद गौड़ ने कहा कि जुयाल साहब के आदर्शों पर अमल करते रहेंगे।

inext

www.inextlive.com

हर दिन एक नई शुरुआत

आई नेक्स्ट

Vol 8, Issue 270
Varanasi
Wednesday,
26 August 2015
Page 20
Price : ₹1.50

Weather

Max : 35.2°C
Min : 28.8°C
Sunset : 6.25 pm
Sunrise : 5.37 am

Jagran
A JAGRAN INITIATIVE

Published from: Varanasi, Agra, Allahabad, Bareilly, Dehradun, Gorakhpur, Indore, Jamshedpur, Kanpur, Lucknow, Meerut, Patna and Ranchi

yaad kiye gaye pro. bieen juyaal

प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से मंगलवार को महामनापुरी कालोनी में गांधी विद्या संस्थान के पूर्व डायरेक्टर प्रो. बीएन जुयाल के 85वें जन्मदिवस पर उन्हें याद किया गया. इस दौरान उनके तैलचित्र पर माल्यार्पण कर उनके बताये हुए रास्ते पर चलने का संकल्प लिया गया. कार्यक्रम में ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़, डॉ. रूपाली जुयाल गौड़, डॉ. एलवी भावे, डॉ. देवेंद्र सिंह, डॉ. मुनीजा रफीक खान आदि प्रेजेंट थे.

जनसंदेश टाइम्स
सोमवार, 28 दिसंबर 2015

भारत सहिष्णु है

वाराणसी। पराड़कर भवन में प्रो.बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट द्वारा प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर-2 का आयोजन किया गया। ट्रस्ट अध्यक्ष डा.अम्बिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। वरिष्ठ सदस्य अजि चाड्डान ने प्रो.बीएन जुयाल के जीवन वृत्तांत को बताते हुए उन्हें सरल, सहज एवं परहित के लिए सदैव तत्पर रहने वाला युगपुरुष बताया।

इस मौके पर सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता विषय पर गोष्ठी हुई जिसमें बोलते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो.जितेंद्र नाथ मिश्र एवं काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रो.वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने कहा कि भारत भूमि सदैव सहिष्णुता से ओतप्रोत रही है तभी तो यहां हर धर्म, पंथ और संप्रदाय के लोगों को सामाजिक समरसता के साथ फूलने-फूलने का मौका मिलता रहा है।

जुयाल मेमोरियल संगोष्ठी को संबोधित करते वक्ता

next Varanasi, 26 August 2016

समाज के हर तबके से जुड़े थे प्रो. बीएन जुयाल

VARANASI (25 Aug): प्रसिद्ध समाजसेवी स्व. प्रो बीएन जुयाल के 86वें जन्म दिवस पर उनके महामनापुरी स्थित आवास पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया. जिसमे डॉ अम्बिका प्रसाद गौड़ द्वारा सम्पादित पुस्तक प्रो बीएन जुयाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विमोचन किया गया. इस दौरान एक गोष्ठी का भी आयोजन किया गया. प्रो जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से आयोजित कार्यक्रम में ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ सहित कई लोगों ने अपनी बातें रखीं. कार्यक्रम में डॉ गौड़ ने कहा कि प्रो जुयाल की सामाजिक सरोकारों के प्रत्येक मुद्दे पर गहरी पकड़ थी और वे सिर्फ सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं, व्यवहारिक तौर पर भी समाज के हर तबके से जुड़े हुए थे. यह पुस्तक उनकी जीवन-यात्रा एवं सामाजिक सरोकारों के विभिन्न मुद्दों पर उनके कुछ महत्वपूर्ण लेखों का संकलन है. गोष्ठी में शीला जुयाल, डॉ. रूपाली जुयाल गौड़, डॉ. एलवी भावे, डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह, डॉ. प्रदीप श्रीवास्तव, डॉ. श्याम बहादुर सिंह, डॉ.

वाराणसी | शुक्रवार • 26 अगस्त • 2016 | पाक्षिक सहारा

प्रो. बीएन जुयाल के जन्मदिन पर पुस्तक का लोकार्पण

वाराणसी (एसएनबी)। समाजसेवी प्रो बीएन जुयाल के 86वें जन्मदिवस पर महामनापुरी स्थित आवास पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें प्रो. जुयाल को श्रद्धासुमन अर्पित किये गये। इस मौके पर ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ द्वारा सम्पादित पुस्तक प्रो बीएन जुयाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विमोचन किया गया। प्रो बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट द्वारा आयोजित कार्यक्रम में डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ ने कहा कि प्रो. जुयाल की सामाजिक सरोकारों के प्रत्येक मुद्दे पर गहरी पकड़ थी और वे सिर्फ सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं, व्यावहारिक तौर पर भी समाज के हर तबके से जुड़े हुए थे। गोष्ठी में शीला जुयाल, डॉ. रूपाली जुयाल गौड़, डॉ. एलवी भावे, डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह, डॉ. प्रदीप श्रीवास्तव, डॉ. श्याम बहादुर सिंह, डॉ. अनिल कुमार तिवारी एवं ट्रस्ट के सदस्यों के अलावा अन्य लोग उपस्थित थे।

हिन्दुस्तान
• वाराणसी • शनिवार • 27 अगस्त 2016

प्रो. जुयाल पर लिखी पुस्तक का विमोचन

वाराणसी। प्रसिद्ध समाजसेवी स्व.प्रो.बीएन जुयाल के 86 वें जन्मदिवस पर डॉ.एपी गौड़ द्वारा संपादित पुस्तक 'प्रो.बीएन जुयाल-व्यक्तित्व और कृतित्व' का लोकार्पण किया गया। महामानपुरी स्थित उनके आवास पर संगोष्ठी में शीला जुयाल, डॉ.रूपाली जुयाल और प्रो.जुयाल के प्रशंसक और मित्र शामिल थे।

वाराणसी। शनिवार • 31 दिसम्बर • 2016 | राष्ट्रीय सहारा

घटनाक्रम का पारदर्शिता से प्रस्तुतिकरण ही पत्रकारिता

■ सहारा न्यूज ब्यूरो

वाराणसी।

पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य समाज में घटित होने वाले प्रत्येक घटनाक्रम को पारदर्शिता से प्रस्तुत करना है। पत्रकार को तथ्यपरक, निर्भीक एवं निष्पक्ष होना चाहिए।

प्रो. जुयाल की स्मृति में 'साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार' पर व्याख्यान

इन बातें काशी विद्यापीठ हिन्दी पत्रकारिता संस्थान के निदेशक प्रो. ओमप्रकाश सिंह ने पराड़कर भवन में आयोजित प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल व्याख्यान कार्यक्रम 'साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार' में व्यक्त किये।

इसके पूर्व कार्यक्रम में का शुभारंभ संस्था के अध्यक्ष डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ एवं अन्य सदस्यों ने प्रो. जुयाल के चित्र पर माल्यार्पण कर किया। तत्पश्चात डॉ. रुपाली जुयाल गौड़ व डॉ.एलयी भावे द्वारा मुख्य वक्ताद्वय डॉ. ओमप्रकाश सिंह व प्रो. जितेन्द्र नाथ मिश्र को अंगवस्त्रम देकर सम्मानित किया गया। इस दौरान प्रो. मिश्र ने कहा कि साहित्य समाज का दर्पण है। जो कुछ घटित हो रहा है और जो घटित होने वाला है, साहित्य पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इसलिए, साहित्यकारों को चाहिए कि साहित्य सृजन करते समय अपने सामाजिक सरोकारों को भी ध्यान में रखें। कार्यक्रम का संचालन अजि भारद्वाज ने किया। कार्यक्रम में प्रो.बीएन जुयाल की स्मृतियों को ताजा किया गया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़ ने दिया। इस दौरान उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों में डॉ.श्याम बहादुर सिंह, डॉ.अनिल तिवारी, मुन्ना पांडे, रंजीत कुमार, ओंकार सिंह, राधाकृष्ण गोदियाल, संध्या श्रीवास्तव आदि रहे।

जनसंदेश टाइम्स

शनिवार, 31 दिसंबर 2016

पत्रकार को तथ्यपरक और निर्भीक होना चाहिए'

वाराणसी। पराड़कर भवन में प्रो.बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर का आयोजन किया गया। प्रो.बीएन जुआल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष डा.अम्बिका प्रसाद गौड़ समेत अन्य लोगों ने जुआल के चित्र पर माल्यार्पण कर श्रद्धांजलि दी। काशी विद्यापीठ के पत्रकारिता संस्थान के प्रो.ओमप्रकाश सिंह ने साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार विषय पर बोलते हुए कहा कि पत्रकार को तथ्यपरक और निर्भीक होने के साथ ही निष्पक्ष होना चाहिए। प्रो.जितेंद्र नाथ मिश्र ने कहा कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। संचालन कर रहे अजि भारद्वाज ने कहा कि प्रो.जुयाल ने अपने सामाजिक जीवन की शुरुआत पत्रकारिता के रूप में की थी। इस मौके पर डा.श्याम बहादुर सिंह, डा.अनिल तिवारी, राजेश, ओंकार सिंह आदि रहे।

दैनिक जागरण वाराणसी, 31 दिसंबर 2016

याद किए गए प्रो. जुयाल

वाराणसी : प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर का आयोजन शुक्रवार को पराड़कर भवन में किया गया। शुभारंभ संस्था के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ व सदस्यों ने प्रो. जुयाल के चित्र पर माल्यार्पण कर किया। 'साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार' विषयक व्याख्यान हुआ। प्रो. ओम प्रकाश सिंह व प्रो. जितेंद्र नाथ मिश्र व्याख्यान के मुख्य वक्ता रहे।

अमर उजाला

वाराणसी

शनिवार, 31 दिसंबर 2016

धर्मों को पारदर्शिता से पेश करना ही पत्रकारिता

पराड़कर भवन में आयोजित व्याख्यान में बोलते प्रो. ओम प्रकाश सिंह।

वाराणसी। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से शुक्रवार को पराड़कर भवन में साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार विषय पर व्याख्यान हुआ। मुख्य अतिथि काशी विद्यापीठ हिंदी पत्रकारिता संस्थान के निदेशक प्रो. ओम प्रकाश सिंह ने कहा कि पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य समाज की घटनाओं को पारदर्शिता से प्रस्तुत करना है। संस्था के अध्यक्ष डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़ ने कार्यक्रम के उद्देश्य के बारे में बताया। इस मौके पर डॉ. रुपाली जुयाल गौड़ और डॉ. एलवी भावे ने मुख्य अतिथि और विशिष्ट अतिथि प्रो. जितेंद्रनाथ मिश्र को सम्मानित किया। संचालन अजि भारद्वाज ने किया। इस अवसर पर डॉ. श्याम बहादुर सिंह, डॉ. अनिल तिवारी, डॉ. मुन्ना पांडेय, राजीत कुमार, ओंकार सिंह, राधाकृष्ण गोदियाल, संध्या श्रीवास्तव आदि ने विचार रखे।

हिन्दुस्तान

वाराणसी • शनिवार • 31 दिसम्बर

निर्भीक और निष्पक्ष होने चाहिये पत्रकार

वाराणसी। पराड़कर भवन में प्रो. बीएन जुयाल ऐजुकेशनल फाउन्डेशन ट्रस्ट की ओर से शुक्रवार को व्याख्यान का आयोजन हुआ। इसमें साहित्य एवं पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार पर चर्चा की गई। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ में हिन्दी पत्रकारिता संस्थान के निदेशक प्रो. ओम प्रकाश सिंह ने कहा कि पत्रकार को तथ्यपरक, निर्भीक एवं निष्पक्ष होना चाहिए। पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य समाज में घटित होने वाले प्रत्येक घटनाक्रम को पारदर्शिता से प्रस्तुत करना है। प्रो. जितेन्द्र नाथ मिश्र ने कहा कि साहित्यकारों को सामाजिक सरोकारों को भी ध्यान में रखना चाहिए। [illegible] संचालन अजि भारद्वाज व धन्यवाद ज्ञापन डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ ने किया।

वाराणसी, २८ दिसम्बर, २०१५
आज

भारत सदैव से रहा है सहिष्णुता से ओत-प्रोत

'सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता' विषयक व्याख्यान में डाक्टर जितेन्द्रनाथ मिश्र के विचार

प्रोफेसर बी.एन.जुयाल एजुकेशन फाउण्डेशन ट्रस्ट की ओर से प्रोफेसर जुयाल की स्मृति भवन में सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता, विषयक व्याख्यान का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रसिद्ध साहित्यकार डाक्टर जितेन्द्रनाथ मिश्र ने कहा कि भारत भूमि सदैव सहिष्णुता से ओत-प्रोत रही है, तभी तो यहां पर हर वर्ग, हर धर्म, हर सम्प्रदाय के लोगों को सामाजिक समरसता के साथ फलन-फूलन का मौका मिलता रहा है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर वशिष्ट नारायण द्विवेदी ने कहा कि लोग भारत में रहकर भी असहिष्णुता की बात करते हैं, उन्होंने प्रोफेसर बी.एन.जुयाल के जीवन से सीख लेने की आवश्यकता है। प्रोफेसर जुयाल ने बिना किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय की परवाह किये बिना अपना सम्पूर्ण जीवन लोक कल्याण को समर्पित किया। ट्रस्ट के सदस्यों सुश्री मुनीजा रफीक खान तथा डाक्टर एल.बी.भावे ने कहा कि प्रोफेसर जुयाल द्वारा दिखाया गया सहिष्णुता का मार्ग ही इस देश को प्रगति के मार्ग पर ले जायेगा। कार्यक्रम का शुभारम्भ प्रोफेसर जुयाल के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित कर किया गया। डाक्टर रुपाली जुयाल गौड़ ने मुख्य वक्ता का अंगवस्त्रम भेंट कर स्वागत किया। ट्रस्ट के अध्यक्ष डाक्टर अम्बिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के मुख्य उद्देश्यों के बारे में जानकारी दी।

संस्था के सदस्य श्री रुचि भारद्वाज ने प्रोफेसर जुयाल के जीवन हन्तान्त पर प्रकाश डालते हुए उन्हें सरल, सहज और जनहित के लिए सदैव तत्पर रहने वाला युगपुरुष बताया। इस अवसर पर सर्वश्री मुन्ना पाण्डेय, गोपाल पाण्डेय, रंजना तिवारी, राधाकृष्ण गोदियाल, राजीव आदि प्रमुख लोग उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन श्री कमल नयन मधुकर ने किया।

हिन्दुस्तान • वाराणसी • सोमवार • 28 दिसम्बर 2015

प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान में विद्वानों ने रखे विचार, कहां हर धर्म के लोगों में है सामाजिक समरसता

हिन्दुस्तान में असहिष्णुता की बात करना बेमानी

खरीबात

वाराणसी | वरिष्ठ संवाददाता

भारत जैसे देश में असहिष्णुता की बात बेमानी है। यहां हर धर्म और संप्रदाय के लोगों में सामाजिक समरसता का भाव है।

यह बात वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. जितेंद्रनाथ मिश्र ने पराड़कर स्मृति भवन में रविवार को प्रो. बीएन जुयाल स्मृति लेक्चर में मुख्य वक्ता के तौर पर कहीं। उन्होंने कहा कि भारत भूमि हमेशा सहिष्णुता से ओतप्रोत रही है। बीएचयू के प्रो. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने कहा कि जो लोग भारत में रहकर असहिष्णुता की बात करते हैं, उन्हें प्रो. जुयाल के जीवन से सीख लेने की जरूरत है। उन्होंने अपना जीवन लोक कल्याण में लगा दिया था। प्रो. जुयाल जयप्रकाश नारायण के वरिष्ठ सहयोगी, प्रबुद्ध समाजसेवी और गांधी विद्या संस्थान के निदेशक भी रहे।

पराड़कर स्मृति भवन में रविवार को प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान में विचार रखते वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र। • हिन्दुस्तान

लेक्चर की आयोजक संस्था प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के बारे में जानकारी दी। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. अत्रि भारद्वाज ने प्रो. जुयाल के जीवनवृत्त की चर्चा की।

डॉ. रुपाली जुयाल गौड़ ने मुख्य वक्ता को अंगवस्त्र देकर स्वागत किया। कार्यक्रम में मुनीजा रफीक खान, डॉ. एलबी भावे ने भी विचार रखे। मुन्ना पांडेय, गोपाल पांडेय, रंजना तिवारी, राधाकृष्ण गोदियाल, संजीव, राजीव आदि मौजूद रहे। संचालन कमल नयन मधुकर ने किया।

HINDUSTAN
30/12/2014

'थिंक बिग' किताब का हुआ विमोचन

वाराणसी। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट की ओर से पराड़कर भवन में आयोजित प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान पर डॉ. अम्बिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन हुआ।

मुख्य अतिथि महिला विकास अध्ययन केन्द्र के पूर्व उपनिदेशिक प्रो. वासंती रमन ने कहा कि प्रो. जुयाल ने समाज को नई दिशा दी है। वह समाजसेवी व शोषित वर्ग के हितैषी थे। साहित्यकार रामसुधार सिंह, डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र, डॉ. देवी प्रसाद, डॉ. सीमांत प्रियदर्शी ने विचार रखे। आभार डॉ. मुनीजा रफीक खान व संचालन कमलनयन मधुकर ने किया।

दैनिक जागरण वाराणसी, 28 दिसंबर 2015

प्रो. जुयाल के जीवन से सीख लेने की जरूरत

वाराणसी : जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर स्मृति भवन में जय प्रकाश नारायण के वरिष्ठ सहयोगी, समाजसेवी व गांधी विद्या संस्थान के निदेशक रहे प्रो. बीएन जुयाल की स्मृति में'सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता' विषयक संगोष्ठी हुई।

मुख्य वक्ता साहित्यकार प्रो. जितेंद्र नाथ मिश्र ने कहा कि भारत भूमि सदैव सहिष्णुता से ओत-प्रोत रही, तभी तो यहां पर हर वर्ग, हर धर्म, हर सम्प्रदाय के लोगों को सामाजिक समरसता के साथ फलने-फूलने का मौका मिलता रहा है। प्रो. विशिष्ट नारायण त्रिपाठी ने कहा कि जो लोग भारत में रहकर भी असहिष्णुता की बातें करते हैं उन्हें प्रो. जुयाल के जीवन से सीख लेने की आवश्यकता है, जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन लोक कल्याण को समर्पित किया, किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय की परवाह किए बिना।

◆ लोक कल्याण के लिए समर्पित किया अपना संपूर्ण जीवन

संस्था के वरिष्ठ सदस्य अत्रि भारद्वाज ने कहा कि प्रो. बीएन जुयाल सरल, सहज व परहित के लिए सदैव तत्पर रहने वाले थे। ट्रस्ट के सदस्य मुनीजा रफीक खान व डा. एलवी भावे ने विचार रखे। ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के मुख्य उद्देश्यों के बारे में जानकारी दी। डा.रूपाली जुयाल गौड़ ने मुख्य वक्ता को अंगवस्त्रम भेंट कर उनका स्वागत किया। इस अवसर पर मुन्ना पांडेय, रंजना तिवारी, गोपाल पांडेय, राधाकृष्ण गोदियाल, संजीव, राजीव आदि उपस्थित थे। संचालन कमल नयन मधुकर ने किया।

I next, Varanasi, 29 December 2015

सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता पर चर्चा

VARANASI: प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर भवन में प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर-2 का आयोजन किया गया. इसमें वक्ताओं ने सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता विषय पर चर्चा की. मुख्य वक्ता प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. जितेंद्र नाथ मिश्र व बीएचयू के प्रो. विशिष्ट नारायण त्रिपाठी रहे. ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अंबिका प्रसाद गौड़ ने बताया कि दो साल से प्रो. जुयाल की स्मृति में लेक्चर का आयोजन किया जा रहा है. इस दौरान अत्रि भारद्वाज, मुनीजा रफीक खान, डॉ. एलवी भावे, मुन्ना पांडेय, गोपाल पांडेय, रंजना तिवारी, राधाकृष्ण गोदियाल, संजीव, राजीव आदि रहे. संचालन कमल नयन मधुकर व स्वागत रूपाली जुयाल गौड़ ने किया.

काशीवार्ता
29 दिसम्बर 2015

भारत भूमि सदैव रही सहिष्णुता से ओत प्रोत

वाराणसी। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के तत्वावधान में रविवार को पराड़कर भवन में प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर-2 का आयोजन किया गया। सभा संचालन के क्रम

प्रो. बीएन जुयाल स्मृति व्याख्यान माला

सहिष्णुता से ओत- प्रोत रही है तभी तो यहां पर हर वर्ग, हर धर्म हर सम्प्रदाय के लोगों को सामाजिक समरसता के साथ फलने- फूलने का मौका मिलता है।

बीएचयू के प्रोफेसर डा. त्रिशिष्ट नारायण त्रिपाठी ने कहा कि जो लोग भारत में रहकर भी असहिष्णुता की बात करते हैं उन्हें प्रो. बीएन जुयाल के जीवन से सीख लेने की आवश्यकता है। कार्यक्रम में मुख्य सम्पादन के साथ फलने- फूलने का मौका मिलता है।

वाराणसी। प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट के तत्वावधान में रविवार को पराड़कर भवन में प्रो. बीएन जुयाल मेमोरियल लेक्चर-2 का आयोजन किया गया। सभा संचालन के क्रम में ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के मुख्य उद्देश्यों के बारे में जानकारी दी। संस्था के वरिष्ठ सदस्य डा. अत्रि भारद्वाज ने प्रो. बीएन जुयाल के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उन्हें एक सरल, सहज एवं परहित के लिये सदैव तत्पर रहने वाला बुद्धपुरुष बताया। तत्पश्चात सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता विषय पर मुख्य वक्ता प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. जितेंद्र नाथ मिश्र ने अपने वक्तव्य में कहा कि भारत भूमि सदैव सहिष्णुता से ओत-प्रोत रही है तभी तो यहां पर हर वर्ग, हर धर्म हर सम्प्रदाय के लोगों को सामाजिक समरसता के साथ फलने- फूलने का मौका मिलता है। प्रो. विशिष्ट नारायण त्रिपाठी ने कहा कि जो लोग भारत में रहकर भी असहिष्णुता की बातें करते हैं उन्हें प्रो. जुयाल के जीवन से सीख लेने की आवश्यकता है, जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन लोक कल्याण को समर्पित किया, किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय की परवाह किए बिना।

संस्था के वरिष्ठ सदस्य अत्रि भारद्वाज ने कहा कि प्रो. बीएन जुयाल सरल, सहज व परहित के लिए सदैव तत्पर रहने वाले थे। ट्रस्ट के सदस्य मुनीजा रफीक खान व डा. एलवी भावे ने विचार रखे। ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ ने संस्था के मुख्य उद्देश्यों के बारे में जानकारी दी। डा.रूपाली जुयाल गौड़ ने मुख्य वक्ता को अंगवस्त्रम भेंट कर उनका स्वागत किया। इस अवसर पर मुन्ना पांडेय, रंजना तिवारी, गोपाल पांडेय, राधाकृष्ण गोदियाल, संजीव, राजीव आदि उपस्थित थे। संचालन कमल नयन मधुकर ने किया।

DAINIK JAGRAN
29/12/14

शोषित वर्ग की आवाज थे समाजसेवी प्रो. जुयाल

वाराणसी : प्रो. बीएन जुयाल एजुकेशन फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर भवन में स्मृति व्याख्यान का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में समाज शास्त्री व महिला विकास अध्ययन केंद्र की पूर्व उप निदेशिका प्रो. वासंती रमन ने विचार व्यक्त किए उन्होंने प्रो. बीएन जुयाल की स्मृतियों को जीवंत करते हुए कहा कि प्रो. जुयाल जैसा व्यक्ति यदा-कदा ही जन्म लेता है। वह महान समाज सेवी, महिला व शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी थे।

◆ पराड़कर भवन में स्मृति व्याख्यान और पुस्तक का विमोचन

ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. अंबिका प्रसाद गौड़ ने प्रो. वासंती रमन को पुष्पगुच्छ व स्मृति चिन्ह भेंट किया। कार्यक्रम में साहित्यकार रामसुधार सिंह, जितेंद्रनाथ मिश्र, डा. देवी प्रसाद व डा. सीमांत प्रियदर्शी द्वारा डा. अंबिका प्रसाद की पुस्तक 'थिंक बिग' का विमोचन किया गया। सभी साहित्यकारों ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए डा. गौड़ के हिंदी व अंग्रेजी दोनों में ही लेखन कौशल व समाज को नई सोच देने के लिए उनकी प्रतिबद्धता की सराहना की। कार्यक्रम का संचालन कमल नयन मधुकर, धन्यवाद ज्ञापन डा. मुनीजा रफीक खा ने [illegible] संस्था के सदस्य डा. एलवी भावे, डा. कैलाश डा. रुपाली जुयाल गौड़, देवेंद्र सिंह आदि थे।

हिन्दुस्तान
• वाराणसी • शनिवार • 27 अगस्त 2016

प्रो. जुयाल पर लिखी पुस्तक का विमोचन

वाराणसी। प्रसिद्ध समाजसेवी स्व.प्रो.बीएन जुयाल के 86 वें जन्मदिवस पर डॉ.एपी गौड़ द्वारा संपादित पुस्तक 'प्रो.बीएन जुयाल-व्यक्तित्व और कृतित्व' का लोकार्पण किया गया। महामानपुरी स्थित उनके आवास पर संगोष्ठी में कृतिका जुयाल, डॉ.रूपाली जुयाल और प्रो.जुयाल के प्रशंसक और मित्र शामिल थे।

AAJ 30/12/14

समाजसेवा में प्रोफेसर जुयाल का उल्लेखनीय योगदान-डाक्टर रमन

प्रोफेसर बीएन जुयाल एजुकेशनल फाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से रविवार को पराड़कर स्मृति भवन में उनकी स्मृति में व्याख्यान आयोजित हुआ। इसमें मुख्य वक्ता समाजशास्त्री और महिला विकास अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली की पूर्व उपनिदेशक प्रोफेसर वासंती रमन ने कहा कि प्रोफेसर जुयाल का व्यक्तित्व विशाल था। उन्होंने अपना जीवन जनमानस और समाज के विकास के लिए दिया। उनका योगदान सराहनीय है।

उन्होंने कहा कि प्रोफेसर जुयाल बहुमुखी थे। समाजसेवा के साथ उनका रुझान हर विषयों में था। उन्होंने हमेशा ही समाजहितों की परवाह की। इसके लिए उन्होंने हर प्रयास किये और उल्लेखनीय कार्यों से उन्हें हमेशा याद किया जायगा। इस अवसर पर डाक्टर अंबिका प्रसाद गौड़ की पुस्तक थिंक बिग का विमोचन भी हुआ। कार्यक्रम में साहित्यकार रामसुधार सिंह, जीतेंद्र नाथ मिश्र, डाक्टर देवी प्रसाद, डाक्टर सीमांत प्रियदर्शी, डाक्टर एलवी भावे, डाक्टर कैलाश यादव, डाक्टर रुपाली जुयाल सहित अन्य लोग रहे। संचालन कमलनयन मधुकर और धन्यवाद डाक्टर मुनीजा रफीक ने किया।

ROLL NO. 54973 NO. 29803

Board of High School and Intermediate Education, Uttar Pradesh

BOARD OF HIGH SCHOOL AND INTERMEDIATE EDUCATION – UTTAR PRADESH –

HIGH SCHOOL EXAMINATION, 1950

This is to certify that Basba Nand Juyal

born on 25th August 1931

passed the High School Examination held in the month of March/April, 1950

from the Government Intermediate College, Lansdowne, (Garhwal) Centre

~~with distinction in~~

and was placed in the ____ Division.

The subjects in which he was examined were :—

1.	~~Elementary Hindi~~/Advanced Hindi.	4.	Mathematics
2.	History	5.	Civics
3.	English	6.	

(V. J. KALE, M.A., LL.B.)
Secretary.

ALLAHABAD :
The 15th June, 1950.

Roll No. 1355

Panjab University

This is to certify

That Basha Nand Juyal, Regd. No. 51-82-13766,
son of Shri Amar Dao Juyal, and of
the Ambala District, has qualified in
the subject of English only of the Bachelor of Arts standard of
this University in the Examination held in September, 1953
obtaining 79 marks.

Solan (Simla Hills),
October 24, 1953.

Registrar

Marks: 370

Roll No. 8761

Panjab University

MODERN INDIAN LANGUAGES EXAMINATIONS

This is to certify

That Basva Nand Juyal, Regd. No. 51-82-13766,
son/daughter of Amar Dev Juyal, and
of the Simla District, passed the
Examination for Honours in Hindi (प्रभाकर) of this University, held
in June, 1951, and was placed in the Second Division.

Solan (Simla Hills)
August 13, 1951.

REGISTRAR

267

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

हिन्दी-विश्वविद्यालय की सम्वत् २०१९ विक्रमाब्द की उत्तमा परीक्षा में

श्री अमरदेवजुयाल के आत्मज श्री आत्मानन्दजुयाल

केन्द्र देहरादून (डी॰ ए॰ वी॰ कालेज) से हिन्दीसाहित्य विषय में द्वितीय

श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। अतएव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

साहित्यरत्न

की उपाधि और उसके प्रमाण में यह उपाधि-पत्र सहर्ष प्रदान करता है

क्रम संख्या ५८८ प्रधान मंत्री जगदीशस्वरूप

विशेष योग्यता * मिति सीर २५।८।२०१२

AIR FORCE SELECTION BOARD
CLEMENT TOWN
DEHRA DUN

TO WHOM IT MAY CONCERN.

This is to certify that Shri Basba Nand Juyal has been working as Accounts Clerk in Air Force Selection Board since 1949. He is a self-made young man of cheerful habits, highly industrious and intelligent. He is a sincere and well-disciplined individual possessing good manners. At his work he is very efficient, reliable and hard-working. He takes his duty very seriously.

To the best of my knowledge Shri Basba Nand Juyal bears a very good moral character.

(V.P. BHAGRA)
Squadron Leader,
A D J U T A N T,
AIR FORCE SELECTION BOARD
1st June '57. CLEMENT TOWN,- DEHRA DUN.

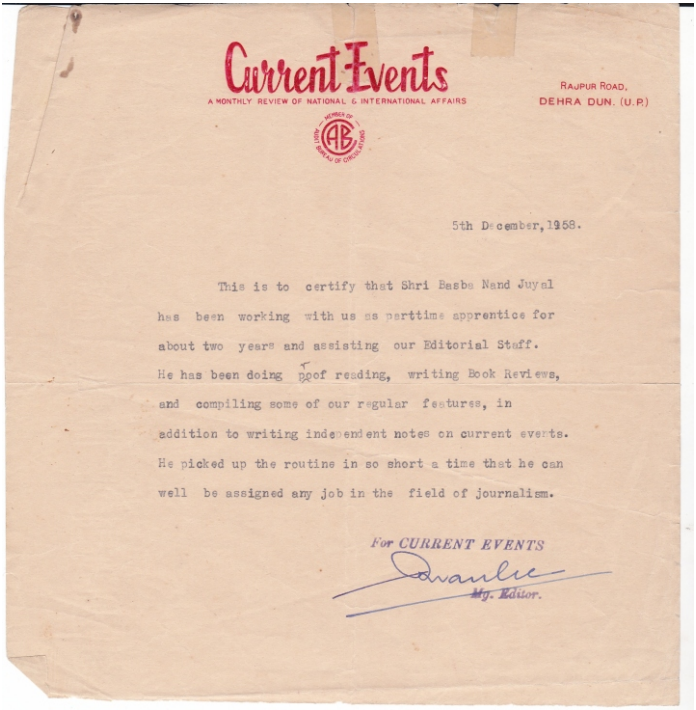

Current Events
A MONTHLY REVIEW OF NATIONAL & INTERNATIONAL AFFAIRS

Rajpur Road,
DEHRA DUN. (U.P.)

5th December, 1958.

This is to certify that Shri Baswa Nand Juyal has been working with us as parttime apprentice for about two years and assisting our Editorial Staff. He has been doing proof reading, writing Book Reviews, and compiling some of our regular features, in addition to writing independent notes on current events. He picked up the routine in so short a time that he can well be assigned any job in the field of journalism.

For CURRENT EVENTS
Mg. Editor.

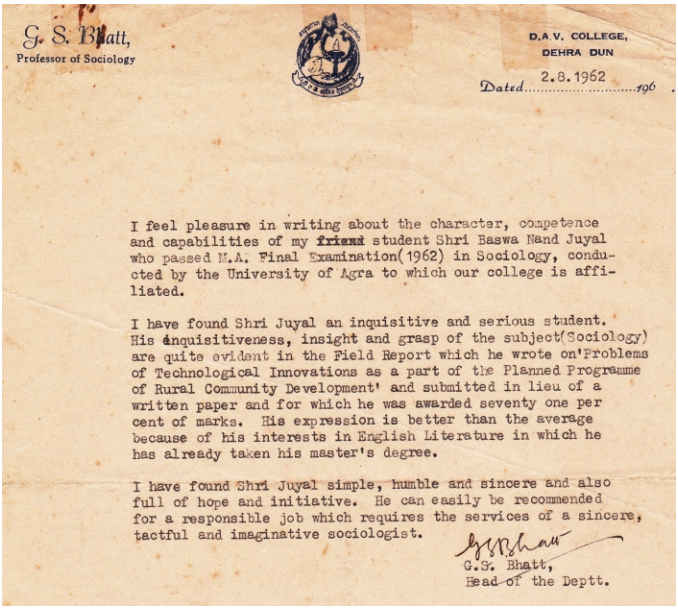

G. S. Bhatt,
Professor of Sociology

D.A.V. COLLEGE,
DEHRA DUN

Dated 2.8.1962 196

I feel pleasure in writing about the character, competence and capabilities of my friend student Shri Baswa Nand Juyal who passed M.A. Final Examination(1962) in Sociology, conducted by the University of Agra to which our college is affiliated.

I have found Shri Juyal an inquisitive and serious student. His inquisitiveness, insight and grasp of the subject(Sociology) are quite evident in the Field Report which he wrote on'Problems of Technological Innovations as a part of the Planned Programme of Rural Community Development' and submitted in lieu of a written paper and for which he was awarded seventy one per cent of marks. His expression is better than the average because of his interests in English Literature in which he has already taken his master's degree.

I have found Shri Juyal simple, humble and sincere and also full of hope and initiative. He can easily be recommended for a responsible job which requires the services of a sincere, tactful and imaginative sociologist.

G.S. Bhatt,
Head of the Deptt.

Founder:
JAYPRAKASH NARAYAN

L. M. Chandola
Registrar
ललित मोहन चन्दोला
कुल सचिव

GANDHIAN INSTITUTE OF STUDIES

Post Box No. 1116
RAJGHAT, VARANASI-221001 INDIA
गांधी विद्या संस्थान
राजघाट, वाराणसी-२२१००१

Telegram : STUDIES
Telephones : Office { 331182, 330125
Fax No. 0542-330871

No. 13(2)PF/

September 23, 1998

WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Professor B.N. Juyal, Professor of Sociology and Rural Development of Gandhian Institute of Studies, Rajghat, Varanasi, has retired from the services of the Institute. He was relieved in the afternoon of 31st August, 1991, i.e., on completion of his superannuation age, i.e. 60 years as per Institute's Service Rules.

(L.M. Chandola)
Registrar
Gandhian Institute of Studies
Post Box No. 1116
RAJGHAT, VARANASI-221001

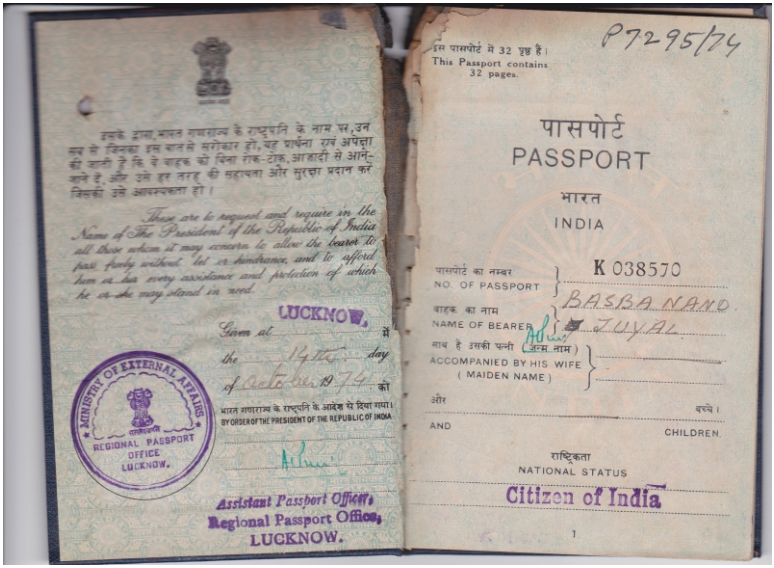

इस पासपोर्ट में 32 पृष्ठ हैं।
This Passport contains 32 pages.

P7295/74

पासपोर्ट
PASSPORT

भारत
INDIA

पासपोर्ट का नम्बर / NO. OF PASSPORT: K 038570

वाहक का नाम / NAME OF BEARER: BASBA NAND ... TUYAL

साथ है उसकी पत्नी (जन्म नाम) / ACCOMPANIED BY HIS WIFE (MAIDEN NAME):

और / AND ... बच्चे। / CHILDREN.

राष्ट्रिकता / NATIONAL STATUS: Citizen of India

1

इसके द्वारा भारत गणराज्य के राष्ट्रपति के नाम पर, उन सब से जिनका इस बात से सरोकार हो, यह प्रार्थना एवं अपेक्षा की जाती है कि वे वाहक को बिना रोक-टोक आने-जाने दें, और उसे हर तरह की सहायता और सुरक्षा प्रदान करें जिसकी उसे आवश्यकता हो।

These are to request and require in the Name of The President of the Republic of India all those whom it may concern to allow the bearer to pass freely without let or hindrance, and to afford him or her every assistance and protection of which he or she may stand in need.

Given at LUCKNOW, में
the 14th day
of October 1974 को

भारत गणराज्य के राष्ट्रपति के आदेश से दिया गया।
BY ORDER OF THE PRESIDENT OF THE REPUBLIC OF INDIA

MINISTRY OF EXTERNAL AFFAIRS
REGIONAL PASSPORT OFFICE LUCKNOW.

Assistant Passport Officer,
Regional Passport Office,
LUCKNOW.

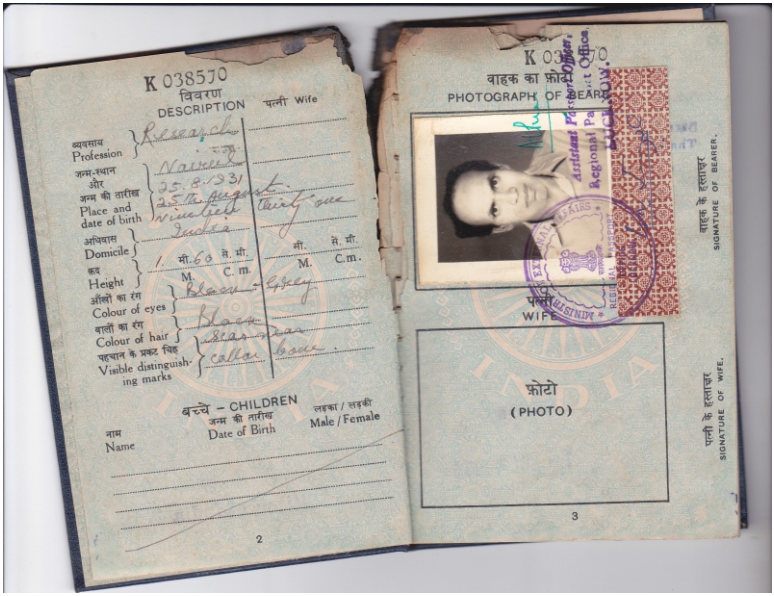

K 038570
विवरण
DESCRIPTION

	पति Husband	पत्नी Wife
व्यवसाय Profession	Retd. clerk	
जन्म-स्थान और जन्म की तारीख Place and date of birth	Narwar 25.8.1931	25th August Thirty one Indore
अधिवास Domicile	Indore	
कद Height	1 मी. 60 से. मी. M. C.m.	मी. से. मी. M. C.m.
आँखों का रंग Colour of eyes	Brown	Grey
बालों का रंग Colour of hair	Black	Black
पहचान के प्रकट चिह्न Visible distinguishing marks	collar bone	

बच्चे – CHILDREN

नाम Name	जन्म की तारीख Date of Birth	लड़का / लड़की Male / Female

2

K 038570
वाहक का फ़ोटो
PHOTOGRAPH OF BEARER

Assistant Passport Officer, Regional Passport Office, LUCKNOW.

REGIONAL PASSPORT OFFICE LUCKNOW. MINISTRY OF EXTERNAL AFFAIRS

वाहक के हस्ताक्षर
SIGNATURE OF BEARER.

पत्नी / WIFE

फ़ोटो
(PHOTO)

पत्नी के हस्ताक्षर
SIGNATURE OF WIFE.

3

डॉ० ए० पी० गौड़

(लेखक, अभिप्रेरक एवं शिक्षाविद)

नाम	:	डॉ0 अम्बिका प्रसाद गौड़
आत्मज	:	(स्व0) श्री सदानन्द गौड़
आत्मजा	:	श्रीमती सुशीला देवी गौड़
जन्मतिथि	:	23/08/1968
जन्म स्थान	:	बैरकपुर छावनी, कलकत्ता
मूल स्थान	:	पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड
शैक्षणिक योग्यता	:	बी.एस.सी., एम.ए.(अंग्रेजी), बी.एड., एम.बी.ए., एम.एम.एम., पी.एच.डी.
वर्तमान संप्रति	:	प्रधानाचार्य (अंग्रेजी माध्यम विद्यालय), वाराणसी
पता	:	C/O – प्रो0 बी0 एन0 जुयाल, 1, महामनापुरी विस्तार, बी.एच.यू., वाराणसी
दूरभाष	:	(0542) 2570881, 09415261366
ईमेल	:	apgaur.2001@gmail.com.
वेबसाइट	:	www.drambikaprasadgaur.com.
कार्यक्षेत्र	:	1. विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रबन्ध शास्त्र का अध्यापन 2. अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषाओं में लेखन 3. अभिप्रेरक, सामाजिक सरोकारों के वक्ता 4. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन, वाराणसी में वार्ता प्रस्तुति
लेखन अनुभव (हिन्दी):		1. उपन्यास–भवानी सिंह, किताब महल, इलाहाबाद – 2004 2. उपन्यास–तापर भी कुछ और, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी – 2005 3. उपन्यास–एकदा उत्तरांचले, नवशक्ति प्रकाशन, वाराणसी – 2011 4. हिमाद्रि के इस पार (कहानी संग्रह), प्रकाशनार्थ–2017
लेखन अनुभव (अंग्रेजी)	:	1. Help Book in English Class IX (Haryana Board) Chakarvarti Publication, Karol Bagh, New Delhi, 1994 2. Export of carpets from Eastern U.P., Lambert Academic Publishing, Germany ,2012 3. Business Studies for Class - 11 and Class - 12, Crown Publications, Ranchi,2013 4. Think Big --- A Book on Motivation, Ocean Paperback, Prabhat Publication, New Delhi, 2014
रिसर्च पेपर्स	:	प्रमुख रिसर्च संस्थाओं से प्रबन्धन एवं शिक्षा से सम्बन्धित एक दर्जन से अधिक रिसर्च पेपर प्रकाशित
कार्य अनुभव	:	अध्यापक, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रशासक, प्रधानाचार्य, सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में 25 वर्ष से अधिक का अनुभव
पुरस्कार/सम्मान	:	अवन्तिका (प्रियदर्शनी) सम्मान–2012, काशी नवरत्न सम्मान–2014, काशी गौरव अलंकरण–2015, अवन्तिका (ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम) सम्मान–2016
गैर सरकारी संगठनों के साथ सहभागिता	:	**अध्यक्ष,** प्रो0 बी0 एन0 जुयाल एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट **परामर्शदाता,** दक्षिण एशियाई बाल दासता उन्मूलन संगठन (SACCS) नई दिल्ली (नोबेल पुरस्कार विजेता श्री कैलाश सत्यार्थी द्वारा संचालित) **कॉर्डिनेटर,** संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, क्रेडा, मिर्जापुर **वॉलेन्टियर,** गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी